TH08822

6750

औचित्य सिद्धान्त की दृष्टि से भुशुण्डि रामायण का समीक्षात्मक अध्ययन

"AUCHITIYA SHIDHANT KI DRASTI SE BHUSHUNDI RAMAYAN KA SAMIKSHATMAK ADHYAN"

छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

की

पी-एच०डी० उपाधि हेतु

प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

891.2
TRI-A;P
TH08822

विषय – संस्कृत

2008

शोध पर्यवेक्षिका

डॉ० (श्रीमती) शशि बाला लाल
विभागाध्यक्ष – संस्कृत विभाग

शोधार्थी

ज्योति त्रिपाठी
एम०ए० संस्कृत

आचार्य नरेन्द्र देव नगर निगम महिला महाविद्यालय, कानपुर।

।।श्रीहरिः।।

श्रीराम

डा० शशिलाल
प्रवक्ता एवं विभागाध्यक्ष
संस्कृत विभाग
आचार्य नरेन्द्र देव नगर निगम महिला महाविद्यालय
हर्ष नगर, कानपुर

निवास –
ई–122 कृष्णा विहार,
आवास विकास, कल्यानपुर,
कानपुर।

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **ज्योति त्रिपाठी** ने छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर की परिनियमावली में निर्दिष्ट अर्हताओं को भलीभाँति पूर्ण करते हुए कला संकाय के अन्तर्गत संस्कृत विषय में **"औचित्य सिद्धान्त की दृष्टि से भुशुण्डि रामायण का समीक्षात्मक अध्ययन"** शोध शीर्षक पर विद्या वाचस्पति उपाधि हेतु अपना शोध कार्य मेरे निर्देशन में दो सौ दिवस से अधिक निरन्तर मेरे सम्पर्क में रहकर पूर्ण किया है।

मैं सहर्ष छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय में इस शोध प्रबन्ध को मूल्यॉकन हेतु प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान करते हुए शोध छात्रा के उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में विषय का क्रमवद्ध, सुरुचिपूर्ण एवं तर्कसंगत विवेचन शोध छात्रा के अध्यवसाय एवं तत्वान्वेषिणी दृष्टि का परिचायक है। यह शोध कार्य शोध छात्रा का मौलिक कार्य है।

पर्यवेक्षिका

संवत् 2065, अश्विन शुक्ल पक्ष

डा0 शशिलाल

घोषणा पत्र

मैं **ज्योति त्रिपाठी**, पंजीकरण सं0-043209 उद्घोषित करती हूँ कि छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर–208025 से संस्कृत विषय में पी–एच0डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध जिसका शीर्षक है, **"औचित्य सिद्धान्त की दृष्टि से भुशुण्डि रामायण का समीक्षात्मक अध्ययन"** मेरा मौलिक शोध कार्य है। मैं यह भी उद्घोषित करती हूँ कि मैने न्यूनतम निर्धारित दो सौ दिन से अधिक अवधि तक शोध पर्यवेक्षिका डॉ0 शशिलाल के निरंतर सम्पर्क में रहते हुए शोध कार्य–पूर्ण किया है। इस विषय पर मैने न तो पूर्व में किसी उपाधि हेतु शोध कार्य किया है और न ही इस शोध–प्रबन्ध के किसी भी अंश को पुस्तक, पत्रिका एवम् समाचार पत्र में प्रकाशित कराया है। मेरे इस शोध–प्रबन्ध में जिन–जिन पुस्तकों, पत्रिकाओं तथा साधनों का प्रयोग किया गया है, उनका विवरण संदर्भ ग्रन्थ–सूची में पूर्ण रूप से अंकित है।

शोधार्थी

Jyoti Tripathi

ज्याति त्रिपाठी

संवत् 2065 अश्विन शुक्ल पक्ष
नवरात्र - 3-10-08

समर्पण

प्रस्तुत शोध कार्य मैं उन गुरुजनों, महीजनों को समर्पित करती हूँ जिनके अथक प्रयास के फलस्वरूप ज्ञान की यह अविकल धारा जन साधारण के सम्मुख प्रवाहित हुई और यह अनमोल ग्रन्थ हमारी संस्कृति को प्राप्त हो सका। अन्यथा इस अमूल्य धरोहर से हम आज अन्जान होते। यद्यपि उनका दैहिक व्यक्तित्व काल की असंख्य परतों से ढक गया। परन्तु उनके यश की उज्ज्वल कथा धरती एवं आकाश के साथ सदा के लिए अमर होकर आज की ही भाँति दूर भविष्य तक अक्षुण्य रहेगी। उनका विशिष्ट योगदान सदैव उनकी याद कराता रहेगा। हम और हमारी संस्कृति सदैव उनकी ऋणी रहेगी और उन पर गर्व करती रहेगी।

विनम्र प्रणति सहित......

गुर्रुब्रह्मा गुर्रुविष्णो गुर्रुदेवो महेश्वरः ।

गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मैश्री गुरवे नमः।।

विनम्र आभार

"यद अक्षरं ब्रह्म सनातन स्वराट।
सहस्त्रनेत्र ननपाद बाहुकम्।।
निरंजन निष्प्रतिम निरीहं।
श्री राम तत्वच्चरणं वदन्ति।।"

भुशुण्डि रामायण (पूर्वखण्ड) अध्याय, 10/19

सर्वप्रथम मैं उस सच्चिदानन्द पूर्ण परब्रह्म परमेश्वर को नमन करती हूँ। जिसके असीम अनुग्रह के फलस्वरूप मैं इस शोध कार्य को विधिवत रूप से पूर्ण करने में सक्षम हो सकी। ऐसा कहा जाता है कि व्यक्ति अपने आत्मप्रयास तथा दैवीय अनुग्रह के द्वारा अपना परम लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। मेरे आत्मप्रयास के साथ–साथ इस शोध कार्य की सफलता में परमेश्वर का विशेष अनुग्रह है। यद्यपि सर्वत्र वही अनुस्यूत ओत–प्रोत है और यथार्थतः सभी मनुष्य सच्चिदानन्द ब्रह्म से अभिन्न एवं तद्रूप है किन्तु अविद्या से समाच्छादित होने के कारण व्यक्ति को अपने आत्मस्वरूप का बोध नहीं हो पाता। मनुष्य को अपने स्वकृत कर्मों का विपाक अवश्य ही प्राप्त होता है। अपने पूर्व जन्म के उत्तम कर्मों तथा श्रेष्ठ संस्कारों के फलस्वरूप ही मनुष्य सुसंस्कार सम्पन्न श्रेष्ठ कुल में जन्म पाता है। 'बड़े भाग्य मानुष तनु पावा' इस युक्ति के अनुसार मुझे भी दृढ़ आस्थावान भगवद्भक्ति भावित ब्राह्मण कुल में जन्म लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ। यद्यपि जन्मना सभी शूद्र ही है और इस शूद्रत्व से ऊपर उठने वाली साधन भूता है संस्कृत शिक्षा। यह संस्कृत भाषा संस्कार भाषा है इसी संस्कार भाषा की शिक्षा प्राप्त करने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ।

इस शोध कार्य की सम्पूर्ति का योगदान सर्वप्रथम मैं अपने माता–पिता को देना चाहूँगी क्योंकि माँ की ममता तथा पिता के स्नेह पूर्ण संरक्षण का कोई उपमान नहीं होता। संतति को सत्पथ में प्रवृत्त करना सर्वविध समुन्नति हेतु आवश्यक समुचित सुविधाएँ उपलब्ध कराना तथा उसकी सफलता को अपनी सफलता समझकर प्रमुदित एवं आह्लादित होना माता–पिता का सहज स्वभाव होता है। इस सनातनी परिवार में मुझे प्रत्यक्ष देवरूप परमश्रद्धेय माता (श्रीमती स्नेह त्रिपाठी) पिता (श्री राम विनोद त्रिपाठी) का स्नेहपूर्ण संरक्षण एवं प्रेरणास्पद पथ प्रदर्शक उत्साह संवर्द्धन एवं सभी सुविधायें सुलभ हुईं, जिसके फलस्वरूप विद्यार्जन का मेरा पथ सदैव प्रशस्त रहा है। आज मैं जो कुछ भी हूँ वह सब मेरे माता–पिता के सतत् जागरुक प्रयत्न का ही प्रतिफल है। मेरे सम्पूजनीय माता–पिता ही मेरे संबल है। सत्पथप्रदर्शक है एवं कर्म संयोजक है। वह मेरे लिए अजस्त्र अक्षय शक्ति स्त्रोत है। उनकी स्नेहासक्ति एवं प्रेरणा से मुझे बराबर बल मिलता रहा। अपने सत्संकल्प की सम्पूर्ति में उन्होंने मुझे निमित्त बनाया उनके संकल्पों की संसिद्धि मुझसे होती रहे और मेरी सफलता से वे प्रमुदित आह्लादित होते रहे तथा परमेश्वर से यही प्रार्थना करती हूँ कि उनके आशीर्वचन से दी गयी शिक्षा से मेरा कर्त्तव्य पथ सदैव प्रशस्त एवं समालोकित होता रहे।

हमारी भारतीय संस्कृति में गुरु और गुरुकुल का विशिष्ट स्थान है। विद्या को परमं धनम्, परम दानम्, परमा शक्ति, परा देवता इस प्रकार संबोधित किया गया है। विद्या की इस

विशिष्ट निधि की सम्प्राप्ति मुझे आचार्य नरेन्द्रदेव महिला महाविद्यालय में हुई। गुरु का स्थान तो बहुत ही समुन्नत होता है। गु अक्षर का अर्थ है अन्धकार और रु अक्षर का अर्थ अन्धकार को रोकने में समर्थ अर्थात् अन्धकार (अज्ञान) को दूर करने वाला गुरु कहलाता है। भगवती वेदश्रुति का उपदेश है **मातृ देवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव,** वही देव है जो देता है स्वयं ज्ञान प्रकाश रूप है तथा दूसरों को भी प्रकाश युक्त तेजस्वी बना देता है। ऐसी ही विविध विधाओं में निष्णात विद्या वैभव से विभूषित परमादरणीया डा0 शशिलाल की सह्रदय से आभार प्रकट करती हूँ। जिनके सफल निर्देश एवं स्नेहपूर्ण सहयोग से मैं उपकृत हुई हूँ। मेरे लेखिनी उनकी वात्सल्यमय प्रेम और सहयोग को प्रकट करने में असमर्थ है। उनके वात्सल्यमय प्रेम को शब्दों की सीमा में बाँधना अनुचित ही होगा। इसके पश्चात में विलक्षण प्रतिभा के धनी परमादरणीय डॉ0 राम किशोर शुक्ल के प्रति सह्रदय से आभार प्रकट करती हूँ जिनके स्नेहपूर्ण सहयोग से मैं अपने शोधकार्य को विधिवत पूर्ण रूप से प्रस्तुत कर सकी।

इस शोध कार्य की सम्भूर्ति में संस्कृत साहित्य एवं संस्कृति से सम्बन्धित अनेक ग्रंथों का आश्रय लिया गया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न पुस्तकालयों, सम्पूर्णानन्दसंस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, एवं आचार्य नरेन्द्रदेव महिला महाविद्यालय विद्यालय, कानपुर, पार्षद पुस्तकालय, उत्तर प्रदेश शोध संस्थान लखनऊ, अखिल भारतीय संस्कृत परिषद, हजरतगंज, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, लखनऊ के अतिरिक्त भुवन ट्रस्ट वाणी आदि पुस्तकालयों एवं प्रकाशकों के व्यवस्थापकों के प्रति मैं विशेष रूप से आभार व्यक्त करती हूँ। जिन्होंने यथा संभव मुझे सहयोग प्रदान किया एवं छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय पुस्तकालय के व्यवस्थापकों के प्रति आभार प्रकट करती हूँ जिनके प्रत्यक्ष सहयोग के द्वारा मैं शोध जैसे महत्वपूर्ण कार्य को विधिवत पूर्ण कर सकी। उनका सहयोग सदैव अविस्मरणीय रहेगा।

शोध प्रबन्ध के सन्दर्भ में चर्चा करते समय उन गुरुजनों, विद्वानों और शुभेच्छुओं और संस्थाओं का स्मरण आना स्वाभाविक है जिन्होंने इस कार्य को सम्पादित कराने में अमूल्य योगदान दिया जिनके मार्गदर्शन तथा सहयोग के बिना मेरी शोधयात्रा अधिक कठिन होती उन सभी का स्मरण कर उनके आशिष् और ज्ञान सम्पन्न औदार्य के प्रति विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा पुनीत कर्तव्य है।

काव्यशास्त्र की विशाल परम्परा में प्रस्तुत शोध कार्य पर अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त हुई त्रुटियों के लिए सभी दिव्यगुण सम्पन्न विद्वजनों से क्षमा प्रार्थी हूँ। क्योंकि उनके समक्ष हम अज्ञान बालक के समान हैं जिनसे त्रुटियाँ होना स्वाभाविक ही है।

विनम्र आदर सहित ....

अज्ञानतो बालकस्यापराधम्,
यथैव माता क्षमतेमिटपरीषम्।।

भुशुण्डि रामायण पुर्वखण्ड अध्याय, 21/42

पुरोवाक्

वर्णानामर्थसंधानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्लानां च कर्त्तारों वन्दे वाणी विनायकौ।

अक्षरों, अर्थसमूहों, रसों, छन्दों और मङ्गलों को करने वाली सरस्वती जी और गणेश की मैं सर्वप्रथम वन्दना करती हूँ।

पुरोवाक्

रामकथा भारतीय संस्कृति की अमर कथा है। बाल्मीकि के समय से अब तक इस कथा में अनेक प्रकार के रूप दर्शनीय हैं। भारत की प्रायः सभी भाषाओं में एवं विदेशी भाषाओं में यह कथा समय–समय पर लिखी जाती रही है। हिन्दी, मराठी, बंगला, तमिल, तेलगू, उड़िया आदि विभिन्न भाषाओं में राम कथा हमें प्राप्त होती है। हिन्दी में लिखित गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' ने उत्तर भारत में विशेष स्थान पाया। इसके अतिरिक्त संस्कृत, गुजराती, मलयालम, कन्नड़, असमिया, उर्दू, अरबी, फारसी भाषाओं में राम कथा लिखी गई महाकवि कालिदास, भास, भट्ट, प्रवरसेन, क्षेमेन्द्र, भवभूति, राजशेखर, कुमारदास, विश्वनाथ, सोमदेव, गुणादत्त, नारद, सोमेश, मैथलीशरण गुप्त, केशवदास, गुरु गोविन्द सिंह, समर्थ गुरू, रामदास, संत तुकड़ो जी महाराज आदि चार सौ से अधिक कवियों ने, सन्तों ने अलग–अलग भाषाओं में राम तथा रामायण के दूसरे पात्रों के बारे में काव्यों–कविताओं की रचना की है। विदेशों में भी तिब्बती रामायण, पूर्वी तुर्किस्तान की खोतानी रामायण, इण्डोनेशिया की ककबिन रामायण, इण्डोचायना की रामकेर्ति, थाईलैण्ड की रामकियेन आदि रामचरित्र का बखूबी बखान करती है। विश्व साहित्य में इतने विशाल एवं विस्तृत रूप से विभिन्न देशों में विभिन्न कवियों एवं लेखकों द्वारा राम के अलावा और चरित्र को इतनी श्रद्धा से वर्णन नहीं किया गया। रामकथा अपने आप में बहुत व्यापक है।

वेदों से लेकर अद्यावधि भारतीय साहित्य भगवान राम के चरित्र वर्णनों पर आधारित रहा है। प्राचीन भारतीय साहित्य में वेद तथा वाल्मीकि कृत रामायण, रामकथा के स्त्रोत रहे हैं। महाभारत में भी चार स्थलों (रामोपाख्यान आरण्यपर्व, द्रोण पर्व तथा शान्तिपर्व) रामकथा प्रसंग चित्रित किया गया है। राम के जीवन पर आधारित अनेक रामायण ग्रन्थ हमें उपलब्ध होते हैं। सम्पूर्ण हिन्दू धर्म रामायण से ओतप्रोत रहा है, उनके लिए राम सत्य और सच्चाई के प्रतीक हैं। भुशुण्डि रामायण इसी रामायण परम्परा की एक अदभुत कृति है। इसमें मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के चरित्र को सरस, ललित एवं साहित्यिक रूप में प्रस्तुत किया है।

सम्पूर्ण संस्कृति भुशुण्डि रामायण में वर्णित मर्यादाओं, मान्यताओं, रीतिओं और आदर्शों को साकार करती हुयी प्रतीत होती है। यह ग्रन्थ भारतीय जनमानस को भगवान राम के लोक रञ्जक रूप को ग्रहण करके अपने जीवन को सरस बनाते हुए नीरसता, वैषम्य और उदासीनता का परित्याग कर सुखपूर्वक जीवन जीने की प्रेरणा देती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यदि इस महान ग्रन्थ को संकलित करने का प्रयास डॉ0 भगवती प्रसाद सिंह ने न किया होता तो रामायण परम्परा का यह महान ग्रन्थ हमारे समक्ष उपलब्ध नहीं हो पाता। उनके अथक प्रयास से ज्ञान की यह अविकल धारा जन साधारण के सम्मुख प्रवाहित हुई। संस्कृत साहित्य में यह रामायण अत्यधिक आकर्षक, सरस शैली में निबद्ध तथा चमत्कार से पूर्णतः परिपुष्ट है।

रामकथा तथा रामचरित स्वयं में एक आदर्श उत्तम प्रेरणापद अनुकरणीय जीवन चरित है। राम काव्य में भारतीय समाज की मर्यादा, रीति–रिवाज, धार्मिक क्रियाकलाप

आदि का अनन्यन्तम उद्धरण प्रस्तुत किया गया है। भुशुण्डि रामायण में भी राम के इन्हीं उच्चतम आदर्शों का वर्णन किया गया है। इसमें भगवान राम का निष्कलुष, निश्छल, निर्मल नीर की भाँति प्रवाहित सतत् प्रेरणा स्त्रोत जीवन चरित का सम्यक दिग्दर्शन कराया गया है

भुशुण्डि रामायण के श्री राम अन्य राम कथाओं में वर्णित श्री राम से थोड़ा भिन्न हैं। इसमें रामकथा का निरूपण सरस एवं माधुर्य शैली में हुआ है। अन्य कथाओं में वर्णित मर्यादा पुरुषोत्तम राम की छवि यद्यपि इसमें वैसी ही परिलक्षित की गई है फिर भी श्री राम के लोक रञ्जक लीलापूर्ण जीवन चरित का उत्कीर्णन बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसमें अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र राम के चरित्र का वर्णन अत्यन्त ही सुन्दर हृदयग्राही मर्मस्पर्शी काव्य सौष्ठव से परिपूर्ण है। इस ग्रन्थ का सभी के लिए समान महत्व है चाहे वह गृहस्थ हो अथवा संन्यासी स्त्री हो अथवा पुरुष, बालक हो अथवा वृद्ध, धनी हो अथवा निर्धन इस ग्रन्थ को पढ़ने से भक्ति ज्ञान नीति और सदाचार प्राप्त होता है। इस काव्य में वर्णित आदर्शो को ग्रहण करके भारतीय समाज मानसिक परिपुष्टि प्राप्त करता है। यह जीवन की विभिन्न लीलाओं को अनुप्रेरित करते हुए हमें सुखपूर्वक जीवन बिताने की प्रेरणा प्रदान करता है।

इस ग्रन्थ का प्रकाशन चार खण्डों (पूर्व खण्ड, पश्चिम खण्ड, उत्तर खण्ड, दक्षिण खण्ड) में किया गया है। इन खण्डों में पति का पत्नी के प्रति, पत्नी का पति के प्रति, पुत्र का माता के प्रति, माता–पिता का पुत्र के प्रति, राजा का प्रजा के प्रति, प्रजा का राजा के प्रति क्या कर्त्तव्य और अधिकार होने चाहिए इसका समुचित वर्णन हुआ है। इन सभी पारस्परिक व्यवहारों से भारतीय समाज प्रेरणा ग्रहण कर सकता है एवं तदनुरूप व्यवहार करने की चेष्टा करता है। दूसरे रूप में हम कह सकते हैं कि इसको पढ़ने से भक्ति, ज्ञान, नीति और सदाचार प्राप्त होता है। इसलिए इसे सदैव पढ़ना चाहिए तथा तदनुरूप व्यवहार करना चाहिए। भुशुण्डि रामायण में स्वयं ब्रह्मा ने कहा है –

पठनीयं सदैवैतत् पवित्रं चित्त शोधनम्।
मंगलं विघ्नकेटिघ्नम् सुखदं भक्ति वर्द्धनम्।।
आयुष्यमारोग्यकरं धनसम्पद्विवर्द्धनम्।
संकटेषु च कृच्छ्रेषु सर्वापद्विनिवारणम्।। भुशुण्डि उत्तरखण्ड 53/7,8

भुशुण्डि रामायण परम्परा का एक अद्भुत काव्य ग्रन्थ है। जिसमें धर्म, नीति, दर्शन पौराणिक वृत्ति, भक्ति आदि सभी आस्वाद्य हैं। काव्य की आस्वादता के रूप में ग्राह्य उपर्युक्त तत्त्व पाठक के हृदय में इतनी सरलता और शीघ्रता से घुल मिल जाते हैं कि उन्हें इसका पता ही नहीं लग पाता। भारतीय काव्यशास्त्र में आचार्यों ने आस्वाद–धर्मिता को ही रचना धर्म का अन्तिम परिणाम माना है। अतः यह रचना धर्मिता धर्म, नीति, दर्शन, पौराणिक, वृत्ति, भक्ति आदि के ऊपर है। भुशुण्डि रामायण में राम कथा विषय है, धर्मादि मन्तव्य है। ये मन्तव्य रामकथा के सृजन एवं कविकल्पना तथा शिल्प संचेतना तत्त्वों से जुड़कर काव्य पर्यवसायी हो उठते हैं, यह रचना साहित्य की विलक्षण धरोहर तथा सृजन तंत्रों के बहुविध आयामों से बुनी हुई है। व्यापक लोक सम्बन्धों व बहुविध अनुभवों के बीच निर्मित एक आस्थावान कवि की प्रतिभा का प्रमाण है।

आचार्य मम्मट ने भुशुण्डि रामायण जैसे इन कवियों के लिए ही कहा है –

सकल प्रयोजन मौलिभूतं समन्तरमेव रसास्वादन समुद्भूतं विगलितवेद्यान्तनन्दं, प्रभु सम्मिलित शब्दप्रधान वेदादि–शास्त्रेभ्यः सुहृत् सम्मितार्थ तात्पर्यवत्पुराना–दीतिहासेभ्यश्च शब्दार्थ योर्गुणभावेन रसाङ्गभूतव्यापार प्रवणतया विलक्षणं यत्काव्यं लोकोत्तर वर्णना निपुणकविकर्म तत् कान्तेव सरसतापादनेन अभिमुखीकृत्य रामादिवद्वर्तितव्यं न रावणादिवदितिव्युपदेशं च यथयोगं कवेः सहृदयसय च करोतीति सर्वथा तत्र यतनीयम्।

साहित्य समाज का दर्पण होता है साहित्य मनुष्य के मस्तिष्क की उपज है साहित्य और जीवन का अभिन्न सम्बद्ध है। जीवन से परे साहित्य की कल्पना व्यर्थ है। साहित्य अथवा काव्य का महत्व सार्वभौमिक है इसका जीवन में वही महत्व है जो व्यंजनों में लवण का यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि जिस प्रकार शरीर की सुन्दरता का आधार आत्मा है उसी प्रकार जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए काव्य की परमावश्यकता है। काव्य की चारुता औचित्य से ही बढ़ती है। औचित्य काव्य का जीवन है। इन दोनों में अन्याश्रित सम्बन्ध है। औचित्य निरपेक्ष काव्य की कल्पना महत्वहीन है काव्य का महत्व औचित्य को आत्मसात करने की क्षमता में निहित है। यद्यपि विद्वानों ने रस, ध्वनि, रीति को काव्य की आत्मा माना है परन्तु औचित्य के परिपेक्ष में सभी काव्य तत्त्व आ जाते हैं।

औचित्य का निर्वाह साहित्य में आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य है। परन्तु, आज के साहित्य एवं समाज में मौलिक मूल्यों के विघटन का प्रभाव जिस तीव्रता से लक्षित हो रहा है वह अकथनीय है। आज वैज्ञानिक उपलब्धियों ने हमारे जीवन को समुन्नत एवं सक्रिय बना दिया है। साथ ही मानव की बढ़ती हुयी भोगोच्छा तथा विलासिता ने नैतिकता एवं धर्म को ताक पर उठाकर रख दिया है। आज मानव वही करता है जो उसकी तर्कमयी बुद्धि पर खरा उतरता है। आधुनिक युग में स्वतंत्रता का लाभ उठाते हुए व्यक्ति वैयक्तिकता की ओर उन्मुख हुआ है और वैयक्किता ने कुंठाओं तथा विषमताओं को जन्म दिया है, जिससे आज का साहित्य भी अछूता नहीं है। किसी भी साहित्य में यथार्थ का चित्रण आवश्यक है। इसमें केवल समाज की विसंगतियों एवं कुरुपताओं का दिग्दर्शन नहीं होना चाहिए। बल्कि सन्तुलित एवं औचित्य परक दृष्टिकोण होना चाहिए। जो व्यक्ति को यथार्थ का भलीभाँति बोध कराकर आदर्शपूर्वक जीवन जीने की ओर अग्रसर बनाने में सहायक बने। भुशुण्डि रामायण का औचित्य परक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का हमारा उद्‌देश्य केवल साहित्यिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना ही नहीं बल्कि एक नवीन पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवस्था, जिसके मूल में प्रेम तथा सद्भावना निहित हो एक ऐसी व्यवस्था जिसमें संघर्षो का अभाव, एक संतुलित एवं अनुशासित जीवन प्रस्तुत कर उसे जन साधारण तक पहुँचाना है।

प्रस्तुत शोध कार्य को अध्ययन की सरलता की दृष्टि से छः अध्यायों में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय में संस्कृत काव्यशास्त्र का संक्षिप्त परिचय देकर काव्यशास्त्र में औचित्य सिद्धान्त का स्थान एवं महत्व एवं स्वरूप को दर्शाया गया है। तत्पश्चात् भुशुण्डि रामायण का संक्षिप्त परिचय देकर भुशुण्डि रामायण के साहित्यिक सौष्ठव पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय में आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत पद, वाक्य, प्रबन्धार्थ, गुण अलंकार एवं रसगत औचित्य एवं अनौचित्य का निरुपण कर भुशुण्डि रामायण में पद, वाक्य, प्रबन्धार्थ, गुण, अलंकार, रस विषयक औचित्य की सम्यक विवेचना की गयी है।

तृतीय अध्याय में आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत क्रिया, कारक, लिंग, वचन, विशेषण, उपसर्ग, निपात एवं कालगत औचित्य एवं अनौचित्य पर प्रकाश डालने के पश्चात् भुशुण्डि रामायण में क्रिया, कारक, लिंग, वचन विशेषण, उपसर्ग, निपात एवं कालगत औचित्य की सम्यक विवेचना की गयी है।

चतुर्थ अध्याय में आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत देश, कुल, व्रत, तत्त्व, सत्त्व अभिप्राय, स्वभाव एवं सारसंग्रहगत औचित्य एवं अनौचित्य पर प्रकाश डालने के पश्चात भुशुण्डि रामायण में प्रस्तुत देश, कुल, व्रत, तत्व, सत्त्व, अभिप्रायगत औचित्य की सम्यक विवेचना की गयी है।

पंचम अध्याय में आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत प्रतिभा, अवस्था, विचार, नाम, आशीर्वाद गत औचित्य एवं अनौचित्य पर प्रकाश डालने के पश्चात भुशुण्डि रामायण में प्रतिभा, अवस्था, विचार, नाम, आशीर्वाद गत औचित्य की विधिवत विवेचना की गयी है।

षष्ठ अध्याय में अन्य औचित्यगत विधान पर प्रकाश डाला गया है कथा वस्तुगत चरित्रचित्रणगत, रीतिगत, भाषागत पर प्रकाश डालने के पश्चात भुशुण्डि रामायण में कथावस्तु गत औचित्य, चरित्रचित्रणगत औचित्य, रीतिगत औचित्य, भाषागत औचित्य, छन्दोगत औचित्य के विधान पर प्रकाश डाला गया है।

शोध प्रबन्ध के अन्त में उपसंहार के अन्तर्गत अध्याय का निष्कर्ष और सहायक ग्रन्थ विधा को प्रस्तुत किया गया है।

राम के जीवन पर आधारित ग्रन्थ भुशुण्डि रामायण को औचित्य की कसौटी पर कसना मेरे लिए महासागर में छिपे बहुमूल्य रत्नों को खोजने के समान था। जिस प्रकार बूँद–बूँद से बने महासागर में अमूल्य रत्न छिपे रहते हैं उसी प्रकार भुशुण्डि रामायण जैसे महासागर में औचित्य विषयक बहुमूल्य रत्न सर्वत्र व्याप्त हैं। जिसमें मेरा यह एक सूक्ष्म प्रयास ही है। अपने इस शोध कार्य की सम्पूर्ति पर ये सिर्फ इतना ही कहना चाहूँगी कि प्रस्तुत शोध कार्य अपनी सम्पूर्ण न्यूनताओं के साथ साहित्य के अध्येताओं को यदि कुछ दिशा प्रदान कर सका और भुशुण्डि रामायण के अध्ययन की दिशा में औचित्य विषयक कड़ी जोड़ सकी और यह नवीन रूप पाठकों को दिशा प्रदान कर सका तो मैं अपने इस प्रयास को सफल पाऊँगी।

रामोहि विग्रहवान धर्मः

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय	–	**औचित्य सिद्धान्त एवं भुशुण्डि रामायण**	01–41
	(क)	संस्कृत काव्य शास्त्र – संक्षित परिचय	
	(ख)	संस्कृत काव्यशास्त्र में औचित्य सिद्धान्त का स्थान एवं महत्व	
	(ग)	औचित्य स्वरूप विमर्श	
	(घ)	औचित्य सम्प्रदाय में आचार्य क्षेमेन्द्र का स्थान एवं महत्व	
	(ङ)	भुशुण्डि रामायण का संक्षिप्त परिचय	
	(च)	भुशुण्डि रामायण का साहित्यिक सौष्ठव	
द्वितीय अध्याय	–	**पद, वाक्य, प्रबन्धार्थ, गुण, अलंकार एवं रसगत औचित्य**	42–99
	(क)	भुशुण्डि रामायण में पदगत औचित्य	
	(ख)	भुशुण्डि रामायण में वाक्यगत औचित्य	
	(ग)	भुशुण्डि रामायण में प्रबन्धार्थगत औचित्य	
	(घ)	भुशुण्डि रामायण में गुणगत औचित्य	
	(ङ)	भुशुण्डि रामायण में अलंकारगत औचित्य	
	(च)	भुशुण्डि रामायण में रसगत औचित्य	
तृतीय अध्याय	–	**क्रिया, कारक, लिंग, वचन, विशेषण उपसर्ग, निपात एवं कालगत औचित्य**	100–138
	(क)	भुशुण्डि रामायण में क्रियागत औचित्य	
	(ख)	भुशुण्डि रामायण में कारकगत औचित्य	
	(ग)	भुशुण्डि रामायण में लिंगगत औचित्य	
	(घ)	भुशुण्डि रामायण में वचनगत औचित्य	
	(ङ)	भुशुण्डि रामायण में विशेषणगत औचित्य	
	(च)	भुशुण्डि रामायण में उपसर्ग गत औचित्य	
	(छ)	भुशुण्डि रामायण में निपातगत औचित्य	
	(ज)	भुशुण्डि रामायण में कालगत औचित्य	

चतुर्थ अध्याय	–	**देश, कुल व्रत, सत्त्व, तत्त्व, अभिप्राय, स्वभाव एवं सारसंग्रहगत औचित्य**	**139–183**
	(क)	भुशुण्डि रामायण में देशगत औचित्य	
	(ख)	भुशुण्डि रामायण में कुलगत औचित्य	
	(ग)	भुशुण्डि रामायण में व्रतगत औचित्य	
	(घ)	भुशुण्डि रामायण में सत्त्वगत औचित्य	
	(ङ)	भुशुण्डि रामायण में तत्त्वगत औचित्य	
	(च)	भुशुण्डि रामायण में अभिप्रायगत औचित्य	
	(छ)	भुशुण्डि रामायण में स्वभावगत औचित्य	
	(ज)	भुशुण्डि रामायण में सारसंग्रहगत औचित्य	
पंचम अध्याय	–	**प्रतिमा, अवस्था, विचार, नाम एवं आशीर्वादगत औचित्य**	**184–211**
	(क)	भुशुण्डि रामायण में प्रतिभागत औचित्य	
	(ख)	भुशुण्डि रामायण में अवस्थागत औचित्य	
	(ग)	भुशुण्डि रामायण में विचारगत औचित्य	
	(घ)	भुशुण्डि रामायण में नामगत औचित्य	
	(ङ)	भुशुण्डि रामायण में आशीर्वादगत औचित्य	
षष्ठ अध्याय	–	**अन्य औचित्यगत विधान**	**212–247**
	(क)	भुशुण्डि रामायण में कथावस्तुगत औचित्य	
	(ख)	भुशुण्डि रामायण में चरित्र चित्रणगत औचित्य	
	(ग)	भुशुण्डि रामायण में रीतिगत औचित्य	
	(घ)	भुशुण्डि रामायण में भाषागत औचित्य	
	(ङ)	भुशुण्डि रामायण में छन्दोगत औचित्य	
उपसंहार	–		
	(क)	अध्ययन का निष्कर्ष	
	(ख)	सहायक ग्रन्थ विधा	

अध्याय प्रथम

औचित्य सिद्धान्त एवं भुशुण्डि रामायण

प्रथम अध्याय

औचित्य सिद्धान्त एवं भुशुण्डि रामायण

(क) संस्कृत काव्यशास्त्र– संक्षिप्त परिचय

काव्य कञ्जन की निकषग्रावा कसौटी है 'काव्यशास्त्र'। काव्य के समान ही 'काव्यशास्त्र' की अतीव सुसमृद्ध एवं प्रशस्त परम्परा है। भारत के प्राचीन मनीषियों ने काव्यशास्त्र का निरूपण जिस उज्ज्वल प्रतिभा और परिश्रम एवं मनोयोग से किया उसकी प्रशंसा शब्दों में प्रस्तुत करना कठिन है। काव्य के प्रत्येक अंग की विवेचना उसके गुण और दोषों के स्वरूप का कथन तथा उनका सर्वांगपूर्ण विश्लेषण संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। सुदूर प्राचीनकाल से वर्तमानकाल तक अविच्छिन्न रूप से काव्यशास्त्र की महनीय निधि संवर्द्धित होती चली आ रही है। प्राचीन भारतीय आचार्यों ने काव्य विवेचना को काव्य सर्जना से प्रथक रूप में समाहित किया है। इसके महत्त्व को व्यापक एवं गरिमा प्रदान करने के लिए काव्य को दो विधाओं 'काव्य विधा' और 'साहित्य विधा' में परिणित किया है। साहित्य विधा में 'काव्यालंकारशास्त्र' अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त ग्रन्थ है। काव्यशास्त्र के अध्ययन के द्वारा काव्य के स्वरूप गुण, दोष, अलंकार आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। इसमें काव्य के तीन बिन्दुओं कवि, काव्य एवं प्रमाता का सुविस्तृत एवं वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। रस, ध्वनि, रीति, अलंकार, वक्रोक्ति के संदर्भ में काव्य के प्राण तत्त्व की खोज एवं काव्य रसास्वादन के स्वरूप का विश्लेषण किया गया है। संस्कृत भाषा में काव्यशास्त्रीय परम्परा (चिन्तन) का शुभारम्भ नाट्य विवेचन के परिवेश में हुआ। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र संस्कृत काव्यशास्त्र की सर्वप्रथम रचना है। इसका रचनाकाल दूसरी शताब्दी माना है तथा अन्तिम रचना सत्रहवीं शताब्दी में पंडित जगन्नाथ द्वारा रचित रस गंगाधर को माना जाता है। इसके पश्चात् भी अनेक कवियों ने काव्यशास्त्र के संदर्भ में चिन्तन किया है। नाट्यशास्त्र से लेकर रसगंगाधर तक की लगभग डेढ़ दो हजार वर्ष की यात्रा में भारतीय काव्यशास्त्र में अनेक उतार चढ़ाव आये।

प्राचीन आचार्यों ने अपने–अपने चिन्तन के आधार पर अलग–अलग रूपों में आत्मतत्त्व का अवलोकन किया है। किसी ने रस को काव्य की आत्मा माना तो किसी ने ध्वनि को काव्य की आत्मा बताया, किसी ने गुण को तो किसी ने रीति को काव्य का प्राण माना तो कुछ ने अलंकारों को काव्य की आत्मा माना किसी ने उक्ति वैचित्र्य (वक्रोक्ति) को काव्य की आत्मा बताया तो किसी ने औचित्य को आत्मतत्त्व के रूप में परखा।

इस प्रकार विभिन्न आचार्यों द्वारा काव्य के विभिन्न तत्त्वों का काव्यात्मक रूप में दर्शन के फलस्वरूप छः सम्प्रदायों की उत्पत्ति हुयी।

1. रस सम्प्रदाय
2. अलंकार सम्प्रदाय
3. रीति सम्प्रदाय
4. ध्वनि सम्प्रदाय
5. वक्रोक्ति सम्प्रदाय
6. औचित्य सम्प्रदाय

रस सम्प्रदाय –

रस सम्प्रदाय साहित्य का न केवल आदि सम्प्रदाय है, अपितु सर्वाधिक ख्याति प्राप्त सम्प्रदाय भी है। साहित्य में रस के महत्व का प्रवर्तक 'आचार्य भरतमुनि' ने किया। सर्वप्रथम आचार्य भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में रस को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया है आचार्य भरत ने नाट्य के प्रसंग में रस का जैसा मार्मिक प्रस्तुत किया है वह नाट्यशास्त्र में सर्वथा मौलिक एवं मनोहारी प्रसंग है।

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः"[1]

उनकी दृष्टि में 'रस' नाट्य–रचना के लिए इतना महत्वपूर्ण है कि उसके बिना कोई अर्थ ही नहीं प्रवृत्त होता। विभाव, अनुभाव, व्याभिचारी भाव रस के निष्पादक होते हैं। आचार्य भरत ने विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति को बताया है। प्रस्तुत सूत्र में 'संयोगात्' तथा 'निष्पत्ति' शब्द विद्वानों के द्वारा भिन्न–भिन्न रूप में विवेचना का विषय बने। अनेक विद्वानों ने इन शब्दों का भिन्न–भिन्न अर्थ करते हुए अपने–अपने मतानुसार अनेक व्याख्यायें प्रस्तुत की। इन व्याख्याकारों में आचार्य भट्टलोल्लट, आचार्य शंकुक, आचार्य भट्टनायक तथा आचार्य अभिनवगुप्त प्रमुख है।

आचार्य भट्ट लोल्लट ने उत्पत्तिवाद के रूप में अपने मत की स्थापना की है। इनके मतानुसार निष्पत्ति का अर्थ है 'उत्पत्ति'। आचार्य भट्टलोल्लट राम–सीतादि ऐतिहासिक पात्रों में मूलरूप से रस की स्थिति तथा अभिनय के समय उसका आरोप नट में स्वीकार करते हैं।

भट्टलोल्लट का उपर्युक्त सिद्धान्त अनेक दृष्टियों से दोषपूर्ण है। उनके आलोचकों ने इनके मत का खण्डन किया है। उनके मतानुसार सर्वप्रथम तो ऐतिहासिक पात्र अभिनेताओं के सामने प्रस्तुत नहीं होते। दूसरे किसी एक के भावों का दूसरों पर आरोप रसानुभूति कराने में सक्षम नहीं हो सकता है।

---

[1] नाट्यशास्त्र –आचार्य भरत, षष्ठ अध्याय, पृ0 272

आचार्य शंकुक ने आचार्य भट्टलोल्लट के मत के विरोध में अनुमितिवाद की स्थापना की। ये निष्पत्ति का अर्थ 'अनुमिति' तथा संयोग का अर्थ अनुमाप्य अनुमापक का सम्बन्ध मानते हैं। इन्होंने चित्र तुरंगादिन्याय से दर्शकों के द्वारा नट अथवा अभिनेताओं में राम–सीतादि मूल ऐतिहासिक पात्रों का अनुमान करके रसानुभूति की प्राप्ति संभव मानी है।

आचार्य शंकुक के अनुमितिवाद का खण्डन प्रस्तुत करने वाले आचार्य भट्टनायक थे। इन्होंने अनुमान के द्वारा आनन्द की प्राप्ति को असम्भव माना है। कोई भी कल्पित तथा अनुमानित वस्तु रसास्वादन का विषय बन ही नहीं सकती। आचार्य भट्टनायक ने भक्तिवाद की स्थापना करते हुए 'संयोग' का अर्थ 'भोज्य–भोजक' तथा निष्पत्ति का अर्थ भुक्ति अथवा भोग किया है। इनके मतानुसार भोजकत्व से पूर्व दो अन्य व्यापार अभिधा तथा भावकत्व की स्थिति भी होती है। अभिधा के द्वारा पात्र सर्वप्रथम काव्य का अर्थ समझता है, तत्पश्चात् भावकत्व शक्ति के द्वारा सामान्य भावभूमि में रस ग्रहण करता है। इस अवस्था में तम तथा रज से युक्त व्यक्ति का अहंभाव विलुप्त हो जाता है। अवशिष्ट सतोगुण में नायक–नायिका की अनुभूतियाँ विशिष्ट न रहकर सामान्य मानव की अनुभूतियों के रूप में होती हैं। इस साधारणीकरण के पश्चात् दर्शक भोजकत्व शक्ति के द्वारा आनन्द प्राप्त करने में सक्षम होता है। आचार्य अभिनवगुप्त, आचार्य भट्टनायक के भावकत्व और भोजकत्व को स्वतंत्र व्यापार नहीं मानते। इनके मतानुसार प्रत्येक दर्शक अथवा सामाजिक के हृदय में स्वाभाविक रूप में स्थायी भाव विद्यमान रहते हैं। यही स्थायी भाव काव्य के श्रवण अथवा अभिनय–दर्शन के विभावन व्यापार द्वारा सामाजिकों के हृदय में जाग्रत होकर रसानुभूति कराते हैं।

अलंकार सम्प्रदाय –

अलंकारों को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित करने का एवं उसको सम्प्रदाय के रूप में स्थापित करने का श्रेय 'आचार्य भामह' को प्राप्त है। इन्होंने सर्वप्रथम अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में काव्य के अनित्य धर्म के रूप में ग्रहणीय अलंकारों को काव्य की आत्मा घोषित किया तथा उन्हें प्रमुखता देकर काव्य रचना के लिए अनिवार्य तत्त्व की संज्ञा दी।

आचार्य भामह ने अलंकारों के दो विभेद– शब्दालंकार तथा अर्थालंकार किये। शब्द और अर्थ दोनों पर समान रूप से बल देते हुए आचार्य भामह ने वक्रोक्ति को काव्य का सर्वस्व माना है। उनके मतानुसार वक्रोक्ति के बिना कोई भी अलंकार नहीं होता है। (कोऽलंकारोऽनया बिना)

आचार्य भामह के अतिरिक्त आचार्य दण्डी, आचार्य वामन, आचार्य उद्भट्ट, आचार्य रुद्रट आदि आचार्यों को अलंकारवादी आचार्यों की श्रेणी में माना जाता है। इन सभी आचार्यों के द्वारा आचार्य भामह की अलंकारवादी परम्परा को आगे बढ़ाया गया। आचार्य दण्डी ने 'काव्यादर्श' आचार्य उद्भट ने 'काव्यालंकार–सार संग्रह' तथा आचार्य रुद्रट ने 'काव्यालंकार' की रचना की। इन सभी आचार्यों के द्वारा अलंकारों को अलंकरण के रूप में नहीं, अपितु काव्य के स्थायी धर्म, काव्य की

अन्तरात्मा तथा काव्य के सर्वस्व के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। अलंकारवादी समस्त आचार्यों के द्वारा रस को भी रसवत् अलंकार के रूप में अलंकार सम्प्रदाय में अन्तर्भूत किया गया है, परन्तु अनेक रसवादी तथा ध्वनिवादी आचार्यों ने इसका तीव्र विरोध किया है आचार्य विश्वनाथ अलंकारों को काव्य का आवश्यक तत्त्व मानते हुए भी उन्हें रस भावादि के उत्कर्ष में सहायक के रूप में ही स्वीकार करते हैं तथा शब्द और अर्थ को अस्थिर धर्म मानते हैं।

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनिः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽंगदादिवत्।।[7]

अन्य ध्वनिवादी आचार्यों ने भी अलंकारों को आचार्य विश्वनाथ के समान काव्य का अस्थिर धर्म स्वीकार किया है। आचार्य मम्मट अपने ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' में 'सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि' कहकर काव्य में इनकी सर्वत्र उपस्थिति आवश्यक नहीं समझते, परन्तु इनके परवर्ती आचार्यों जयदेव, केशवमिश्र तथा अप्पय दीक्षित आदि ने मम्मट के मत का सशक्त शब्दों में खण्डन कर पुनः आचार्य भामह की परम्परा को पुनरुज्जीवित करने का प्रयास किया।

रीति सम्प्रदाय –

रीति सम्प्रदाय को एक स्वतंत्र सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय 'आचार्य वामन' को है। काव्य की आत्मा के रूप में सर्वप्रथम इसकी प्रतिष्ठा आचार्य वामन ने की। आचार्य वामन ने 'काव्यालंकार–सूत्र' में रीति को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए रीति का इस प्रकार लक्षण बताया है।

"विशिष्टापद रचना रीतिः। विशेषो गुणात्मा"[8]

अर्थात् विशेष प्रकार की पद रचना ही रीति है। शब्द या रचना की यह विशेषता गुण पर आधारित है। इस प्रकार आचार्य वामन काव्य का आधार रीति तथा रीति का आधार गुण को मानते हैं। वामन ने एक ओर 'मार्ग' तथा प्रवृत्ति के स्थान पर रीति नाम का प्रचलन किया और दूसरी ओर उसके भेदों में भी वृद्धि की। वैदर्भी और गौड़ी के अतिरिक्त उन्होंने एक तीसरे भेद पांचाली की भी कल्पना की, आचार्य वामन से पूर्व के विभिन्न आचार्यों (आचार्य भरत, आचार्य भामह, आचार्य दण्डी) ने रीति की विवेचना विभिन्न रूपों में की है। आचार्य भरत ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में रीति से साम्य रखने वाले शब्द 'प्रवृत्ति' का प्रयोग किया तथा उसके चार भेदों आवन्ती, दक्षिणात्या, उड्मागधी तथा पांचाली की व्याख्या की। छठी शताब्दी के आचार्य भामह ने काव्य के प्रकारों के लिए 'वैदर्भ' और 'गौड' का उल्लेख किया, उन्हें हम रीति के ही पर्यायवाची मान सकते हैं। भामह के अनन्तर दण्डी ने भी रीति के स्थान पर मार्ग का प्रयोग किया तथा वैदर्भ एवं गौड दो प्रकार के भेदों की विवेचना की है।

---

[7] काव्यादर्श, आचार्य विश्वनाथ
[8] काव्यालंकार सूत्र –आचार्य वामन (१/२/७–८)

वामन के परवर्ती आचार्यों में आचार्य रुद्रट, आचार्य राजशेखर ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। आचार्य रुद्रट ने आचार्य वामन की तीन रीतियों वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली के अतिरिक्त चौथे भेद लाटी की कल्पना की। किन्तु राजशेखर ने लाटी रीति की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार न कर शैली के तीन प्रकार (वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली) को ही स्वीकार किया।

दसवीं शताब्दी के आचार्य कुन्तक ने रीति के इतिहास में एक नवीन परिवर्तन किया। इन्होंने रीति के विभिन्न भेदों का नामकरण नये ढंग से किया। इन्होंने वैदर्भी रीति को सुकुमार मार्ग, गौड़ी रीति को विचित्र मार्ग तथा पांचाली रीति को मध्यम मार्ग की संज्ञा दी। ग्यारहवीं शताब्दी में भोजराज ने वैदभी, गौड़ी, पांचाली और लाटी के अतिरिक्त दो और नये भेदों आवन्तिका और मगधी की सृष्टि करके उनकी संख्या छैः तक पहुँचा दी, किन्तु परवर्ती विद्वानों ने वामन के भेदों को ही मान्यता दी। आचार्य कुन्तक, आचार्य राजशेखर, भोज आदि आचार्यों ने रीति सम्प्रदाय के अनुयायी न होते हुए भी रीति विवेचन को प्राथमिकता दी। आचार्य विश्वनाथ ने रीति को वर्ण, संघटन, गुण तथा समास का आधार मानते हुए इसे शैली के रूप में प्रस्तुत किया।

आचार्य आनन्दर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया है उनका उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि जो स्थान शरीर में आत्मा का है वही स्थान काव्य में ध्वनि का है।[4]

ध्वनि सम्प्रदाय –

ध्वनि सम्प्रदाय के 'प्रवर्तक' 'आचार्य आनन्दवर्धन' है। आनन्दवर्धन ने अपने गन्थ 'ध्वन्यालोक' में ध्वनि सिद्धान्त पर अत्यन्त विस्तार पूर्वक विचार किया। ध्वनि शब्द का प्रयोग आचार्यों के द्वारा इस प्रकार किया गया है।[5]

1. वह व्यंजक शब्द, जो ध्वनि करे या कराये।
2. वह व्यंजक अर्थ जो ध्वनि करे या कराये।
3. जिसके द्वारा ध्वनि किया जाये वह ध्वनि है इसमें रस, अलंकार और वस्तु व्यंग्य अर्थ के तीनों रूप आ जाते हैं।
4. वह शब्द–शक्ति व्यंजना जिसके द्वारा व्यंजना करायी जाये।
5. जिसमें वस्तु, अलंकार और रसादि ध्वनित हो उस काव्य को ध्वनि कहते हैं।

ध्वनि शब्द के उपर्युक्त पाँचों अर्थों से प्रकट होता है कि ध्वनि शब्द का प्रयोग व्यंजक शब्द, व्यंजक अर्थ, व्यंजना व्यापार तथा व्यंग्य काव्य के लिए होता है। आनन्दवर्धन ने ध्वनि को इस प्रकार परिभाषित किया है।

---

[4] ध्वन्यालोक (आचार्य आनन्दवर्धन) 1/1

[5] ध्वन्यालोक (आचार्य आनन्दवर्धन) 1/13

"यथार्थः शब्दों वा तमर्थमुण्पसर्जनीकृतस्वार्थौ ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सुरभिकथितः।।[*]"

जहाँ पर वाच्य अपने स्वरूप को तथा वाचक अपने अर्थ को गौण बनाकर व्यंग्य अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, वह काव्य विशेष ध्वनि कहलाता है।

शब्द की तीन शक्तियों अभिधा, लक्षणा, व्यंजना में से आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि को प्रमुख माना है। आचार्य आनन्दवर्धन ने व्यंग्यार्थ की प्रमुखता तथा वाच्यार्थ की गौणता को ध्वनिकाव्य (उत्तम काव्य) की संज्ञा दी है तथा जहाँ व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा कम सुन्दर हो उसे गुणीभूत व्यंग्यकाव्य (मध्यम काव्य) माना है तथा जहाँ व्यंग्यार्थ अस्फुट हो उस काव्य को चित्रकाव्य (अधम काव्य) की संज्ञा प्रदान की है। इस प्रकार आनन्दवर्धन ने काव्य के तीन भेद (उत्तम काव्य, मध्यम काव्य, अधम काव्य) माने हैं ध्वनि को 'ध्वन्यालोकाकार' ने दो भागों 'अविवक्षितवाच्यध्वनि' तथा विवक्षितवाच्य ध्वनि में विभाजित किया है। आचार्य आनन्दवर्धन ने अभिधामूल ध्वनि की व्यंजना को रस ध्वनि, अलंकार ध्वनि तथा वस्तुध्वनि के आधार पर तीन प्रकार का माना है। इस ध्वनि की प्रतीति वाच्यार्थ के व्यवधान ज्ञान के बिना ही हो जाती है। किन्तु अलंकार ध्वनि तथा वस्तु ध्वनि में यह बात नहीं होती। इसलिए रसध्वनि को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा 'ध्वन्यालोक' में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि उनसे पूर्व के कतिपय विद्वान भी ध्वनि की चर्चा कर चुके हैं। परन्तु हम उन विद्वानों के विषय में प्रमाणिक विवरण प्राप्त न होने के कारण ध्वनि विचार करने वाले सर्वप्रथम आचार्य आनन्दवर्धन को ही मानते हैं।

आचार्य आनन्दवर्धन ने काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का परिशीलन कर ध्वनि को सर्वोपरि पद पर प्रतिष्ठित किया और ध्वनि सम्प्रदाय की स्थापना की। उन्होंने गुण, अलंकार, रीति आदि सभी को ध्वनि के अन्तर्गत समाविष्ट कर दिया। उनके अनुसार ध्वनि ही एक मात्र तत्त्व है जिसमें सभी काव्य तत्त्व समाहित हो जाते हैं।

आचार्य आनन्दवर्धन के पश्चात अभिनवगुप्त ने इस सम्प्रदाय को पूर्णरूपेण विकसित किया। इन्होंने 'ध्वन्यालोक' पर 'लोचन' नामक टीका लिखकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि व्यंजना शक्ति ही रसाभिव्यक्ति के रहस्य को स्पष्ट कर सकती है।

ध्वनि सिद्धान्त एक प्राचीन सिद्धान्त है। आनन्दवर्धन से पूर्व भी अनेक आचार्यों ने इस विषय पर विचार किया है। ध्वनि का संकेत आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में देखने को मिलता है। नाट्यशास्त्र में रस को प्रमुख तत्त्व स्वीकार किया है और ध्वनि तत्त्व रस का ही विस्तृतीकरण रूप है। आचार्य भरत के पश्चात् अग्निपुराण में रस को काव्य का जीवन कहा गया है और आक्षेप अलंकार को ध्वनि के नाम से अभिहित किया है। इसके अतिरिक्त आचार्य भामह, दण्डी, वामन, कुन्तक

---

[*] ध्वन्यालोक (आचार्य आनन्दवर्धन) 1/13

आदि आचार्यों ने भी प्रकारान्तर से ध्वनि सिद्धान्त को स्वीकार किया है। ध्वनि सिद्धान्त, रस सिद्धान्त का ही विकसित रूप है।

वक्रोक्ति सम्प्रदाय –

वक्रोक्ति सम्प्राय के प्रवर्तक 'आचार्य कुन्तक' हैं। उन्होंने वक्रोक्ति को काव्य का जीवंत (जीवन) कहा है। काव्यशास्त्र में वक्रोक्ति शब्द का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। वक्रोक्ति का अर्थ वक्र उक्ति अर्थात् ऐसा कथन जिसमें वक्रता हो। अर्थात् घुमा फिरा कर कहा गया है। वक्रता का शाब्दिक अर्थ है टेढ़ापन, असामान्य, विचित्र आदि। वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य कुन्तक ने वक्रता का अर्थ "प्रसिद्ध कथन से भिन्न कथन" किया है। अस्तु वक्रोक्ति सम्प्रदाय के अनुसार काव्य का सौन्दर्य एवं उसकी विशिष्टता का लक्षण 'वक्रोक्ति जीवित' नामक ग्रन्थ में आचार्य कुन्तक ने इस प्रकार दिया है।

"वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभंगीभणितिरुच्यते"[7]

अर्थात् वाक्वैदग्ध्यपूर्ण विचित्र उक्ति ही वक्रोक्ति है।

प्राचीन शास्त्रीय ग्रन्थों में वक्रोक्ति का प्रयोग किसी न किसी रूप में मिलता है महाकवि बाणभट्ट की कादम्बरी में वक्रोक्ति शब्द का प्रयोग क्रीड़ा के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

"वक्रोक्ति निपुणेन विलासीजनेन्"[8]

अलंकारवादी आचार्यों ने वक्रोक्ति को व्यापक रूप प्रदान किया है आचार्य भामह ने 'काव्यालंकार' में वक्रोक्ति को सब अलंकारों की जननी माना है। उनके विचारानुसार वक्रोक्ति के अन्तर्गत शब्द और अर्थ दोनों की वक्रता सम्मिलित है। इन्होंने वक्रोक्ति को अतिशयोक्ति का पर्यायवाची स्वीकार करते हुए वक्रोक्ति का अर्थ साधारण कथन से भिन्न माना है।

"लोकातिकान्तगोचरं वचनम्"

अर्थात् "लोक की साधारण कथन प्रणाली से भिन्न उक्ति ही वक्रोक्ति है।" आचार्य भामह, दण्डी, वामन के पश्चात् आचार्य रुद्रट ने वक्रोक्ति का क्षेत्र अत्यधिक संकुचित कर इसे केवल शब्दालंकार के रूप में ही स्वीकार किया। इसी प्रकार आचार्य मम्मट, विधाधर, हेमचन्द्र, जयदेव सभी ने वक्रोक्ति को शब्दालंकार ही माना, किन्तु ध्वनि सम्प्रदाय के आचार्य आनन्दवर्धन ने इसे समग्र अलंकारों का मूल स्वीकार किया। उनके मतानुसार वक्रोक्ति के द्वारा ही काव्य सौन्दर्य की व्यंजना करता है। वस्तुतः यह आचार्य कुंतक की अद्‌भुत प्रतिभा, व्यापक दृष्टि एवं व्यवस्थित चिंतन के समन्वय से उद्‌भुत एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है।

---

[7] वक्रोक्ति जीवितम् (आचार्य कुन्तक) 1/10

[8] शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (गोविन्द त्रिगुणायत पृ0सं0 356)

औचित्य सम्प्रदाय –

ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक भारतीय काव्यशास्त्र के क्षेत्र में प्रमुख रूप में पाँच सम्प्रदाय रस, अलंकार; रीति, ध्वनि और वक्रोक्ति प्रतिष्ठिता को प्राप्त कर चुके थे, किन्तु काव्य की आत्मा के सम्बन्ध में कोई एक सर्वमान्य निर्णय नहीं हो पाया था। अतः आत्मा सम्बन्धी विवाद सुलझने के स्थान पर और अधिक उलझ गया। इसी समय आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य की स्थापना करके इस विवाद को सुलझाया। उन्होंने काव्य में रस, गुण, अलंकार, ध्वनि सभी को स्वीकार किया, किन्तु उसी रूप में जब ये औचित्य से समन्वित हों। इस प्रकार औचित्य सम्प्रदाय काव्य का एक महत्वपूर्ण सम्प्रदाय बनकर निखर उठा। काव्य में औचित्य के महत्त्व को न केवल आचार्य क्षेमेन्द्र, वरन इनके पूर्ववर्ती लगभग समस्त आचार्यों ने किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है। इन आचार्यों ने औचित्य के महत्त्व को सराहा है औचित्य तत्त्व का सर्वप्रथम चिन्तन करने वाले आचार्य भरतमुनि हैं यद्यपि अन्य आचार्यों ने औचित्य का विवेचन सिद्धान्त रूप में किया है। किन्तु उसे सम्प्रदाय विशेष का रूप सर्वप्रथम आचार्य क्षेमेन्द्र ने प्रदान किया।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने 'औचित्यविचारचर्चा' की रचना कर औचित्य का सांगोपांग विवेचन प्रस्तुत किया है। इनके अनुसार काव्य के समस्त तत्त्व रस, ध्वनि, अलंकार, वक्रोक्ति आदि औचित्य के समावेश से ही अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करते हैं, अन्यथा उनमें किसी न किसी दोष का समावेश हो जाता है इसीलिए आचार्य क्षेमेन्द्र ने काव्य के समस्त उपादानों को औचित्य के अन्तर्गत तथा समस्त दोषों को अनौचित्य के अन्तर्गत वर्णित किया है।

आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार – "अलंकार और गुण तभी रुचिकर प्रतीत होते हैं, जब ये औचित्य से समन्वित हों।" आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया है औचित्य क्या है? इसका विवेचन करते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र कहते हैं –

उचित प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते ।।[9]

जो वस्तु जिसके अनुरूप होती है उसे हम 'उचित' कहते हैं और उचित का यही भाव औचित्य कहलाता है।

सर्वप्रथम आचार्य अभिनवगुप्त ने औचित्य का महत्व स्वीकार करते हुए औचित्य से युक्त रसध्वनि को काव्य का जीवितत्त्व माना है। किन्तु आचार्य क्षेमेन्द्र ने साहित्यशात्र में एक नवीन सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा कर रस को काव्य की आत्मा तथा औचित्य को उसके जीवन के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

---

[9] औचित्य विचारचर्चा (आ० क्षेमेन्द्र) कारिका 7

'औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्'[10]

औचित्यविचारचर्चा में आचार्य क्षेमेन्द्र ने काव्य के सूक्ष्माति सूक्ष्म अवयव से लेकर, उसके विशाल रूप को ध्यान में रखते हुए औचित्य के इन सत्ताइस भेदों को स्वीकार किया है।

(1) पदगत औचित्य (2) वाक्यगत औचित्य (3) प्रबन्धार्थगत औचित्य (4) गुणगत औचित्य (5) अलंकारगत औचित्य (6) रसगत औचित्य (7) क्रियागत औचित्य (8) कारकगत औचित्य (9) लिंगगत औचित्य (10) वचनगत औचित्य (11) विशेषणगत औचित्य (12) उपसर्गगत औचित्य (13) निपातगत औचित्य (14) कालगत औचित्य (15) देशगत औचित्य (16) कुलगत औचित्य (17) व्रतगत औचित्य (18) सत्त्वगत औचित्य (19) तत्त्वगत औचित्य (20) अभिप्रायगत औचित्य (21) सारसंग्रहगत औचित्य (22) स्वभावगत औचित्य (23) प्रतिभागत औचित्य (24) अवस्थागत औचित्य (25) विचारगत औचित्य (26) नामगत औचित्य (27) आशीर्वादगत औचित्य।

वस्तुतः हम कह सकते हैं कि काव्यशास्त्र में औचित्य की प्रतिष्ठा से एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हुई है। यद्यपि कुछ काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में पाँच सम्प्रदायों का ही उल्लेख मिलता है। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि यह सिद्धान्त लेखकों की मनन दृष्टि से ओझल हो गया। वस्तुतः औचित्य भाव तो जीवन की भाँति काव्य के सभी अंगों के लिए अपेक्षित हैं। यही कारण है कि अन्य समस्त काव्यांग इसमें समाहित हो जाते है। रस भी रसौचित्य के अन्तर्गत आकर औचित्य से पुष्टता प्राप्त करता हैं। यही एक ऐसा भाव है जिसे समस्त सम्प्रदायवादी स्वीकार करते हैं। इसलिए समस्त तत्त्वों, उपांगों के साथ सम्प्रक्त रहने के कारण कतिपय मनीषियों ने इसका अलग से विवेचन करना उचित नहीं समझा।

(ख) संस्कृत काव्यशास्त्र में औचित्य सिद्धान्त का स्थान एवं महत्व –

संस्कृत काव्यशास्त्र में औचित्य सिद्धान्त का एक विशिष्ट स्थान है। औचित्य का इतिहास अति प्राचीन है, सृष्टि के आदि काल से अब तक इसकी प्रतिष्ठा समान रूप से बनी हुई है। औचित्य का सम्प्रदाय रूप में प्रवर्तन आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा किया गया। यद्यपि आचार्य क्षेमेन्द्र से पूर्व आचार्यों ने काव्य के जीवित तत्त्व के रूप में रस, अलंकार, रीति, ध्वनि और वक्रोक्ति स्वीकार किया है। परन्तु क्षेमेन्द्र को इन उपर्युक्त सम्प्रदायों से संतुष्टता प्राप्त नहीं हुई, उनकी यथार्थवादी अभिरुचि आदर्शवादी समीक्षाओं से संतुष्ट न हो सकी। जीवन यथार्थ के अधिक निकट रहता है अतः क्षेमेन्द्र की विवेकशील बुद्धि ने काव्य को जीवन का ही प्रतिरूप मानकर औचित्यपूर्ण जीवन की श्रेष्ठता के अनुरूप काव्यौचित्य को काव्य का जीवित तत्त्व स्वीकार किया है। **'औचित्यम् रससिद्धस्य स्थिरम् काव्यस्य जीवितम्'** आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपनी विवेचनशील मनीषा एवं संग्रहशील प्रवृत्ति से औचित्य को सम्प्रदाय के रूप में प्रवर्तित किया है।

---

[10] औचित्य विचारचर्चा (आ० क्षेमेन्द्र) कारिका – 20

औचित्य तत्त्व की अनिवार्यता का प्रतिपादन पूर्वाचार्यों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में स्वीकार किया है। आचार्य भरत जो कि रस सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापरक आचार्य माने जाते हैं, ने औचित्य की भाव प्रतिष्ठा कर अपने ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में नाटक के अभिनय का क्षेत्र लोक में औचित्य को स्वीकार किया है। क्योंकि लोक की विषय वस्तु के प्रदर्शन में लोक का विरोध होना भी ठीक नहीं है। विभिन्न दृष्टिकोणों जैसे रूप, वेष, अवस्था, क्रिया आदि में अनुकूलता परमावश्यक है। उनके अभिनय सिद्धान्त में औचित्य–तत्त्व दृष्टिगोचर होता है।

वयोनुरूपः प्रथमस्तु वेषो वेषानुरूपश्च गति प्रचारः ।
गति प्रचारानुगतं च पाठ्यं, पाठ्यानुरूपोऽभिनयश्च कार्यः।।[11]

अभिनय में उम्र के अनुकूल उचित वेष होना चाहिए, जिस प्रकार वेष हो उसी के अनुकूल चलना फिरना तथा कार्य भी होना चाहिए, गति के अनुकूल संवाद तथा संवाद के अनुकूल अभिनय भी होना चाहिए। उनके अनुसार नाटक लोकवृत्त का अनुकरण है जिसमें अनेक भावों एवं अवस्थाओं का समावेश है। वस्तुतः नाट्य--स्वरूप लोकौचित्य के अनुसार होना चाहिए।

आचार्य भरत का मानना है कि लोक में जो वस्तु जिस रूप में, जिस वेष में, जिस मुद्रा में उपलब्ध हो उसका उसी रूप में उसी मुद्रा में उसी वेष में अनुकरण करना चाहिए। उन्होंने इसी को औचित्य की संज्ञा दी है। जो वेशभूषा देशकाल के अनुरूप नहीं होती वह शोभाजनक नहीं हो सकती।

औचित्य के इस महत्त्व को स्वीकार करते हुए कहते हैं –

अदेशजो हि वस्तु न शोभां जनयिष्यति।
मेखलोरसि बन्धे च हास्यायैवोपजायते।।[12]

कोई भी वस्तु यथास्थान धारण न करने से शोभावर्धक नहीं हो सकती। वस्तुतः औचित्य देश और काल की परिस्थिति, मानव स्वभाव, परम्परा एवं प्रकृति के सहज गुणों पर अबलम्बित है। आचार्य क्षेमेन्द्र के पूर्व मनीषियों ने औचित्य के इन समस्त साधनों को स्वीकार किया है।

आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में यद्यपि औचित्य पद का व्यवहार नहीं किया गया है, तथापि नाटक के अभिनय के लिए जो निर्देश दिये उनमें औचित्य का क्रियात्मक महत्त्व दृढ़ता से प्रतिपादित किया है।

आचार्य भरत ने औचित्य को स्वीकार करते हुए इस प्रकार कहा है –

नहिं शक्यं हि लोकस्यस्थावरस्यचरस्य च ।
शास्त्रेण निर्णयं कर्तु भावचेष्टाविधं प्रति ।।[13]

---

[11] नाट्यशास्त्र आचार्य (भरत) 13/64
[12] नाट्यशास्त्र आचार्य (भरत) 23/69
[13] नाट्यशास्त्र (आचार्य भरत) पृ0 26, 116

वास्तव में शास्त्र निर्णय के साथ लोक व्यवहार को भी ध्यान में रखना पड़ता है और क्या उचित है? क्या अनुचित? लोक ही इसका निर्णायक है यदि शास्त्र निर्णय लोक व्यवहार के विरुद्ध होते हैं, तो वे लोकात्मा को ग्राह्य नहीं होते हैं।

लोकसिद्धं भवेत सिद्धं नाट्यं लोक स्वभावजम्।
तस्मान्नट्य प्रयोगे तु प्रमाणं लोक इष्यते ।।
यानि शास्त्राणि यानि शिल्पानि याः क्रिया ।
लोक धर्म प्रवृत्तानि तानि नाट्यं प्रकीर्तितम् ।।[14]

आचार्य भरतमुनि का औचित्य सम्बन्धी यह कथन महत्वपूर्ण है रस दोषों के विवेचन में भी आचार्य भरत ने औचित्य को स्पष्ट रूप से माना है। एक ही व्यक्ति का एक साथ किसी के प्रति जुगुप्सा एवं रतिभाव का आलंबन नहीं हो सकता। निर्वेद के साथ रति का आना अस्वाभाविक है। यदि आचार्य भरतमुनि के इस कथन का अनुगमन किया जाय, तो इन दोषों की स्थिति उपस्थित नहीं हो सकती –

लोक स्वभावसंसिद्धा लोकयात्रानुगामिनः।
अनुभावा विभावाश्च ज्ञेयास्त्वभिनये बुधैः।।[15]

अभिनय में भी सभी प्रकार के औचित्य का ध्यान आवश्यक है। आचार्य भरत ने इसे दो वर्गों में विभाजित किया है – लोकधर्मी का ध्यान आवश्यक है। आचार्य भरत ने इसे दो वर्गों में विभाजित किया है – लोकधर्मी एवं नाट्यधर्मी। लोकधर्मी या लोक व्यवहार में लोक से सिद्ध धर्मों को ग्रहण करना चाहिए। नाट्यधर्मी के रूप में नाट्यशास्त्र की पारम्परित विधि का विधान है। इसे अन्तर्गत वृत्ति, प्रवृत्ति, स्वर, गान और रंग का समावेश है। वृत्ति चार प्रकार की होती है – भारती, सात्वकी, कौशिकी एवं आरभटी। भारती वृत्ति पुरुष पात्रोचित होती है। सात्वकी वृत्ति में सत्त्व, गुण, चरित्र प्रमुख होता है। आरभटी वृत्ति का विधान मुख्यतया भयानक वातावरण की सृष्टि करता है वस्तुतः ये सभी वृत्तियाँ औचित्य की अपेक्षा रखती हैं।

आचार्य भरत की औचित्य मूलक भावदृष्टि को कई आचार्यों ने स्वीकार किया है। यद्यपि आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में इसके महत्त्व को मुक्त कण्ठ से स्वीकार नहीं किया। परन्तु इसे अप्रत्यक्ष रूप से नाट्यशास्त्र में देखा गया है।

आचार्य धनंजय ने 'दशरूपक' में भरतमुनि की अधिकांश बातों का परिष्कार एवं संक्षेप रूप प्रस्तुत किया है। लोक के औचित्य पर नाट्य देखने वाले आचार्य भरत के 'लोकानुकरण नाट्यम्' को धनंजय ने 'अवस्थानुकृतिनाट्यम्' की संज्ञा दी है। साहित्यदर्पकार आचार्य विश्वनाथ ने धनंजय के तथ्यों का परिष्कार और विस्तार किया है। इन्होंने भट्टनारायण के साधारणीकरण का विशद रूप से स्पष्टीकरण किया है।

---

[14] नाट्यशास्त्र (आ0 भरत) पृ0 26. 113
[15] नाट्यशास्त्र (आ0 भरत) पृ0 26. 716

आचार्य भामह अलंकार सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य हैं इन्होंने अलंकारों को काव्य का शोभावर्धक धर्म माना है। आचार्य भामह ने स्पष्ट करते हुए कहा कि – "जो वस्तु असाधु है शोभाहीन है वह आश्रय विशेष के सौन्दर्य से शोभाशालिनी बन सकती है। काजल काला है, किन्तु रमणी के नेत्रों की शोभा को द्विगुणित कर देता है। सौन्दर्य कतिपय रेखाओं का सन्तुलित, सामन्जस्य अथवा समस्यात्मक स्वरूप है। औचित्य की मर्यादा भी इसी संतुलन में है। अतः शोभा या सौन्दर्य दोनों ही औचित्य की सीमा में आ जाते हैं। इसी संतुलन का अभाव आचार्य भामह ने दोषों के विवेचन में किया है। उन्होंने औचित्य को काव्य का सबसे बड़ा गुण तथा अनौचित्य को काव्य का सबसे बड़ा दोष माना है।"

आचार्य दण्डी भी अपने काव्यादर्श में औचित्य के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। आचार्य दण्डी दोष परिहार के रूप में औचित्य की मीमांसा करते हैं। दण्डी के अनुसार जो लोकरञ्जन करने में समर्थ हो वही उत्तम काव्य है। उनके अनुसार अलंकारों को इस प्रकार का होना चाहिए जिससे सहृदयों के मन में किसी प्रकार की अरुचि न उत्पन्न हो। वस्तुतः लौकिक मर्यादा का अतिक्रमण न करने वाला सर्वमनोहारी गुण औचित्य ही है।

अलंकारों को दण्डी ने दो भागों में विभक्त किया है – स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति। स्वभावोक्ति में वे वर्ग आते हैं जिनमें वर्ण्य वस्तु के स्वरूप एवं क्रिया प्रतीति आदि का औचित्य विद्यमान रहता है। इसमें औचित्य का सन्निवेश तभी होगा जब वह सहज एवं यथार्थ रूप में प्रस्फुटित हो। वक्रोक्ति में वर्ण्य वस्तु को किसी भंगिमा द्वारा प्रकट किया जाता है। इसमें लोक विलक्षणता प्रमुख रूप में विद्यमान रहती है। आचार्य दण्डी ने काव्य के जिन दोषों का भी वर्णन किया है वे दोष किसी न किसी अनौचित्य के कारण ही प्रकट होते हैं। जिस कारण अनौचित्य का प्रादुर्भाव होता है, उसी के नाम से दोष का अभिधान किया जाता है, उदाहरणार्थ अर्थ का किसी प्रकार सन्तुलन न होने पर अर्थदोष, छन्दों के लक्षणों का निर्वाह न होने पर छन्ददोष। आचार्य भामह की तरह दण्डी भी स्वीकार करते हैं कि प्रायः सभी दोष परिस्थिति विशेष में कवि कौशल को पाकर गुण बन जाते हैं।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य दण्डी भी औचित्य के विषय में पर्याप्त जागरुक थे उनके कथनों का पूर्ण भाव है कि अनुचित स्थान पर सन्निवेश के कारण ही दोष की दोषता है और उचित स्थान पर निवेश के कारण दोषों का दोषत्व–परिहार हो जाता है।[16]

आचार्य रुद्रट अलंकारसम्प्रदाय के आचार्य हैं। इन्होंने अपने ग्रन्थ काव्यालंकार में अलंकार ही नहीं, अपितु काव्य के अन्य अंगों पर भी विचार किया है।

एताः प्रयत्नवादधिगम्य सम्यक् औचित्यमालोच्य यथार्थसंस्थम्।
मिश्राः कवीन्द्रै रचनाल्पदीर्घाः कार्या मुहुश्चैव गृहतिमुक्ताः ।।[17]

[16] काव्यादर्श – आ० दण्डी, 1/42
[17] काव्यालंकार (आचार्य रुद्रट) 3/59

वे विभिन्न काव्यांगों के प्रसंग के निरुपण में औचित्य को स्वतंत्र रूप से उपन्यस्त करते हैं। उनके अनुसार देश, कुल, जाति, विद्या, धन, आयु, स्थान, पात्रों के व्यवहार वेश में अनौचित्य होने से ग्रामत्व दोष आ जाता है।

आचार्य रुद्रट के अनुसार अनुप्रास तथा यमक के प्रयोग में औचित्य की निर्णायक भूमिका रहती है। यमक अलंकार निरुपण कर उन्होंने औचित्य का जो विधान प्रस्तुत किया वह सभी परवर्ती आचार्यो के लिए अनुकरणीय सिद्ध हुआ। आचार्य रुद्रट के अनुसार जो कवि औचित्य की महिमा एवं उसके लाभ को समझाता वही काव्य में रस युक्त अलंकार का सम्यक प्रयोग कर सकता है। काव्य में यदि रस से युक्त अलंकार का सटीक प्रयोग न किया जाये तो फिर काव्य सुन्दर न होकर असुन्दर अर्थात् कुरूप रूप धारण कर लेगा। आचार्य रुद्रट के मत का अति संक्षेप में विश्लेषण करने से स्पष्ट हो जाता है कि वे अपने काव्य में औचित्य सिद्धान्त की सत्ता को सामान्य रूप से स्वीकार करते हैं।[18]

ध्वन्यालोककार "आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि सम्प्रदाय के आचार्य होते हुए भी रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है एवं औचित्य को उसका पोषक तत्त्व बतलाया है" –

अनौचित्यादृते नान्यद् रसभंगस्यकारणम्।
औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा ।।[19]

"रस प्रक्रिया में विभाव, अनुभाव और संचारी की उचित योजना चारुता उत्पन्न करती है तथा रस दोषों से काव्य की रक्षा करती है। भावौचित्य में उत्तम एवं दिव्य आदि प्रकृतियों के औचित्य आते हैं इन प्रकृतियों के विरुद्ध योजना में रस की क्षति होती है। इसके लिए जिस उचित कथानक की परिकल्पना की जाती है, उसमें प्रधान एवं प्रासंगिक कथाओं में क्या सम्बन्ध रखना चाहिए, उनका संयोजन किस प्रकार होना चाहिए, यह सब कथानक की उचित योजना के अंग हैं। अंगों की संघटना भी रसाभिव्यक्ति से अधिक विस्तार या संकोच उत्पन्न होने पर दोष आ जाता है।"[20]

आनन्दवर्धन से प्रेरणा प्राप्त कर आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य का स्वतंत्र सिद्धान्त के रूप में संस्थापित किया है। वे काव्य के सभी तत्त्वों में औचित्य को समाविष्ट करते हैं। औचित्य विचारचर्चा में आचार्य क्षेमेन्द्र ने रस के आवश्यक अंगों के रूप में औचित्य का सम्यक चिार किया है। उनका स्पष्ट अभिमत है कि औचित्य ही रस का प्राण है और काव्य में चमत्कारी तत्त्व है। जिस काव्य में जीवित भूत औचित्य नहीं उसमें अलंकारों और गुणों का प्रयोग निरर्थक है।

"अलंकारस्त्वलंकाराः गुणाः एव गुणाः सदा ।
औचित्यं रस–सिद्धस्य स्थिरं काव्यस्थजीवितम्।।"

---

[18] काव्यालंकार (आचार्य रुद्रट) 3/60
[19] ध्वन्यालोक (आचार्य आनन्दवर्धन) 3/15
[20] ध्वन्यालोक (आनन्दवर्धन) 3/10, 14

आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि अलंकारों में अलंकारत्व तभी होता है, जब उनका विन्यास उचित स्थान पर किया गया हो और गुणों में गुणत्त्व तभी होता है जब वे औचित्य से च्युत न हों।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ औचित्यविचारचर्चा में सत्ताइस अवस्थाओं में औचित्य की स्थिति अथवा उल्लंघन दिखाया है। उन्होंने अपनी योग्यता के साथ औचित्य के भेदों का निरूपण किया है। आचार्य के समय में पाँच सम्प्रदायों रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि को प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी। परन्तु काव्य के प्रधान आधारभूत तत्त्व सौन्दर्य के विषय में कोई निर्णय नहीं हो सका था। रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति के विद्वान स्वसम्प्रदाओं को महत्ता प्रदान करते थे। अन्य सम्प्रदाओं को महत्त्वहीन समझते थे। आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य को सर्वत्र स्वीकार करते हुए स्पष्ट किया है कि यथा सांसारिक जीवन में सर्वत्र औचित्य की प्रधानता है उसी प्रकार काव्य के क्षेत्र में भी औचित्य की आवश्यकता होती है। औचित्य के अभाव में काव्य उपहास का विषय बन जाता है। आचार्य ने पूर्व काल से चले आ रहे औचित्य सिद्धान्त को तत्काल विद्वानों के समक्ष व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत कर उनकी स्वसम्प्रदाय प्रमुखता की धारणा को परिवर्तित कर दिया। उन्होंने प्रतिपादित किया कि काव्य में रस, अलंकार, ध्वनि तथा अन्य विशेषताओं का महत्त्व तभी है जब उसमें औचित्य का समन्वय हो। औचित्य का समन्वय होकर ही रस, अलंकार आदि अलंकृत होते हैं। अन्यथा असौन्दर्य को ही जन्म देते हैं।

आचार्य कुन्तक का "वक्रोक्ति जीवित" नामक ग्रन्थ उसके आचार्यत्व का एक मात्र प्रख्यापक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का प्रमुख विषय वक्रोक्ति का निरूपण है। यही वक्रता काव्य का प्राणभूत तत्त्व है, जो आचार्य कुन्तक के शब्दों में औचित्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

"तत्र पदस्थ तावत्औचित्यं बहुविधमेंदतमिन्ने वक्रमावः।"[21]

अर्थात् वक्रभाव का तात्पर्य पद का औचित्य है और यह अनेक प्रकार का है। काव्य का प्रयोजनीय तत्त्व सौन्दर्य के दो गुण स्वीकार किये है – साधारण और असाधारण। साधारण के पुनः दो भेद किये – औचित्य और सौभाग्य। कोई भी काव्य इन गुणों से बाहर नहीं रह सकता। औचित्य का प्रत्यक्ष रूप से काव्य का साधारण गुण मानना इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि काव्य के स्वरूप को औचित्य के बिना समझा नहीं नहीं जा सकता।

आचार्य कुन्तक के अनुसार – "वर्ण्य योजना – वर्ण्य वस्तु के औचित्य को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए। आचार्य कुन्तक के अनुसार वर्ण्य योजना– वर्ण्य वस्तु के औचित्य को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए।"

आचार्य कुन्तक ने औचित्य के विषय में बतलाते हुए कहा है "जिस सरल वर्णन के द्वारा स्वभाव के महत्व का पोषण होता है वही औचित्य गुण है और इसका प्राण है उचित आख्यान अर्थात् यथानुरूप वर्णन।"[22]

[21] औचित्य सम्प्रदाय का हिन्दी काव्यशास्त्र पर प्रभाव – डॉ0 चंदहंस पाठक, पृ0 99
[22] वक्रोक्ति जीवतम् (आ0 कुन्तक) 1/35

आचार्य कुन्तक ने औचित्य को सर्वाधिक व्यापक काव्यतत्व स्वीकार किया है। जहाँ उन्होंने वक्रोक्ति के अवान्तर भेदों को दर्शाया है वहाँ भी वे औचित्य को आधारभूत तत्त्व मानते हैं।

ध्वनि सिद्धान्त के प्रबल विरोधी थे आचार्य महिमभट्ट ने ध्वनि सिद्धान्त का विरोध करते हुए भी आनन्दवर्धन की रस तथा औचित्य सम्बन्धी मान्यताओं को पूर्णरूपेण स्वीकार किया है इन्होंने रस को काव्य के अन्तरंग अथवा प्राणतत्त्व के रूप में मान्यता देकर रस प्रतीति औचित्य के द्वारा संभव मानी है। काव्य मे अनौचित्य ही एकमात्र दोष है, जो रस प्रतीति में बाधक है। महिमभट्ट ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ व्यक्तिविवेक में लिखा है कि औचित्य एक ऐसा काव्यतत्त्व है। जो काव्यस्वरूप के निरूपण की महिमा से स्वतः सिद्ध हो जाता है उसका अलग से चर्चा करना व्यर्थ है।

आचार्य भोज ने 'सरस्वती कण्ठाभरण' तथा 'श्रृगार प्रकाश' दोनों ही ग्रन्थों में औचित्य की आवश्यकता प्रतिपादित की है। आचार्य भोज ने औचित्य की ओर संकेत करते हुए औचित्य को गुण, अलंकार तथा दोषों के मूलरूप में स्थान भी दिया है, परन्तु औचित्य को वह स्थान नहीं प्रदान किया जो अन्य पूर्ववर्ती आचार्यों की रचनाओं में पाया जाता है। उन्होंने गौण रूप से उसकी अनिवार्यता स्वीकार की है। भोज ने औचित्य को दो वर्गों में विभाजित किया है लघु औचित्य एवं व्यापक औचित्य। लोक सामान्य व्यवहार के विरोध का परिमार्जन जिसमें हो, वह लघु औचित्य है और जहाँ विरोध परिमार्जित होने के साथ–साथ गुण भी बन जाये, वहाँ व्यापक औचित्य की स्थिति समझी जानी चाहिए।

आचार्य मम्मट ने 'काव्य प्रकाश' के दूसरे सातवें तथा आठवें उल्लास में औचित्य पर विस्तृत प्रकाश डाला है। शब्दीव्यंजना के अनेक अर्थों में से प्राकरणिक एवं अप्रकारणिक का उल्लेख किया है। जिसका अर्थ अन्य टीकाकारों ने योग्यता माना है। महिमभट्ट ने अनौचित्य के अन्तर्गत जिन अन्तरंग एवं बहिरंग दोषों का विवेचन किया है उनका विस्तृत उल्लेख आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश के सप्तम उल्लास में किया है आचार्य मम्मट ने इन दोषों पर ही नहीं, वरन ये दोष किन परिस्थितियों में गुण बन जाते हैं इस पर भी प्रकाश डाला है। 'अष्टम उल्लास' में इन्होंने रीति में औचित्य का निरूपण किया है।[23]

पंडितराज जगन्नाथ ने औचित्य का अर्थ योग्यता से माना है। भरत ने योग्यता के निर्धारण की कसौटी लोक–व्यवहार माना हैं उसी प्रकार पंडित जगन्नाथ ने योग्यता का निर्धारण लोक व्यवहार को स्वीकार किया है।[24]

आचार्य विश्वनाथ ने रस की परिभाषा में जिन गुणों को स्थान दिया है वे भी सहज बोधगम्य एवं अनुभूत सीमा के अन्तर्गत हैं। रसानुभूति के समय सत्व का जो उद्रेक होता है, उस समय मानव कुछ समय के लिए ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है जिसे नीरजस्तम की संज्ञा दी गयी है इस स्थिति में न राग वर्तमान रहता है, न द्वेष

[23] औचिती योग्यता–रस गंगाधर (द्वितीय आनन)
[24] रसगंगाधार, प्रथम आनन

जहाँ रजोगुण एवं तमोगुण का परिहार हो जाता है। यह स्थिति चिन्मयी है। जो समस्त प्राकृतिक सीमाओं से परे है ऊर्ध्य स्तर पर पहुँचा हुआ मानव प्रकाश में पहुँचने पर जिस आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता है, वही आनन्द रस दशा में अनायास प्राप्त हो जाता है। यह सामान्य मानव की रजोमयी एवं तमोमयी प्रवृत्ति के कारण दुर्लभ हैं। इस प्रयोजन में अनौचित्य के लिए कोई भी स्थान नहीं है।

रस की तरह अलंकारों में भी औचित्य के दर्शन होते हैं। यदि काव्य में अलंकारों की ही प्रधानता हो, तो काव्य अनौचित्य की सीमा का स्पर्श करेगा। आचार्य विश्वनाथ ने अलंकारों को शब्द और अर्थ का अस्थिर धर्म मानते हुए औचित्य की विवेचना की है।

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोमाति शायिनः।
रसादिनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्ते अंगदादिवत्।।[25]

संस्कृतकाव्यशास्त्र में औचित्य सिद्धान्त का महत्वपूर्ण स्थान है आचार्य भरत के साथ–साथ अन्य अलंकारिक आचार्यों ने अपने अपने दृष्टिकोणों से काव्य में औचित्य तत्व की विशेषता को बल दिया है। इसका एक प्राचीन इतिहास है। तथापि औचित्य का सर्वांगीर्ण विवेचन प्रस्तुत करते हुए इसे आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय आचार्य क्षेमेन्द्र को ही दिया जाता है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य का स्वरूप, लक्षण, प्रकृति, प्रयोजन, क्षेत्र आदि का विशद विवेचन कर औचित्य तत्त्व को एक नूतन एवं श्लाध्य सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत किया है।

(ग) औचित्य स्वरूप विमर्श

औचित्य का स्वरूप इतना विशाल है कि उसे सरलतापूर्वक परिसीमन नहीं किया जा सकता। संसार की प्रत्येक वस्तु में औचित्य व्याप्त है। कोई भी वस्तु औचित्य से अछूती नहीं है भगवान के अवतारों की कल्पना भी औचित्य पर आधारित है। भगवान ने समय–समय पर यथा अवतार लेकर औचित्य की स्थापना की है। भगवान के मत्स्य से लेकर कल्कि तक के सभी अवतार 'औचित्य' की ओर संकेत करते हैं। समयानुकूल उन्हें जिस तरह की उपयुक्तता अनुभव होती थी, वैसा ही वे अवतार लेते थे। जब उन्हें दुष्ट हिरण्यकशिप का वध करना था तब उन्होंने समयानुकूल भीषण नृसिंह रूप में अवतार लिया, और जब अमृतपान के अवसर पर दैत्यों को छलने का समय था तब उन्होंने एक सुन्दरी के रूप में अवतार धारण करने को ही उपयुक्त समझा।

'औचित्य' से कदापि च्युत न होने के कारण भगवान का 'अत्युत' नाम सार्थक एवं उपयुक्त है। इस प्रकार हम देखते हैं कि औचित्य एक ईश्वरीय तत्त्व है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य की प्रतिष्ठा भगवान विष्णु के माध्यम से की। विष्णु ही परम् औचित्य के प्रतिष्ठापक हैं।[26]

---

[25] साहित्य दर्पण – आचार्य विश्वनाथ 10/11
[26] अच्युताय नमस्तस्यै परमौचित्यकारिणे। औचित्यविचारचर्चा, पृ0 1

जिस परमात्मा ने अपने विभिन्न अवतारों में 'औचित्य' को सिद्ध किया है। मानव–जगत उसका अनुकरण अपने व्यवहारिक जीवन में चाहे सम्पूर्णता से न कर सका हो किन्तु सैद्धान्तिक रूप से यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि 'औचित्य' का उसने किसी न किसी रूप में अवश्य पालन किया है। इसका प्रमाण है कि आदि काल से ही मनुष्य उस व्यवहार को अच्छा समझता है जो औचित्य से युक्त होता है अथवा औचित्य पर आधारित होता है। उस व्यवहार को गलत या दुराचरण की संज्ञा दे दी जाती है, जब वह 'औचित्य पूर्ण' नहीं होता है।

इस प्रकार के व्यवहारों के समूह का नाम ही लोक है। पति–पत्नी, भाई–बहन, माता–पिता, गुरू–शिष्य, राजा–प्रजा एवं मानव–मानव के प्रति जो व्यवहार होता है उन्हीं को मिलाकर लोक व्यवहार की एक सीमा निश्चित होती है। यदि इसको निश्चित करते समय 'औचित्य' का ध्यान न दिया जाये तो यह संसार लुप्त हो जाएगा। हमारे सांसारिक व्यवहार में सबसे आवश्यक बात यह है कि हमारा व्यवहार किस व्यक्ति से कैसा होना चाहिए। किस वस्तु की स्थापना किस जगह पर होनी चाहिए। थोड़ी सी असावधानी के कारण यदि 'औचित्य पूर्ण' आचरण न हुआ या आचरण में औचित्य की कमी रह गई तो वह आचरणकर्ता संसार में हेय अर्थात् निन्दनीय दृष्टि से देखा जाएगा।

हम लौकिक जीवन में अपने द्वारा किये गये व्यवहारों में पाप एवं पुण्य के विषय में कल्पना करते हैं। साधारणतः जिस वस्तु या व्यक्ति के साथ तदुपयुक्त आचरण न करने पर हम उस आचरण को पाप की संज्ञा दे देते हैं, ठीक इसके विपरीत यदि हमारा आचरण समयानुकूल एवं उपयुक्त होता है तो हम उसे पुण्य की संज्ञा दे देते हैं। उदाहरणार्थ – 'दयनीय व्यक्ति के साथ दया करना उचित है, यदि वह न की गई तो इस आचरण की गणना पाप में होगी और उसके प्रति दयापूर्ण आचरण को हम पुण्य आचरण के अन्तर्गत देखेंगे।'

इस भौतिक संसार में सौन्दर्य भाव की कल्पना भी 'औचित्य' के आधार पर ही की जाती है। इस संसार में हम किसी भी वस्तु को सुन्दर इसलिए कहते हैं क्योंकि उसमें औचित्य परिपूर्ण रूप से लक्षित होता हैं इसके विपरीत हम उसी वस्तु को असुन्दर इसलिये कहेंगे कि उसमें 'औचित्य' का अभाव है। इस सांसारिक पदार्थों के अपने–अपने विशिष्ट एवं निश्चित स्थान होते हैं। जब कभी ये स्थान भ्रष्ट हो जाते हैं, तो यह अपना महत्त्व एवं अपनी सुन्दरता खो देते हैं।

मानव अपने शरीर को अलंकृत करने के लिए विभिन्न प्रकार के आभूषणों का प्रयोग करता है। यह सभी आभूषण तभी सुशोभित होते हैं जब वह उन्हें उचित स्थान पर धारण करता है। इसके विपरीत वह उन्हें अनुचित स्थान पर धारण कर लेगा, वह आभूषण उसकी सुन्दरता के स्थान पर कुरूपता एवं हँसी का पात्र बना देते हैं। हमारे विभिन्न कवियों ने इसे अपनी रचना में उद्घृत किया है। इन कवियों में आचार्य क्षेमेन्द्र तो हैं ही साथ ही साथ हिन्दी काव्य जगत् के महाकवि तुलसीदास और बिहारी जी हैं। हिन्दी साहित्य के महाकवि तुलसीदास ने भी रामचरितमानस में आभूषणों को धारण करने के विषय में स्पष्ट रूप से 'औचित्य' की प्रधानता सिद्ध की है। वे कहते हैं कि –

मनि मानिक मुक्ता छवि जैसी ,
अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी।
नृप किरीत तरुनी तनु पाई ,
लहहि सकल शोभा अधिकाई ।।[27]

"मणि, मणिक और मोती की जैसी छवि है। वह साँप, पर्वत, हाथी के मस्तक पर वैसी शोभा नहीं पाती है, राजा के मुकुट और नवयुवती स्त्री के शरीर को पाकर ही यह सभी अधिक शोभा को प्राप्त होते हैं।"

मनुष्य के गुणों की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। उसके गुण यदि औचित्य से परिपूर्ण हैं तभी वे गुण कहलायेंगे, अन्यथा वही गुण औचित्य से परिपूर्ण न होने पर दोष बन जाते हैं। यद्यपि दया, क्षमा एवं अहिंसा निःसंदेह मानव के दैवीय गुण हैं, किन्तु किसी नरभक्षी व्याघ्र के सामने उस पर दया या अहिंसा का प्रदर्शन करना मात्र कायरता ही नहीं बल्कि वह उसे कर्त्तव्य भ्रष्टता की सीमा पर भी पहुँचा देती है। फलतः यही मानना पड़ता है कि दया, अहिंसा एवं क्षमा आदि गुण पुरुष की शोभा की वृद्धि तभी करते हैं जब वे सभी 'औचित्य' की परिधि में हो, अन्यथा नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानवीय आचरण से लेकर ईश्वरीय आचरण तक सभी 'औचित्य' की सीमा के अन्तर्गत आते हैं। औचित्य का अखण्ड साम्राज्य मानव लोक से लेकर देव लोक तक सर्वत्र विस्तृत है। यदि औचित्य का आदर काव्य जगत में भी हो तो इसमें किंचितमात्र संदेह नहीं करना चाहिए, क्योंकि काव्यकला तो इस संसार में प्रतिबिम्ब का कार्य करती है।

इसी प्रकार इस संसार में ललित कला भी 'औचित्यपूर्ण' होने पर ही कला प्रेमी अथवा सहृदय लोगों के हृदय को सुख पहुँचा सकती है। यदि यही कला अनौचित्यपूर्ण है तो फिर यह कदापि कला के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो सकती है और संसार में प्रशंसा के स्थान पर उसे उपेक्षा का शिकार होना पड़ेगा। उदाहरणार्थ चित्रकला को ही ले लीजिए, क्योंकि चित्रकला का चमत्कार 'औचित्य' के प्रयोग पर निर्भर करता है। चित्र निर्माण करते समय देशकाल, वेषभूषा की समानता, रूप-रंग, भाव-भंगिमाएँ आदि तत्त्व कला समीक्षकों से कभी भी अपिरिचित नहीं रह सकते हैं।

क्या किसी सज्जन पुरुष का चित्र किसी दुष्ट पुरुष की चित्रशैली में चित्रण उपयुक्त लगेगा? अथवा किसी तरुणी नवयौवना का चित्र किसी मरणासन्न वृद्धा स्त्री की चित्रशैली में उपयुक्त रहेगा? कदापि नहीं। इस प्रकार की चित्रशैली दर्शकों को प्रमुदित करने के स्थान पर नीरसता उत्पन्न करेगी।

इस प्रकार हमें मानना पड़ेगा कि कोई भी कला 'औचित्य' से परिपूर्ण न होने पर वास्तविक कला का रूप नहीं ले सकती है। मानव समुदाय के हृदय पटल को प्रफुल्लित करने के लिए कला का औचित्यपूर्ण होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

---

[27] रामचरितमानस 1/10

चित्रकला में भी 'औचित्य' का एक छत्र राज्य स्थापित करने के उपरान्त काव्य कला की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट हो जाता है, क्योंकि काव्य भी एक कला है अतः काव्य में भी हमें 'औचित्य' की महती आवश्यकता हमें माननी ही पड़ेगी। हमारी भारतीय परम्परा के अनुसार चाहे वह दृश्य अथवा श्रव्य काव्य हो। काव्य का मुख्य लक्ष्य दर्शकों या श्रोताओं में काव्य के माध्यम से रसोन्मीलन करना होता है और इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु काव्य में औचित्य की अत्यन्त आवश्यकता होती है। अनुचित मंच रचना जिस प्रकार नाटक देखने वालों को प्रमुदित नहीं कर पाती है, उसी प्रकार से अनुचित पद प्रयोग भी काव्य के श्रोताओं को प्रमुदित करने के स्थान पर नीरसता उत्पन्न करता है।

औचित्य शब्द की व्युत्पत्ति –

उच धातु में क्त प्रत्यय के लगने से उचित शब्द की निष्पत्ति होती है। इस उचित शब्द में भावार्थक ष्यञ प्रत्यय के योग से औचित्य शब्द की सिद्धि होती है। औचित्य शब्द की निष्पत्ति उचित शब्द से हुई है। सामान्य रूप से औचित्य शब्द का अर्थ व्युत्पत्ति की दृष्टि से एवं व्यवहारिक दृष्टि से एक ही है, और वह है उचित। 'उचितस्य भावः औचित्यम्'। उचित के भाव को औचित्य कहते हैं। आचार्य क्षेमेन्द्र का कथन है कि –

उचित प्राहुराचार्याः सदृशं किलयस्य यत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्य प्रचक्षते।।

"जो वस्तु किसी अन्य वस्तु के सदृश अर्थात् अनुरूप होती है, आचार्यगण उसी को उचित की संज्ञा देते हैं, उचित का जो भाव है वह ही औचित्य कहलाता है।"[28]

किसी भी वस्तु को जो अपने में स्वतंत्र एवं निरपेक्ष है, सुन्दर या असुन्दर नहीं कहा जा सकता है, बल्कि वह दूसरे तत्त्वों व वस्तुओं के अनुरूप संयोग से ही सुन्दर बनती है। अनुरूप वस्तुओं के संयोग के अभाव में वही वस्तु सुन्दर की जगह असुन्दर बन जाती है। आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार जिस प्रकार शरीर के समस्त भाग में व्याप्त जीवन कुछ मर्म स्थानों में स्पष्ट रूप से स्फुटित होता हुआ प्रतीत होता है, उसी प्रकार काव्य के मर्म स्थान इन पद, वाक्य, प्रबन्धार्थ आदि स्थानों में स्पष्ट रूप में स्फुटित होने वाला औचित्य ही काव्य का जीवन है। यद्यपि औचित्य काव्य के सम्पूर्ण अंगों में उसी प्रकार व्याप्त रहता है, जैसे शरीर के मर्म स्थानों में आत्मा व्याप्त रहती है। निश्चय ही उचित रूप में प्रस्तुत की गयी वस्तु लोक में समाहत होती है। उदाहरण के लिये मोतियों से विनिर्मित माला किसी सुन्दरी रमणी के गले में ही सुशोभित होती है, यदि उसे गले की अपेक्षा पैर में धारण कर लिया जाये तो उसका सौन्दर्य की विनष्ट हो जाएगा और पैर में बाँधे जाने वाले नुपुर को यदि कोई रमणी अपने गले में धारण करती है तो वह उपहास्यास्पद हो जायेगी। इसी प्रकार शरण में आये हुए व्यक्ति पर यदि कोई

[28] औचित्य विचारचर्चा कारिका संख्या –1)

शत्रुता प्रकट करे और शत्रु पर कृपा दिखाये तो वह भी उपहास्यास्पद का पात्र होगा।

कण्ठ मेखलया नितम्बफलके तारेण हारेण वा,
पाणौ नूपुर बन्धनेन चरणे केयूर पाशेन वा ।
शौर्येण प्रणते रिपौ करूणया नायन्ति के हास्यताम्,
औचित्येन बिना रूचिं प्रतनुते नांलकृतिर्नोगुणाः।।[29]

नाटक के अभिनय में तो औचित्य का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। काव्य की रस सिद्धि में औचित्य का निर्वाह अनिवार्य है। इसमें मर्यादा का अधिक ध्यान रक्खा जाता है औचित्य के अभाव में न तो अलंकार ही शोभा धारण करता है और न ही गुण रूचिरता उत्पन्न करता है और न रस ही रमणीयता उत्पन्न करता है। यदि काव्य में सीता वर्णन के प्रसंग में उनकी वेषभूषा के वेलवाटन और राम की वेषभूषा के लिए सफारी सूट प्रस्तुत कर दिया जाये तो वह अनुचित होने पर उपहास्पद हो जायेगा। अतएव इसमें सन्देह नहीं कि उचित वेषभूषा, भाषा, संवाद, रसभाव योजना आदि काव्य को सरस बनाते हैं। यदि इनकी प्रस्तुति अनुचित रूप में होगी तो निश्चय ही काव्य में दोष आ जायेगा।

(घ) औचित्य सम्प्रदाय में आचार्य क्षेमेन्द्र का स्थान एवं महत्त्व –

काव्यशास्त्र के क्षेत्र में औचित्य सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य क्षेमेन्द्र का विशिष्ट स्थान है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य के फैले हुए अनेक सूत्रों को एकत्रित कर उनका समन्वय करके एक दिशा प्रदान कर उसको एक सम्प्रदाय के रूप में प्रतिष्ठित किया। आचार्य क्षेमेन्द्र औचित्य सिद्धान्त के उद्‌भावक ही नहीं वरन् संस्थापक हैं। काव्यगत औचित्य का विचार करने के लिए आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा नामक ग्रन्थ की रचना की। आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य विचार चर्चा में औचित्य तत्त्व को काव्य का सर्वातिशायी तत्त्व माना है। इन्होंने औचित्य विषयक तत्त्व को सुव्यवस्था प्रदान की एवं उसके व्यापक साम्राज्य का निर्देशन भी किया। काव्य का प्रत्येक अंग, उपांग, शब्द, अर्थ, पद, वाक्य, गुण तथा रस औचित्य की ही छाया में पनपते हैं। इस मौलिक तत्त्व की प्रतिष्ठा करने का श्रेय आचार्य क्षेमेन्द्र को ही प्राप्त है। इस प्रसंग में काव्यांगो के पक्ष में उनके कुछ मौलिक एवं अनिवार्य औचित्य के सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। आचार्य क्षेमेन्द्र से पूर्व रस की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। काव्यशास्त्र के दो प्रमुख आचार्य आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त ने रस को काव्य का प्रमुख तत्त्व माना है। उनके अनुसार 'ध्वनि' काव्य की आत्मा है और रस उसका विशेष प्राण तत्त्व है। इसी के साथ औचित्य भी अपरिहार्य है। औचित्य से सम्मिलित रस ध्वनि काव्य की आत्मा है। काव्य और औचित्य परस्पर एक दूसरे से इतने अधिक मिले हुए हैं कि उन्हें पृथक नहीं किया जा सकता उनमें परस्पर उपकार्योपकार भाव विद्यमान है। आचार्य क्षेमेन्द्र औचित्य को काव्य में अत्यधिक व्यापक मानते हैं। रस तथा औचित्य का सम्बन्ध 'औचित्य विचार चर्चा' में बहुत ही स्पष्ट है। आचार्य क्षेमेन्द्र रस को काव्य की आत्मा मानते हैं और औचित्य को इसका जीवित (जीवन), जीवित शब्द का प्रयोग अभिनव गुप्त ने

---

[29] औचित्य विचार चर्चा, पृ0 10

भी किया है वे आत्मा और जीवित दोनों को पर्यायवाची मानते हैं जिनका तात्पर्य है– सारभूत अर्थ आचार्य क्षेमेन्द्र ने इनमें भिन्नता का संकेत करते हुए रस को काव्यप्राण और औचित्य को उसका जीवन माना है।

औचित्य ही काव्य का चमत्कारक तत्त्व है। इसके अभाव में सहृदय को आकर्षक मनोज्ञता उत्पन्न ही नहीं हो सकती। काव्य रस की सत्ता स्वीकार करके ही क्षेमेन्द्र ने यह मौलिक कल्पना की है। जिसके अनुसार रस तथा अन्य वस्तुओं में औचित्य सम्बंध स्थापित हो सकता है। ऐसी स्थिति में काव्य में चमत्कार का उदय हो सकता है रस सिद्ध काव्य का स्थिर जीवन औचित्य ही है। रस से यदि काव्य सम्पन्न होता है तो औचित्य से उसे चिर स्थायी जीवन प्राप्त होता है। आचार्य क्षेमेन्द्र का औचित्य भी रस एवं ध्वनि सम्प्रदाय के समान बहिरंगवादी समीक्षा का खण्डन करता है। उन्होंने 'औचित्यविचारचर्चा' में अलंकार, गुण, रीति आदि की प्रशंसा की है। उत्तम काव्य के लिये औचित्य के 27 भेदों की चर्चा की है और उदाहरण प्रत्युदाहरण देकर स्पष्ट किया है। उन्होंने औचित्य के प्रत्येक भेद को मर्म स्थलों की संज्ञा दी है। कहा है कि जिस प्रकार शरीर के किसी मर्म स्थल पर चोट लगने पर सारा शरीर दुष्प्रभावित होकर समाप्त हो जाता है इसी प्रकार काव्य के इन अंगों में से किसी के भी विनष्ट हो जाने पर काव्य तथा उसके जीवितभूत तत्त्व की समाधि हो जाती है।

वस्तुतः औचित्य तत्त्व को काव्य का सर्वातिशायी उपादान के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय आचार्य क्षेमेन्द्र को ही है। इन्होंने भारतीय आलोचना पद्धति में एक नया दृष्टिकोण उपस्थित किया है। कारण, कला में सौन्दर्य है कि नहीं। यह उतना आवश्यक नहीं, जितना कि कला में सौन्दर्य आता कहाँ से है यह। अर्थात् गुण, रीति, अलंकार, रस का समावेश काव्य में हुआ है कि नहीं। केवल यही नहीं देखना है अपितु यह भी देखना है कि इन वस्तुओं का समावेश किस ढंग से हुआ है वह उचित है या नहीं।

आचार्य क्षेमेन्द्र विदग्ध मण्डली में औचित्य के व्यवस्थापक होने से सदैव चिरस्मणीय रहेंगे एवं औचित्य तत्त्व को काव्य के सर्वातिशायी उपादान के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय आलोचक वर्ग सदा उनको प्रदान करता रहेगा।

(ङ) भुशुण्डि रामायण – संक्षिप्त परिचय

भारतीय वाङ्मय में रामायण का विशिष्ट स्थान एवं महत्त्व है। राम कथा ने सम्पूर्ण भारतीयों को धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूप से अनुप्रेरित किया है। राम कथा में जीवन के विविध रूपों का पूर्णतः परिपाक हुआ है। राम कथा एक आदर्श कथा है जो मनुष्य को सत पथ पर चलने और निष्ठापूर्वक स्वकर्त्तव्य सम्पन्न करने की प्रेरणा देती है। रामकथा के अध्ययन से जीवन में नव चेतना का संचार होता है राम को आदर्श मानकर अनेक कवियों ने अनेक भाषाओं में उनके स्वरूपों का वर्णन

किया है। सम्पूर्ण हिन्दू धर्म रामायण से ओत–प्रोत रहा है। उनके लिये राम सत्य और सच्चाई के प्रतीक है। भुशुण्डि रामायण, रामायण परम्परा की विशिष्ट कृति है। इसमें मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्री राम के चरित्र को सरस एवं ललित साहित्यिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। राम को परब्रह्म परमात्मा के रूप में चित्रित किया है। जो पापियों के विनाश करने के लिये एवं धर्म की स्थापना के लिए मानव रूप में समय–समय पर इस पृथ्वी पर अवतरित होते हैं।

श्रीमद्भगवत गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं ही कहा है–

यदा–यदा ही धर्मस्य ग्लानि भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मनं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युग युगे ।।[30]

गीता के अर्थ विचार का स्वरूप भुशुण्डि रामायण में भी दृष्टव्य हैं–

यदा–यदा हि लोकेऽस्मिन् जायते धर्म संकटः।
तदा–तदा स्वयं रामोऽवतरत्यात्म धामतः ।।[31]

भक्तों की रक्षा करने तथा धर्म की स्थापना करने के लिए, पापियों को दण्ड देने के लिए, अधर्म का नाश करने के लिए ईश्वर ने समय–समय पर अवतार लियें हैं। जिनमें दस अवतार प्रमुख हैं। इन दस अवतारों में भी भगवान राम का अवतार अद्वितीय रहा है। राम मर्यादा पुरूषोत्तम थे। श्रीराम के जीवन चरित्र पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। भुशुण्डि रामायण, भगवान राम के जीवन चरित पर आधारित एक महान कृति है।

भुशुण्डि रामायण की कथा का निरूपण माधुर्य शैली तथा सरल भाषा में किया गया है। यह ग्रन्थ चार खण्डों में विभाजित है– पूर्वखण्ड, पश्चिम खण्ड, उत्तर तथा दक्षिण खण्ड। पूर्व, दक्षिण खण्ड पृथक–पृथक हैं तथा पश्चिम तथा उत्तरखण्ड एक में समायोजित है। महाकाव्य के प्रत्येक खण्ड को अध्यायों में, उपनिबद्ध किया गया है। इसमें श्रेष्ठ वंश में जन्म लेने वाले रघुकुल शिरोमणि भगवान राम का चरित्र उपनिवद्ध है। शृंगार, वीर, शान्त रसों का युक्ति पूर्ण उपनिबन्धन हुआ है। राम काव्य स्वतः एक आदर्श प्रेरणा स्त्रोत काव्य है। इसमें राम को कृष्ण की तरह लीला–विहार करते हुए प्रस्तुत किया गया है। भुशुण्डि रामायण की कई हस्त लिपियाँ प्राप्त हुयी हैं। इसको आदि रामायण, ब्रह्मरामायण, भुशुण्डि रामायण आदि नामों से जाना जाता है। ब्रह्म जी के द्वारा ब्रह्मकल्प में समाधिस्थ अवस्था में राम के अवतार की कथा वर्णन के कारण इसे आदि रामायण कहा जाता हैं। परमब्रह्म श्रीराम के अवतार और अवतारी चरित को ग्राहित करने के कारण इसे ब्रह्म रामायण का नाम दिया गया। भुशुण्डि की शंकाओं के समाधान हेतु विनयमित

---

[30] श्रीमद्भगवत गीता (चतुर्थ अध्याय) श्लोक 5–6
[31] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड अध्याय (143/ 45)

होने के कारण इसे भुशुण्डि रामायण के नाम से संबोधित किया है। उपर्युक्त तीनों नामों में लोक व्यवहार हेतु भुशुण्डि रामायण अधिक प्रचलित नाम हैं। भुशुण्डि रामायण नाम कई प्राचीन ग्रन्थों में पाया जाता है। 'युगल सहस्त्रनाम', 'रामनवरत्नसारविग्रह', 'रामचरित मानस' की निगमागमी टीका आदि में यही नाम पाया जाता है। आदि रामायण से बाल्मीकि द्वारा रचित रामायण का बोध होता है। राम के सगुण के स्थान पर उनकी निर्गुण लीला का प्रतिपादन होने के कारण ब्रह्म रामायण आदि नाम अधिक उपयुक्त नहीं समझा गया। भुशुण्डि की जिज्ञासा निवृत्ति के फलस्वरूप भुशुण्डि रामायण नाम उपयुक्त एवं सार्थक माना गया। इस ग्रन्थ की कथा सबसे पहले प्रमोदवन में श्रीराम ने सीता को सुनायी फिर सीता ने लक्ष्मण को, लक्ष्मण से भरत से प्राप्त हुई। श्रीराम के द्वारा इस कथा को हनुमान ने सुना फिर ब्रह्मा से हयग्रीव तथा अन्य मुनियों ने अगस्त से प्राप्त की। भुशुण्डि को ब्रह्मा द्वारा तथा धरणी को शेषनाग द्वारा यह रहस्य पूर्ण चरित सुनने को मिला।

पूर्व खण्ड में रामचन्द्र की उत्पत्ति से लेकर दशरथ द्वारा युवराज पद पर अभिषिक्त करने तक का वृत्तान्त वर्णित है। पश्चिमखण्ड में राम के विवाह, उनके अयोध्या आगमन की कथा है। दक्षिणखण्ड में कैकेयी के दुराग्रह के कारण राम के वन गमन से लेकर रावण वध एवं वनवास की अवधि पूरी करके राम का अयोध्या प्रत्यागमन तथा उनके राज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है। उत्तरखण्ड में राम की अनुचरों तथा प्रजा के साथ नित्य धाम यात्रा वृत्तान्त का वर्णन किया गया है। इन चारों खण्डों में बिना किसी क्रम तथा कभी भी आवश्यक होने पर सीता वनवास, दशरथ की तीर्थयात्रा, लंका का अधिपत्य, रावण की दिग्विजय यात्रा तथा सहस्त्रार्जुन का रावण से युद्ध, चित्रकूट में राम निवास का वर्णन, सीता जन्म, मन्दाकिनी की उत्पत्ति, श्रीराम राज्य की समृद्धि, विष्णु का मोहिनी रूप, रावण की तपस्या, मेघनाद की इन्द्र विजय आदि का भी वर्णन किया गया है।

भुशुण्डि रामायण की कथा का प्रारम्भ ब्रह्मा द्वारा अनुष्ठित यज्ञ से होता है। यज्ञ में आये हुए देवता ब्रह्मा से पूछते हैं कि आप इस यज्ञ का प्रारम्भ किस के लिए कर रहे हैं। ब्रह्मा जी प्रत्युत्तर में राम जो कि इस जगत के मूल एव निमित्त है। विविध यज्ञों द्वारा मैं उनकी पूजा करता हूँ। पूर्वकाल में महापुरूषों से प्राप्त उनके दिव्य जन्म कर्म का वृत्तान्त आदि रामायण की रचना में मैंने भुशुण्डि को बताया था। उसे सुनाता हूँ देवताओं की जिज्ञासा निवृत्ति के लिए ब्रह्मा भुशुण्डि के विषय में संक्षिप्त परिचय देते हैं। महाकाल की काल कंटका नाम की एक बहन थी। सूर्य के संयोग से उसने भुशुण्डि नामक पक्षी को जन्म दिया। वह अतुल पराक्रमी था। उससे सभी देवतागण त्रस्त हो गये थे। तीनों लोको के निवासी भयभीत रहने लगे। देवताओं के कष्ट को दूर करने के लिए ब्रह्माजी भुशुण्डि के पास गये और बोले कि हे पुत्र! तुमने तीनों लोको को त्रस्त कर रखा है। यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है। तुम राम के परम भक्त हो, परम ज्ञानी हो, इसलिये विश्व कल्याण तुम्हारा परम कर्त्तव्य होना चाहिए। भुशुण्डि ने पूछा कि राम के बलदेव, कृष्ण आदि सहस्त्रों रूप हैं उनमें मुख्य रूप कौन सा है। ब्रह्मा जी बोले कि प्राचीन काल में राम विषयक इसी प्रकार की जिज्ञासा हनुमान से गरूड़ ने की थी। गरूड़ के पूछने पर

कि राम कौन है मनुष्य, देव या गंधर्व? हनुमान आश्चर्य से कहते हैं कि तुम राम को नहीं जानते वह जगत के कारण सच्चिदानन्द विग्रह महाराज दशरथ के पुत्र हैं। सारे अवतार उन प्रमोद वन बिहारी राम के ही हैं। यह सुनकर गरूड़ ने हनुमान से दर्शन कराने की प्रार्थना की। हनुमान बोले कि मुझे शीघ्रता है तुम मेरे साथ नहीं चल सकते। तुम कल आना। दूसरे दिन गरूड़ अयोध्या पुरी पहुँचे वहा उन्हें हनुमान द्वारा राम का दर्शन प्राप्त हो गया। गरूड़ ने राम के लोक मंगलकारी चरित का गान करते हुए मणि पर्वत पर कुछ दिन निवास किया। उन्हें अयोध्या के दक्षिणी भाग में रूक्मिणी सहित श्रीकृष्ण के दर्शन प्राप्त हुए। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर राम ने गरूड़ को साकेत के उत्तर, सरयू के दोनों तटों पर विचरने को कहा और कहा कि जो मनुष्य कीट, पतंग यहाँ पर शरीर त्याग करेंगे, उन्हें तुम स्वर्ग ले जाओगे। यही तुम्हारी सेवा है। यह आदेश देकर राम ने गरूड़ को विदा किया और इस प्रकार ब्रह्मा ने देवताओं की जिज्ञासा निवृत्ति के लिए भुशुण्डि के वृतान्त को बताकर, राम के दिव्य जन्म कर्म–विषयक ब्रह्म कल्प में स्वरचित आदि रामायण की कथा प्रारम्भ की।

प्राचीन काल में रावण के नेतृत्व में राक्षसों द्वारा अत्याचारों से तीनों लोकों के निवासी त्राहि–त्राहि करने लगे। उसी समय आकाशवाणी होती है कि मैं 'सारस्वत कल्प के त्रेतायुग में अंशो सहित दशरथ पुत्र राम के रूप में अयोध्या में अवतार लेकर पृथ्वी का भार उताऊँगा। कालान्तर में ब्रह्मवाणी के अनुसार कौशल्या के गर्भ से आद्याशक्ति सहित स्वयं ब्रह्मा का अवतार हुआ। भुशुण्डि ने कहा कि 'भगवन! जिस राम ने मेरे देखते–देखते रावण का सकुल वध किया उसका चरित्र सुनाइए।' ब्रह्मा जी बोले 'बाल्मीकि ने राम का चरित्र वर्णन किया है, उसे ही समाधि संयोग से हृदयंगम कर मैं तुम्हें सुनाता हूँ। चैत्रशुक्ल नवमी को अभिजित योग एवं पुनर्वसु नक्षत्र में राम का प्राकट्य हुआ। जन्म के समय उनका शरीर श्रीवत्सचरणवाणादि चिह्नों से युक्त था और महाशक्ति उनके वामांग में विराजमान थी। दशरथ और कौशल्या ने स्वयं ब्रह्मा का अवतार जानकर उनकी स्तुति की। त्रिदेवों तथा चारों वेदों ने उपस्थित होकर दंडवत् किया और स्तुतियाँ की। राजा दशरथ ने स्नान करके जातकर्म संस्कार सम्पन्न किये। ब्राह्मणों को अभीष्ट दान प्रदान किया। तेरहवें दिन वशिष्ट ने चारों बालकों के गुणानुसार नामकरण संस्कार किया। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघन का रूप लावण्य दिन–प्रतिदिन बढ़ता गया। राम के मोहक सौन्दर्य को देखकर तीनों लोकों के निवासी आनन्द मग्न हो गये। इसी बीच देवर्षि नारद लंका जाकर राम के जन्म के विषय में बताते हैं और कहते हैं कि तुम्हारा नाशकर्ता उत्पन्न हो चुका है। उससे बचने का शीघ्र उपाय करो। रावण पहले तो अत्यन्त भयभीत हुआ। परन्तु शीघ्र ही गम्भीरता पूर्वक विचार कर बोला कि मैं शिव के चरणों पर शीश चढ़ाकर उनके प्रसाद से असीम शक्ति प्राप्त कर लूँगा। इस प्रकार उसका अत्याचार दिन–प्रतिदिन बढ़ता गया। देवता स्वर्ग से भाग कर कन्दराओं में छिप गये। उनमें से कुछ ने आकर महाराज दशरथ को वृत्तान्त सुनाया। महाराज दशरथ अपने चारों पुत्रों को लेकर चिन्तित हो उठे। यह सोचकर उन्होंने गुप्त रूप से चारों बालकों को सरयू पार कामिका वन में सुखित गोप के यहाँ भेज दिया। उसकी स्त्री मांगल्या ने उनका बड़े की स्नेह से पालन पोषण किया। वे गोप

बालकों के साथ मधुर क्रीड़ाये करते थे। रावण को पता चल गया और उसने उन्हें मारने के लिए छध्नवेषधारी अनेक राक्षसों को भेजा, किन्तु राम ने उन सबका वध कर दिया।

राम के जन्म लीला के रसास्वादन के लिए सोलह हजार दण्डकारण्यवासी मुनियों ने अपनी पूर्व योजना के तहत गोपीरूप में जन्म लिया। भुशुण्डि रामायण की कथावस्तु में अन्य रामायणों में वर्णित कथावस्तु की अपेक्षा एक प्रमुख अन्तर यह देखने को मिलता है कि राम के जन्म के समय उनकी लीला का दर्शन प्राप्त करने के लिए दण्डकवन में रहने वाले सोलह हजार मुनियों ने पूर्व योजना के अनुसार ब्रज प्रदेश में गोपी के रूप में जन्म लिया। उन मुनियों ने राम को वर के रूप में प्राप्त करने के लिए दारूण तप किया। जिसमें नन्दन और राजिनी की पुत्री सहजा नन्दिनी प्रमुख थी। उनकी प्रेम लगन और तप से प्रसन्न होकर राम ने उन्हें बताया कि मैं एक पत्नीव्रत हूँ। अतः तुम सभी सीता की आराधना करके उनके अंश रूप में स्वीकार हो सकती हो। गोपियों ने आराधना कर सीता से अभीष्ट वर की प्राप्ति की। एक बार राम की दिव्य लीला का दर्शन करने के लिए शिव कैलाश से अयोध्या आये परन्तु अज्ञान वश गोपियों ने उनकी अवहेलना कर दी। जिससे क्रोधित होकर उन्होंने लीला विहारी राम के वियोग में पीड़ित होने का शाप दिया। उनके दुःख को दूर करने के लिए राम उन्हें उपदेश देते हैं कि प्रकृति और पुरूष सब मैं ही हूँ। पूजा और ध्यान के द्वारा तुम निरन्तर मेरी नित्य लीला में दिन रात लीन रह सकती हो। इस प्रकार के उपदेश से गोपिकायें वियोग की आशंका से निर्लिप्त हो गयी।

राजा दशरथ युवराज राम को राज्यभार सौपकर स्वयं अपने अनुचरों, प्रियजनों, साधु संन्यासियों और कैकेयी के साथ सात द्वीपों में स्थित तीर्थो के दर्शन करने के लिये जाते हैं। तीर्थ यात्रा से लौटने पर सभी महाराज दशरथ से राम के युवराज पद पर किये गये कार्यों की प्रशंसा करते हैं।

मिथिला नरेश जनक की महारानी सुनयना ने सीता को पुत्री के रूप में प्राप्त करने के लिए महालक्ष्मी की आराधना की और वे चतुर्धा होकर पुत्रियों के रूप में जनक के घर पर उत्पन्न हुयीं। सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा दिगदिगन्त में व्याप्त हो गयी। उनके अप्रतिम सौंदर्य से मोहित होकर राम एक पक्षी के द्वारा उनके पास सन्देश भेज कर विवाह की इच्छा प्रकट करते हैं। प्रत्युत्तर में सीता ने उसी पक्षी से अपना संदेश राम के पास भेजा। इसी मध्य ऋषि विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा हेतु राम और लक्ष्मण को अपने साथ ले गये। राक्षसों से यज्ञ की रक्षा हो जाने के पश्चात विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को महाराज जनक द्वारा आयोजित धनुष यज्ञ समारोह में ले जाते है। पुष्पवाटिका में सीता से राम की भेंट होती है वहाँ पर गौरी पूजन हेतु आयी सीता, राम को देखते हुए परस्पर गहन प्रेम सम्बन्ध रूप रज्जु से आवद्ध हो जाते हैं। धनुष तोड़ने के पश्चात चारों भाइयों का शुभ विवाह होता है। इसके पश्चात राम अपने भाइयों सहित सकुशल अयोध्या लौट गये। इसके पश्चात राम वन गमन तक तथा राम को सुमंत द्वारा वन में छोड़कर अयोध्या वापस आना, भरत द्वारा सेना सहित राम को मनाने जाना। भरत द्वारा राम की चरण पादुका को लेकर

अयोध्या लौटना और नान्दी ग्राम में रहने तक कथा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। भरत के लौटने के पश्चात अयोध्या के समीपवर्ती नन्दिग्राम और पालिग्राम के गोप गोपियाँ, गोपराज सुखित मांगल्या के साथ राम को मनाने के लिए चित्रकूट गये, जहाँ पर सीता ने सबका स्नेह सम्मान किया है। राम के कहने से सुखित ने दूत भेजकर अन्य गोप परिवारों को चित्रकूट बुला लिया। अत्यधिक समय तक वे सभी वहाँ रूके। राम ने गोपिकाओं के साथ रास लीलाऐं की। तथा सीता और सहजा के साथ उनकी अन्तरंग लीलाएं चलती रही। राम के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए रावण ने आध्यात्म शक्ति प्राप्त करने के लिए तपस्या प्रारम्भ कर दी। बाद में शिव की कृपा से शास्त्रों में पूर्ण पारंगत होगया। उसने अनेक बार अपने सिर काटकर शिव को चढ़ाए। और वह शिव के वरदान से विश्व विजयी हो गया। एक समय वह नर्मदा के तट पर आया जहाँ पर सहस्त्रार्जुन नामक एक राजा पड़ाव डाले थे। उसने जल कीड़ा करते हुए विशाल भुजाओं से नदी के बहाव को रोक दिया। जिसके कारण रावण की सैनिक छावनी पानी में डूब गयी। रावण और सहस्त्रार्जुन की सेनाओं में घनघोर युद्ध हुआ। सहस्त्रार्जुन ने रावण को पराजित कर लोहे के पिजड़े में डाल दिया। बाद में रावण के पूर्वज पुलस्य के निवेदन पर उसे मुक्त कर दिया।

रावण और उसके पुत्र मेघनाद ने चारों ओर विजय प्राप्त कर एकछत्र साम्राज्य स्थापित कर लिया। इन्द्रादि देवताओं सहित अनेक लोग गिरि कन्दराओं की शरण में आ गये। रावण ने कुबेर को लंका से भगाकर उस पर अपना अधिकार कर लिया। शक्ति मद से उत्पन्न राक्षसों के उत्पात से विश्व थर–थर काँपने लगा। रावण के अत्याचारों से पीड़ित दण्ड कारण्य वासियों की रक्षा राम ने की। राम उन्हें रक्षा का आश्वासन देकर चित्रकूट से राम पंचवटी पहुँचे। चित्रकूट से गोदावरी के तट पर स्थित पंचवटी में पर्णकुटी बनाकर श्री राम ने साढ़े बारह वर्ष व्यतीत किए।

पंचवटी में रावण के भाई खरदूषण और त्रिशिरा सेना सहित निवास करते थे। उनके अत्याचारों से मुनि समाज आतंकित रहता था। एक दिन रावण की बहन सूर्पनखा ने राम पर मोहित होकर विवाह का प्रस्ताव रखा। राम ने लक्ष्मण को लक्ष्य करके उनके पास सूर्पनखा को भेज दिया। बार बार राम व लक्ष्मण के पास आने जाने से वह क्षुब्ध हो गयी। अन्त में उसने राक्षसी का रूप प्रकट किया इसी समय राम के संकेत से लक्ष्मण ने उसके नाक कान काट लिये। इससे क्षुब्ध वह अपने भाई खरदूषण के पास गयी और उसके अपमान का बदला लेने के लिए प्रेरित किया। खरदूषण त्रिशिरादि से राम का भयंकर युद्ध हुआ जिसमें खरदूषण आदि राक्षसों की मृत्यु हुयी। इसके बाद शूर्पनखा रावण के पास गयी और उनकी मृत्यु का समाचार सुनाया। रावण ने मारीच को स्वर्ण मृग का समाचार सुनाया। रावण ने मारीच को स्वर्ण मृग के भेष में सीता के पास भेजा। सीता के आग्रह के फलस्वरूप राम मृग को मारने के लिए गये। उसी समय रावण साधु वेष धारण कर सीता का हरण कर उसे आकाश मार्ग से ले गया। सीता की खोज में राम दक्षिण की ओर बढ़ते है, जहाँ मार्ग में हनुमान के माध्यम से सुग्रीव राम की घनिष्ठ मित्रता हुई। उनकी सहायता से सीता का पता लगाकर रामचन्द्र ने लंका पर चढ़ाई कर दी।

भयंकर युद्ध के पश्चात असत्य पर सत्य की विजय हुई। राम ने रावण का वध कर दिया। लंका का राज्य विभीषण को दे दिया। वैशाख शुक्ल को राम ने अन्य मित्रों के साथ पुष्पक विमान से अयोध्या के लिये प्रस्थान किया। अयोध्या आकर राम अपनी माता और प्रजा से स्नेह पूर्वक मिले। कुछ समय पश्चात अन्य मित्रों ने उनसे विदा ली। केवल हनुमान ही उनके पास रह गये। एक समय सीता को गर्भवती जानकर राम ने उनकी इच्छा पूछी। सीता बोली वनवास के समय मुनि पत्नियों, मुनि कुमारों और मुनि ऋषियों को विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थ, वस्त्राभूषण देने का संकल्प किया था उसे पूरा करने की इच्छा है। श्रीराम ने लोगों की आशंका से कष्टपूर्वक उन्हें वन जाने की अनुमति दे दी। लक्ष्मण सीता को साथ लेकर वन गये और सीता तपस्वियों के बीच कुटुम्बवत् प्रसन्नता पूर्वक रहने लगी। लक्ष्मण उन्हें वन पहुँचा कर अयोध्या लौट गये।

एक दिन किसी तापसी को सीता ने कहते सुना आश्चर्य है कि राम ने सीता का रावण के यहाँ रहने के कारण त्याग कर दिया क्योंकि सीता परपुरूष के यहाँ कामवश रखी गयी। लोगो की आशंका थी कि इससे दुराचारिणी स्त्रियों को आवलम्बन प्राप्त होगा। सीता ने श्रीराम द्वारा त्यागने पर असहय दुःख के कारण निश्चय किया कि मैं पुनः अग्नि में प्रवेश करूँगी परन्तु गर्भवती होने के कारण उन्होंने अपना विचार त्याग दिया। सीता कहती हैं कि राम सर्वशक्तिमान हैं जो चाहे करें। पुरूष स्वभाव से निष्ठुर होते है। सीता को इस दशा में देखकर महर्षि बाल्मीकि सीता को सान्त्वना प्रदान करते हैं। बाल्मीकि कहते हैं कि राम लोकोपासना में लगे हुए है वे कभी तुम्हारा परित्याग नहीं कर सकते। सीता के वियोग में राम भी अयोध्या में व्यथित होकर जीवन व्यतीत करते हैं। बाल्मीकि आश्रम में सीता ने दो पुत्रों लव एवं कुश को जन्म दिया। राम ने अपने राज्य को स्वर्गारोहण के पूर्व अपने पुत्रों तथा भाइयों के पुत्रों में बाँट दिया। लव को कुशावली तथा कुश को अवन्ती का राज्य का प्रदान किया। लक्ष्मण के पुत्रों को कारापथ और भरत के पुत्र को पुष्करावती और शत्रुघन के पुत्र सुबाहु को मथुरा का राज्य दिया।

सभी कार्यो के सम्पादन होने के पश्चात देवताओं के निवेदन पर ब्रह्मा ने विकराल रूप वाले काल को श्रीराम को बुलाने के लिए अयोध्या भेजा। अवसर पाकर काल ने श्रीराम को प्रणाम और स्तुति करते हुए निवेदन किया कि पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करने का उद्देश्य पूर्ण हो चुका है और आपके राज्य में चतुर्दिक सुव्यवस्था और शान्ति का राज्य है। अतः आप ब्रह्मा जी के निवेदन के अनुसार प्रमोद वन में पधारे। श्रीराम ने काल से कहा कि वे अपने वर्ष प्रमाण से मेरी लीला के वर्षो की माप न करें। काल ने राम की कही हुई बात ब्रह्मा जी से निवेदित कर दी। ब्रह्मा जी ने उससे कहा कि श्रीराम माया, काल, गुणों के नियंत्रणकर्ता है उनको कौन मना कर सकता है। हम सभी उनके वश में हैं। तुमने भगवान को अपना भयानक रूप दिखाकर महान अपराध किया है। अतः तुम पुनः अयोध्या जाकर उनसे क्षमा याचना करो। काल पुनः अयोध्या पहुँचा तो उसने देखा कि आत्मशक्ति स्वरूपिणी सीता को सिंहासन पर बिठाकर राम अन्तर्ध्यान हो गये इसके बाद परालक्ष्मी जानकी भी अन्तर्ध्यान हो गयी। काल चतुर्दिक उनको ढूढने लगा। अन्त

में भगवान की दिव्य लीला स्थित सरयू तटस्य प्रमोदवन में प्रवेश करने का प्रयास किया। द्वार पर स्थित रक्षक से काल का एक हजार वर्षो तक युद्ध होता रहा। अन्त में पराजित होकर काल ब्रह्मलोक को जाने लगा। मार्ग में गंगा और गण्डकी नदी के संगम पर स्थित वशिष्ठ आश्रम के पास वन में सीता सहित श्रीराम को मृगया विहार करते देखा वहाँ जाकर वह काल उनके चरणों पर गिरकर अपराध के लिये क्षमा याचना करने लगा। राम ने क्षमा करते हुए उससे कहा कि तुमने मुझे कहाँ–कहाँ खोजा। काल ने सम्पूर्ण वृत्तान्त कह दिया और बताया, मैंने आपको हर जगह ढूँढा और निराश होकर ब्रह्मलोक जा रहा था। सौभाग्य से आपके दर्शन हो गये। तब श्रीराम ने बताया कि मैं यहाँ भी हूँ और प्रमोदवन में भी हूँ। तुम पुनः लौटकर साकेत जाओ, जहाँ मेरा सिंहासन है। काल लौटकर उसी समय साकेत गया और वहाँ मणिजणित सिंहासन पर त्रिलोकीनाथ श्रीराम को सीता सहित विराजमान देखा। इस दिव्य दर्शन से वह अत्यन्त प्रसन्न हो उठा तब राम ने उससे कहा कि तुम हमारे भक्त हो। मैं अब ब्रह्मा के वचन पूर्ण करने के लिए दिव्यधाम जाना चाह रहा हूँ। जब राम काल से इस प्रकार मंत्रणा कर रहे थे। उसी समय संयोग से दुर्वासा ऋषि उपस्थित होते हैं। वे लक्ष्मण से कहते है कि तुम यथाशीघ्र राम को मेरे आने की सूचना दो। लक्ष्मण दुविधा में पड़ गये क्योंकि राम की आज्ञानुसार वे भीतर नहीं जाना चाहते थे। परन्तु दुर्वासा ऋषि ने क्रुध होकर कहा रघुवंशी राजाओं ने यह नियम बना रखा है कि मुनि लोग अन्तःपुर तक निर्वाद आ जा सकते हैं फिर यह तो दरवार है। तुम मुझे अन्दर जाने से क्यों रोक रहे हो? मैं तुम्हें घोर शाप देता हूँ। दुर्वासा के द्वारा इतना कहने पर शाप के डर से तथा राजा राम की अवहेलना के दण्ड के डर से चिन्ताकुल होकर भीतर चले गये वहाँ भाई राम का विकराल रूप देखकर भयभीत हो जाते हैं। उनके विराट मुख के भीतर सूर्य, चन्द्र, तारागण, स्वर्ग लोक, नर्क, ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र समस्त देवी मानुषी और राक्षसी सृष्टि समाहित दृष्टिगोचर हुई। काल की आकृति भी भयंकर थी। लक्ष्मण ने देखा कि उन दोनों में एक विश्व के जीवों को ग्रस रहा है और उन्हें आत्मसात कर रहा है। उनके रूपों को देखकर यह निश्चय न कर सके कि उन दोनों में राम कौन है। वे सोचते है कि जगत् रक्षक मेरे भाई का ऐसा भयंकर रूप क्यों हो गया, इन दोनों में दूसरा कौन है? रूद्र अथवा यम। यह सोचते–सोचते उनके नेत्र बंद हो गये और वह मूर्च्छित होकर गिर पड़े। कुछ देर बाद उन्होंने देखा राम सोने के सिंहासन पर बैठे है। रामचन्द्र ने काल को विदा किया। इसके बाद राम ने दुर्वासा के आगमन का वृत्तान्त कहा राम सोने के सिंहासन से उतर कर द्वार पर गये और मुनि दुर्वासा को सादर सहित अंदर लाये। मुनि ने राम से दुःख नाश के लिये ज्ञान का उपदेश देने का आग्रह किया। राम ने अठारह अध्यायों में भक्ति दर्शन, वैष्णवाचार की व्याख्या करते हुए गीता का उपदेश दिया और दुर्वासा को दिव्य दृष्टि प्रदान की। भगवान ने आगामी सास्वत कल्प में उन्हें लीला प्रवेश का आश्वादन दिया। दुर्वासा अपने आश्रम को चले गये तब लक्ष्मण ने कर्त्तव्य त्रुटि के कारण अपने अपराध के लिये राम से उचित दण्ड की व्यवस्था करने को कहा और पूछा कि वह दूसरा व्यक्ति कौन था। तब राम ने कहा कि वह मेरा आज्ञापालक था। मैने देवकार्य पूर्ण कर लिया है अतः लीला का पटाक्षेप होगा। यह सुनकर

लक्ष्मण व्याकुल हो उठे। राम ने लक्ष्मण को बताया कि तुम दोनों मेरे अभिन्न अंश हो। अतः तुम्हारे लिए दण्ड का विधान कैसा। परन्तु यदि तुम दण्ड सेवन नहीं करोगे तो विश्व में वेद विप्लवी अपवाद फैलेगा। अतः तुम्हारे लिये दण्ड होगा। मेरा द्वारा लोक लीला के तिरोधान काल तक मेरा त्याग। लक्ष्मण ने उनसे अपने से अलग न करने का आग्रह किया। राम ने आश्वासन देते हुए कहा, तुम किसी भी स्थिति में मुझसे अलग नहीं हो सकते। मैं तुम्हारे ह्रदय में स्थित होकर लीलाएँ करता हूँ अज्ञानता वश तुम्हें प्रतीत नहीं होता है। तुम्हीं कल्पान्त में प्रलय के बाद शेष रूप में मुझे शैय्या सुख देते हो। तुम्हें मोह नहीं करना चाहिए। मेरा नाम, धाम, लीला सभी नित्य हैं। भूमि का भार उतार कर अब मैं प्रमोद वन जाऊँगा। तुम ज्ञान ध्यान में लगाकर सरयू तट पर अपने आवास पर धैर्यपूर्वक मेरी प्रतीक्षा करो। इसके पश्चात लक्ष्मण सरयू तट पर स्थित प्रसाद में चले गये और दण्ड स्वरूप एकान्त ने निवास करने लगे।

राम के परलोक गमन के समाचार को सुनकर अयोध्या वासी चिंतित हो गये। उन्होंने श्रीराम से कहा कि आप हमें छोड़कर क्यों जा रहे हैं। हम लोगों का उद्धार कैसे होगा? श्रीराम ने उन्हें समझाते हुए कहा कि युग प्रवृत्ति के अनुसार मेरी लीला का आर्विभाव और तिरोभाव होता रहता है। अयोध्या के निवासियों, पशु–पक्षियों, कीट पतंगों आदि को मृत्यु के उपरान्त गरूड़ के द्वारा स्वर्ग भेजता रहता हूँ। प्रजाजनों के चले जाने पर भगवान श्रीराम ने गोपों को बुलाया। उन्होंने उनसे दिव्यधाम यात्रा की चर्चा करते हुए कहा कि मैं अपनी लोक लीला का प्रयोजन पूरा करके प्रमोद वन जा रहा हूँ। तुम लोग मेरे वचनों में आस्था रखते हुए जीवन बिताना। इसके पश्चात सरयू तट स्थित कुंज में चले गये। वहाँ से उन्होंने अपने नित्य धाम प्रयाण के लिये घोषणा करायी कि जो मेरे साथ चलना चाहे चले। यह संवाद सुनकर सारे अयोध्यावासी, कीट पतंग, पशु–पक्षी वहाँ एकत्रित हो गये। हनुमान, सुग्रीव, विभीषण, नल–नील आदि भी उपस्थित थे। सरस्वती वीणा वादन कर रही थी। अन्य देवता स्तोत पाठ कर रहे थे। उसी समय अवधवासियों के ले जाने के लिये अनगिनत दिव्य विमान आ गये। श्रीराम ने वहाँ उपस्थित लोगों को उसमें बैठने का आदेश दिया। आकाश किन्नरो के मधुर गान से गूँज रहा था। देव और गन्धर्व फूल वर्षा कर रहे थे। देखते–देखते दिशाओं को प्रकाशित करते हुए विमान अयोध्यावासियों को लेकर उड़ गए। अन्तिम विमान में परिकरों एवं पराशक्ति सहित भगवान राम स्वयं विराजमान थे। श्रीराम के स्वर्गारोहण के पश्चात उनके द्वारा आदिष्ट राजकुमार व्रज प्रदेश गये। वहाँ गोप गोपिकाओं से मिलकर राम की रसमयी लीलाओं के प्रत्यक्षानुभूत तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त किया। बाद में इन्हीं के द्वारा भक्ति का विश्व व्यापी प्रचार हुआ।

(ii) भुशुण्डि रामायण के प्रणेता

भुशुण्डि रामायण, रामायण परम्परा की एक अति महत्त्पूर्ण कृति है। अब तक प्राप्त रामायणों में भुशुण्डि रामायण सर्वाधिक विशद है। छत्तीस हजार श्लोकों वाले इस विशाल ग्रन्थ में किसी भी स्थान पर रचयिता का संज्ञान नहीं होता है। रचयिता ने परोपकाराय सतां विभूतयः का पालन करते हुए प्राचीन भारतीय परम्परा का पूर्णतः

निर्वाह किया है। रचयिता ने लोक कल्याणार्थ इस महान ग्रन्थ की रचना करके रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृति, गाथाओं आदि की परम्परा को आगे बढ़ाया है। श्रीमद्भागवत में वर्णित कृष्ण की बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था की लीलाओं की भाँति उसी आदर्श का निरूपण करते हुए इस ग्रन्थ में श्रीराम की लीलाओं का वर्णन अत्यन्त ही हृदयग्राही एवं लोक मनोहर रूप में किया गया है। भुशुण्डि रामायण एक धार्मिक कृति है जिसका हिन्दू धर्म पर अमिट प्रभाव पड़ा है। इस कृति के विषय में यह कहा जा सकता है कि यह प्राचीन ज्ञान की अमूल्य धरोहर 12वीं शताब्दी तक मन्दिरों की प्रच्छन सम्पत्ति रही है। वर्तमान काल में डॉ0 भगवती प्रसाद सिंह के अथक प्रयास तथा अयोध्या के महन्त रामदास जी की कृपा से यह कृति जन साधारण के सम्मुख प्रस्तुत को सकी। इस कृति के संकलन एवं प्रकाशन का श्रेय भी उन्हीं को जाता है। रसिक राम भक्तों के लिए इस कृति का विशेष महत्त्व है। माधुर्यपूर्ण रामभक्ति का प्रतिपादन इसमें किया गया है। भुशुण्डि रामायण की मूल कृति का लिपिकाल संवत 1921 है। इस प्रति के अलावा रीवा और मथुरा में कुछ प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं। अतएव हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि इस रामायण को प्रकाशित करने का प्रयास सम्पादक भगवतीप्रसाद सिंह ने न किया होता तो यह अमूल्य ग्रन्थ आज हमसे विमुख होता।

(iii) भुशुण्डि रामायण का रचना काल

धार्मिक ग्रन्थों तथा साहित्यिक रचनाओं में कृतिकार द्वारा आत्मपरिचय तथा निर्माण तिथि न देने की भारतीय परम्परा का आलोच्य ग्रन्थ में भी पूरा सत्कार किया गया है। भुशुण्डि रामायण के रचनाकाल के सन्दर्भ ग्रन्थ में कहीं भी आत्मपरिचय नही दिया तथा कही भी रचना सम्बंधी तिथि की चर्चा नही की गयी है। अतः इस ग्रन्थ के रचनाकाल का सही आकलन नहीं किया जा सकता। विषय शैली के विश्लेषण का एक मात्र मार्ग अन्तः साक्ष्य ही रह जाता है। ऐसे एक भी बाह्य साक्ष्य नहीं प्राप्त हुए हैं जिनमें लेखन एवं काल–विषयक कोई उल्लेखनीय प्रकाश प्राप्त हो सके।

भुशुण्डि रामायण के कथानक वैशिष्ट्य पर पूर्वमध्यकालीन तांत्रिक साधना पर अत्यन्त व्यापक एवं गम्भीर प्रभाव परिलक्षित होता है। तीसरी शताब्दी से लेकर 12वीं शताब्दी तक अर्थात एक हजार वर्षो तक साधना तंत्र से प्रभावित रही है। इस काल में कापालिक, कौल, ब्रजयानी, सहजयानी और गुह्यशक्ति–साधना का अपूर्व विकास हुआ। शैव तंत्रों में पुरूष शक्ति तथा शाक्त तंत्रों में स्त्री शक्ति को प्रधानता दी गयी है। नवी तथा दशवीं शताब्दी में कुल (शक्ति) तथा अकुल (शिव) के सामंजस्य को ही त्रिपुरसुन्दरी की संज्ञा दी और इस प्रकार कामेश्वर–कामेश्वरी के समन्वय को ही साधना का अन्तिम लक्ष्य निर्धारित किया। भुशुण्डि रामायण के रचनाकार ने पात्रों के शील निरूपण तथा चरित्र चित्रण में इन सभी साधनाओं के आधार भूत तत्त्वों को समय–समय पर सन्निवेश किया है।

कापालिक – कापालिक शिवभक्त थे। वे शिव को ही केवल ज्ञान तथा शक्ति की उपासना का विषय मानते थे। भुशुण्डि रामायण में तात्कालीन वैष्णवों द्वारा दी जाने वाली नवरात्र की महाष्टमी को चण्डी पूजा की चर्चा है। कापालिकों के वेशभूषा तथा

क्रिया–कलाप का भी वर्णन ग्रन्थ में कुछ स्थानों पर प्राप्त होता है। जैसे देवताओं तथा असुरों द्वारा समुद्र मंथन के समय कन्या के रूप में वारूणी देवी का उत्पन्न होना। वारूणी देवी पंचमुखी थी, त्रिनेत्रा थी तथा अठारह भुजाओं से सुशोभित थी। वारूणी देवी के हाथ में कपाल और षटवांग था जो कापालिक प्रभाव को दर्शाता है।

कन्यारूप धरा देवी वारूणी या सुरप्रिया।
हिमकुन्देंदु धवला पंचवक्त्रा त्रिलोचना ।
अष्टादश भुजैर्युक्ता सद्यानन्द कारिणा ।
शुभासने समासीना प्रमत्त वृषभोपरि ।
नीलकंठी तडित्तुल्या सर्वाभरण भूषिता।।
कपाल खट्वांगधरा घण्टाडमरू वादिनी।
परशांकुशधरा देवी गदामूशल धारिणी।।[32]

भारतीय धर्म उपासना पद्धतियों का विशद अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि कापालिकों का प्रभाव दशवीं शताब्दी के आस–पास अत्यधिक रहा। अतः आलोच्यग्रन्थ भुशुण्डि रामायण भी इसी काल के आस–पास की रचना होगी।

कौल – भुशुण्डि रामायण में कौल सम्प्रदाय की साधना पद्धति का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस सम्प्रदाय में शक्ति अथवा स्त्री पूजा की प्रधानता थी। इस मत के अनुयायी नैतिक एवं सामाजिक मर्यादाओं 'पाशों' अथवा 'बन्धनों' को तोड़ने में आध्यात्म साधना की सार्थकता मानते थे। भुशुण्डि रामायणकार ने इस वामपंथी योग साधना से प्रभावित होकर सीता को 'योगिनी परमाकला' की संज्ञा प्रदान की है।

"खेचरी भूचरी सिद्धा योगिनी परमाकला।"[33]

रचयिता ने जिन पंथों का परिचय दिया वे सभी 12वी शताब्दी के पूर्व के हैं। उस काल में 'कौल' वामपंथी साधना के लिये विख्यात थे। उनका आचरण समाज के लिये पूर्ण रूप से ग्राही था। जैसा कि उनकी इस विशेषता से मालूम चलता है।

अन्तः शाक्ताः बहिर्शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः।

नाना रूपधरा कौलाः विचरन्ति महीतले ।।[34]

कौलों की उपर्युक्त साधनाओं का भुशुण्डि रामायण में यह उल्लेख प्रमाणित करता है कि यह रचना 18वीं शताब्दी से पूर्व की है क्योंकि यह सम्प्रदाय 12वीं शताब्दी के पूर्व का है।

सिद्ध – सिद्ध योगी तीन वर्गों में विभक्त थे– कौल, बौद्ध एवं सिद्धनाथ। बौद्ध सिद्ध बुद्ध धर्म की ब्रजयानी साखा से जुड़े थे। नाथ सिद्धों का सम्पर्क गोरखनाथ से था। सिद्ध लोग अनेक प्रकार के आश्चर्यमय कार्यो को करने की क्षमता रखते थे। जैसे किसी रोग की चिकित्सा करना, मनचाहा रूप धारण करना, आकाश मार्ग से यात्रा

---

[32] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 163/11, 13, 15, 16
[33] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 14/30
[34] भुशुण्डि रामायण उत्तरखण्ड अध्याय 24

करना आदि। भुशुण्डि रामायण में योगियों के सिद्धियों के प्रदर्शन का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया गया है। लक्ष्मण के सहस्त्र नाम का उल्लेख करते समय उन्हें खेचरी विद्या में निष्णात बताया गया है–

खेचरी सिद्धिदाता च योगविद् योग पारगः।[35]

इसी वर्णन में अवधूत, खट्वांगी, बज्रसार, कपर्दी आदि नामों का उल्लेख सिद्ध प्रभाव को परिलक्षित करता है।

सिद्धवेशधारी शंकर द्वारा स्तम्भयंत्र के प्रयोग से रोग को दूर करने की घटना का विशद वर्णन किया गया है। सिद्ध अलौकिक मंत्र शक्ति के धारक थे। इसी कारण समाज में उनका सत्कार किया जाता था। इस सम्प्रदाय में माँस भक्षण करना साधना पद्धति का एक प्रमुख मार्ग था। इसका प्रभाव बाल्मीकि रामायण में स्पष्ट दिखाई देता है। वनवास के समय श्रीराम के द्वारा माँसाहार का उल्लेख किया गया है। यही नहीं सीता और लक्ष्मण को भी माँसाहार करने वाला बताया गया है। परन्तु बाद में वैष्णव धर्म से प्रभावित अन्य ग्रन्थों में अहिंसा पर जोर दिया गया और माँसाहार का निषेध कर दिया गया, उनमें मछली के माँस का और पशु माँस का उल्लेख किया गया है।

भरत की चित्रकूट यात्रा में अयोध्यावासियों के लिए माँस की बहुत व्यवस्था की गयी।

'मांसानि च मधूनि च'

सम्भवतः कौल तांत्रिकों की स्त्री पूजा तथा योनि पूजा पर उससे पूर्व वर्णित वैष्णव काव्यों का प्रभाव पड़ा।

सहजा साधना – भुशुण्डि रामायण में सहजा नन्दिनी सीता की राम के साथ की गयी सुरत क्रीड़ा के वर्णन पर इन्हीं तांत्रिकों का प्रभाव पड़ा है। गोपिकायें भी कुल की मर्यादा, लज्जा छोड़कर प्रेम में निमग्न बतायी गयी हैं। यथा–

कामतत्त्वेन ताः सर्वाः रमयामास गोपिकाः।

....

तव रूपविमोहिताः स्त्रियः कलिताः कामकरेकृताशयाः ।
कुल शील विलज्जयातुराः पथिरूद्धाः सरितो यथाभवन्।।[36]

इस वर्णन में राम और सीता की निधुवन क्रीड़ा का उल्लेख किया गया है। भुशुण्डि रामायण में स्त्री सौन्दर्य और सुरत क्रीड़ाओं का वर्णन कौलों की तरह किया गया है। इन वर्णनों भी सिद्ध होता है कि भुशुण्डि रामायण की रचना सिद्धकाल की रचना है। सहजा नाम का उल्लेख सहजयानी बौद्धों के प्रभाव को स्पष्ट करता है। तांत्रिक बौद्धधर्म हिन्दुओं के विशेष वर्ग में लोकप्रिय था। भुशुण्डि रामायण के अतिरिक्त सहज नाम का उल्लेख भारतीय विश्व के किसी रामायण साहित्य में प्राप्त

---

[35] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 48/28
[36] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 26/8, 9, 28

नहीं होता। कृष्णचरित में जो स्थान राधा का है भुशुण्डि रामायण में वही स्थान सहजा का है।

सहजा जानकी सीता मोदिनी राधिका रामा।
आनन्दिकी परालीला ललना लास्यकारिणी।।[37]

सहज वैष्णव धर्म में कृष्ण को रसराज कहा जाता है भुशुण्डि रामायणकार द्वारा की गयी सहजा शक्ति की उद्‌भावना के पीछे पूर्ववर्ती सहजानन्दी कौलों तथा परवर्ती सहजयानी बौद्धों का वही आदर्श था जिसने सहजया वैष्णव को कृष्ण की भाँति राम में भी रास वर्णन की प्रेरणा प्रदान की थी। और इस स्वर पर दोनों में अभेद कल्पना को प्रोत्साहित किया था। रचनाकार ने भी पुरूष और प्रकृति की अद्वैत आस्था मानी है। राम स्वयं अपने को सहजा के बीच द्विधा होने की बात कहते हैं।

यथा एकोऽहं सन् द्विधा जातः सहजा राम एव च।[38]

मूल सत्ता की सृष्टि रचना सम्बन्धी इच्छा का नाम ही सहजा है।

ध्यान योग – भुशुण्डि रामायण में योगियों की एक पद्धति ध्यान योग की साधना प्रक्रिया का वर्णन किया गया है।

फलिते ध्यान योगे तु ध्येयं साक्षात्कृतं भवेत।

श्री देवी और सहजा में अभिन्नता बतलायी गयी है। श्रीदेवी को कमला और लक्ष्मी का पर्याय माना गया है और महाशक्ति होने के कारण कापालिकों और कौलों में पूज्य है। भुशुण्डि रामायण में सीता में अभेद स्थापना की गयी है। इस प्रकार तांत्रिकों वैश्यों में मेल दिखाने का प्रयास किया है। भुशुण्डि रामायण में तांत्रिको को इस देवी का सीता से अभेद स्थापित किया गया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भागवतसम्प्रदाय में बौद्ध शाक्त, साधकों की कई विचार धारायें मूल रूप से वहन कर ली गयी है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भुशुण्डि रामायण का रचनाकाल उस समय का है जब उत्तरी भारत में शाक्त और बौद्ध धर्म पतनोन्मुख था तथा वैष्णव धर्म का प्रचार तीव्रता से बढ़ रहा था। वराही तंत्र में तांत्रिक साधनाओं का मुख्य तत्त्व ध्यानयोग बतलाया गया है। भुशुण्डि रामायण में इसका वर्णन किया गया है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भुशुण्डि रामायण का रचनाकाल देखने पर यह स्पष्ट होता है कि गोविन्द, चन्द्रदेव, जयचन्द्र आदि चन्देलों तथा गहरवार राजाओं की आस्था तंत्रयान और व्रजयान में थी; किन्तु इसके बाद चन्देल ओर गहरवार राजा क्रमशः शैव और वैष्णव मत के प्रति अधिक आदर सम्मान रखते थे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इस ग्रन्थ की रचना 11वीं शताब्दी के आसपास की हो सकती है। क्योंकि विश्वनाथ मंदिर और मार्कण्डेय महादेव का उल्लेख भुशुण्डि रामायण में दशरथ तीर्थयात्रा के समय किया गया है।

---

[37] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 43/22
[38] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 38/22

विभिन्न सम्प्रदायों के पतन और विकास के इतिहास को देखते हुए कहा जा सकता है कि 11वीं शताब्दी के बाद तांत्रिकशाक्त, बौद्ध मतों का पतन आरम्भ हो चुका था और वैष्णव धर्म का पुनुरूत्थान प्रारम्भ हो चुका था। क्षेमेन्द्र ने शैव मत को छोड़कर वैष्णव धर्म स्वीकार कर लिया था। भुशुण्डि रामायण में वैष्णवों की अनेक बातों को प्रतिष्ठापित किया गया है। जैसे लक्ष्मीनारायण का महत्त्व, वैष्णव मत का महत्त्व, वैष्णवाचार्य का मत, नाम, जप, राम मंत्र, उपासना, षोडशोपचार, पूजा आदि सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। भुशुण्डि रामायण में उल्लिखित ब्रह्म संहिता का निर्माणकाल श्लेडर ने 400 से 800 ईसवीं के बीच माना है। अतः इन ग्रन्थों का उल्लेख सिद्ध करता है कि इस ग्रन्थ की रचना 8वीं शताब्दी के बाद एवं 11वीं शताब्दी के मध्य हुई। वैष्णव सम्प्रदायों के अनुयायी माँस, मदिरा और स्त्रियों के उन्मुक्त उपभोग के पक्षधर थे। तांत्रिको और सिद्धों ने पंचमकार साधना, माँस, मदिरा पर अधिक बल दिया गया। जबकि वैष्णव सम्प्रदाय में इनका सेवन पूर्णतः निषिद्ध था। भुशुण्डि रामायण में अनेक स्थानों में माँस आहार का वर्णन प्राप्त होता है।[39] उपर्युक्त वर्णन से हमें ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ के रचनाकाल तक वैष्णव सिद्धान्तों में उल्लेखनीय निरामिष भोजन जैसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त पर पूर्णतः अवहेलना थी। जो इस कृति को 11वीं शताब्दी का सिद्ध करती है। भुशुण्डि रामायण के रचना काल को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखे तो हमें ज्ञात होता है। भारत पर अठारहवी शताब्दी से आक्रमण होने प्रारम्भ हो गये थे। यह आक्रमण 11वीं शताब्दी में अधिक तीव्रता से हुए। इन आक्रमणों का परिणाम यह हुआ कि उत्तरी पश्चिमी प्रदेशों की स्वतंत्रता विलुप्त हो गयी। विदेशियों का आधिपत्य हो गया उन्होंने हिन्दू धर्मावलम्बियों पर अनेक अत्याचार किये गये। साहित्य समाज का दर्पण होता है। अतएव तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण भुशुण्डि रामायण में रघुवंशियों और यवन सेनाओं के मध्य हुए युद्ध वर्णनों में परिलक्षित होता है। इस प्रकार कृति के अन्तः साक्ष्य अध्ययन के द्वारा विभिन्न सम्प्रदाओं के मतों एवं उनके सिद्धान्तों से भुशुण्डि रामायण की रचनाकाल के संदर्भ में आंशिक सफलता प्राप्त होती है।

(च) भुशुण्डि रामायण का साहित्यिक सौष्ठव

किसी भी महाकाव्य की उत्कृष्टता उसके साहित्यिक सौष्ठव पर ही आधारित होता है। अतएव महाकाव्य का उद्देश्यपूर्ण कथानक एवं रस, अलंकार, रीति, गुण आदि गुणों से समुन्नत होना आवश्यक होता है। भुशुण्डि रामायण में यथा स्थान उच्च कोटि का काव्यत्व दृष्टिगोचर होता है। हम यहाँ प्रस्तुत गुणों के आधार पर भुशुण्डि रामायण के साहित्यिक वैशिष्टय पर एक विहंगम दृष्टि डालते हैं।

---

[39] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 53 / 23

कथानक सौन्दर्य –

हमारे भारतीय साहित्य में राम के जीवन चरित्र पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये। भुशुण्डि रामायण राम के जीवन चरित्र पर आधारित एक सुन्दरतम् रचना है। यद्यपि भुशुण्डि रामायण का कथानक अन्य रामायणों के समान है परन्तु राम के बाल स्वरूप का वर्णन श्रीमदभागवत में वर्णित कृष्णचरित के ही समान है। यह इस रामायण की प्रमुख विशेषता है। इसमें राम की बाल्यावस्था का वर्णन अत्यन्त ही मोहक है कहीं वंशी बजाते हुए, कूदते हुए, नृत्य करते हुए और कहीं वे गोपाल बालाओं के साथ क्रीड़ा करते है।[40] राम परब्रह्म होते हुए भी श्रीकृष्ण की ही तरह रसिक है। वे सुन्दरी गोपिकाओं के साथ विधिवत रमण करते है भुशुण्डि रामायण के राम गीता में राम ने अपने स्वरुप स्वभाव एवं उपदेश का वर्णन किया है उन्होने अपने निर्गुण सगुण स्वरुप की ओर संकेत किया है।[41] रामरास में भगवान राम का कृष्ण की तरह अनेक लीलाओं का वर्णन कवि ने किया है।

जिस तरह श्रीमदभागवत में श्रीकृष्ण ने वत्सचारण लीला की थी उसी प्रकार रामचन्द्र ने वत्सचारण लीला की। श्री राम अपने पिता से वैष्णव कर्म करने के लिये निवेदन करते है। राजा दशरथ उनके कथन को मानकर वैष्णव भाग सम्पन्न करते है। जिससे कुपित होकर इन्द्र प्रचण्ड वृष्टि कर देते है राम अपने आश्रतों के कष्टों के निवारण के लिये मेघ अवरोधक अपने छत्र को हाथ में लेकर उनकी रक्षा करते हैं। राम के प्रभाव को समझकर इन्द्र उनसे क्षमा याचना करते हैं और उनकी स्तुति करते है। बाल्यावास्था में भगवान कृष्ण की तरह राम भी अपनी अद्‌भुत लीला द्वारा सभी का मन मोह लेते हैं। माता कौशल्या राम के छोटे से मुख मण्डल में सम्पूर्ण जगत का स्वरूप देखकर आश्चर्य चकित हो जाती है।

अद्रयः सागराः नद्यो द्वीपाः ग्रामाः पुराणि च।
नरा देवाश्च गन्धर्वा वनानि भुवनानि च ।।
सर्व राममुखेऽपश्चन्माता माङ्गल्यया सह ।
अदृष्ट मश्रुतं चैव सर्वाश्चर्यमयं जगत्।।[42]

ऐसी ही विविध लीलायें भगवान राम के द्वारा की गयी जो उनमें कृष्ण का स्वरूप दर्शाती हैं। इस ग्रन्थ में राम को परब्रह्म का अवतार माना गया है। तथा सीता जिनका नाम सहजा है राधा की अवतार मानी गयी है। इस रामायण में कृष्ण और राधा की रासलीला से भी अधिक राम और सीता की रसलीला दिखायी गयी है। यद्यपि वैष्णव धर्म में श्रंगारिकता का वर्णन सामाजिक और नैतिक दृष्टि से उचित नहीं माना गया है। फिर भी भुशुण्डि रामायण में श्रंगारिकता का जो वर्णन है कवि ने उसको मर्यादित रूप में बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

भुशुण्डि रामायण का कथा सौन्दर्य अन्य रामायण में वर्णित कथा सौन्दर्य से थोड़ा भिन्न है। यद्यपि यह कृति कथानक की अपेक्षा रस संयोजन की दृष्टि से

---

[40] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 51/34
[41] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 23/9
[42] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 19/23-24

अधिक महत्त्वपूर्ण है। परन्तु इसकी कथावस्तु में भगवान कृष्ण की झलक दर्शाना भी इसकी एक विशिष्टता का प्रमाण है। अन्य रामायणों में प्रायः इस प्रकार का स्वरूप दर्शनीय नहीं होता है।

रस सौन्दर्य

रस काव्य के प्राण होते है। रस को प्रस्तुत करने के लिये ही कवि शब्दार्थ रूपी काव्य की रचना करता है। सहृदयों को रस की अनुभूति कराना ही कवि के काव्य के निर्माण का सरस प्रयोजन होता है। महाकाव्य में रस ही उसका आत्मभूत तत्त्व है। महाकाव्य की श्रेष्ठता भी रस के उचित प्रयोग पर ही निर्भर करती है। सहृदयों को रस की अलौकिक अनुभूति कराना ही कवि का उद्देश्य होता है। रस विहीन काव्य को अधम काव्य की श्रेणी माना गया। प्राचीन भारतीय साहित्य में नौ प्रकार के रसों की कल्पना की गयी है। किसी भी महाकाव्य की श्रेष्ठता इन रसों के विधिवत प्रयोग पर निर्भर करती है।

महाकाव्य में श्रंगार, वीर, शान्त आदि नौ रसों में से कोई एक रस अंगी रस के रूप में विद्यमान रहता है। अंगी रस ही किसी महाकाव्य की साहित्यिक वैशिष्टता है। कवि अपनी विशेष प्रतिभा के द्वारा अंगी रस की योजना करता है। यही महाकाव्य का आत्म भूत तत्त्व कहलाता है। कवि अपने काव्य में शब्द, अर्थ, गुण, रीति एवं अलंकार की योजना भी अंगी रस के निर्वाह के लिये करता है। यही अंगी रस महाकाव्य का केन्द्र बिन्दु होता है। अतः उसकी अभिव्यक्ति में कवि विशेष ध्यान रखता है। कवि यथास्थान प्रसंग के अनुकूल औचित्य भावना की दृष्टि से अंग रस का संयोजन करता है। परन्तु वे सभी अंग रस अंगी रस के प्रति समर्पित होते है। अंगी रस महाकाव्य में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक रहता है। परन्तु अंग रस किसी एक क्षेत्र तक ही सीमित रहता है।

भुशुण्डि रामायण में अंगी रस योजना

भुशुण्डि रामायण में कवि अंगी रस योजना में सर्वथा सफल रहा है। काव्य रचना में कवि के द्वारा सहृदयों के हृदय को आनन्द से आप्लावित करना सहृदय कवि का प्रमुख लक्ष्य होता है। कवि अपनी काव्य रचना में सहृदयो को आनन्दानुभूति कराता है। भुशुण्डि रामायण में वीर रस अंगी रस के रूप में प्रयुक्त हुआ है। यद्यपि इस रामायण में श्रृंगार और भक्ति रस की भी प्रधानता है। तथापि धीरोदात्त प्रकृति के नायक राम का उत्साह सर्वोष्कृष्ट होने के कारण अंगी रस के रूप में वीर रस की प्रधानता है। वीर रस के प्रमुख चार भेद हैं।

1. दानवीर 2. धर्मवीर 3. युद्धवीर 4. महावीर

निश्चिय ही ये चारों भेद राम में संस्थित हैं। राम की धर्मवीरता एवं दानवीरता उस समय प्रकट होती है जब राम को वनवास की सूचना मिलती है तब वे अपने पिता को आस्वासन देते है कि हे तात मुझे राज्य की कामना नहीं है और न ही भोग की इच्छा। मेरे लिये वन अथवा घर एक समान है। मेरे राज्याभिषेक से कैकेयी माता को कष्ट न हो। भरत को मामा के घर से बुला ले। वे नीति के और

धर्म के अनुसार पृथ्वी का पालन करें। मेरे लिये घर और वन एक समान है। हे पिता मैं आपके सत्य वचन पालन के लिये क्षण भर में ही अपना सिर भी तोड़ सकता हूँ। यह पृथ्वी का राज्य तो तुच्छ है इसलिए हे पिता आप शोक न करें मुझे वन जाने की आज्ञा दे।

अपि तात कियत्कार्य मयि राज्याभिषेचनम्।
भवान् यस्यानुरोधेन सत्यमप्यति वर्तते ।।
न में यस्ये स्पृहा राजन् नाहंतुष्यामि भोगतः।
कानेन वा गृहे वापि समानं मम वर्त्तनम् ।।
दीयतां भरते राज्यं पाल्यतां सत्यभाषितम् ।
मम् राज्येन कैकेयी मा विभर्त्तु रूषं हृदि ।।
आहूयतां भरतो मातुलेभ्यः स शस्तुभूमिं नयधर्मनिष्ठः।
भवान् यथेच्छं श्रयतादात्मयोगं गृहं वनं वापि समानमेव।।
अहं तात त्वद्गिरां सप्रयत्नं सत्यस्यते पालनार्थं क्षणेन।
शिरोऽपि स्वं वीतशोकस्त्यजेयं किं नाम राज्यं भुव एतदल्पम्।।
यथा पितुः स्वर्ग पदान्निपातो भवेन्न सत्यातिक्रमाद जस्त्रम्।
तथा कार्यं ननु पुत्रेण लोके विपर्या सश्चेन्न स पुत्रः सुपुत्रः।।
भावी चार्थोऽतिबलवान् राजन्निर्दिष्ट एव ते।
प्रजापत्येन मुनिना वशिष्ठेन तपस्विना।।
मा शुचस्त्वं हृदा तात भाव्यर्थममुमीदृशम्।
अवधाय वने गन्तुं मामद्य क्षिप्रमादिश।।[43]

राम के कथन में उनकी दानवीरता तथा धर्मवीरता की स्पष्ट झलक अभिव्यंजित हो रही है।

भुशुण्डि रामायण में अंग रस योजना

अंगी रस के समान ही भुशुण्डि रामायण में अंग रस की सम्यक योजना हुयी है। यहाँ हम भुशुण्डि रामायण में वर्णित अंग रसों की संक्षिप्त रूप में प्रस्तुति कर रहे है।

शृंगार रस – भुशुण्डि रामायण में श्रंगार रस की सम्यक व्यंजना हुई है। राम की विहार लीला और रस लीला में श्रंगार की मार्मिक व्यंजना प्राप्त होती है। भगवान राम अलौकिक सुन्दर शरीर धारण किये हुए सुन्दर स्त्रियों के काम रस का पान करते हुए सुशोभित हो रहे हैं। अर्द्धांगिनी सीता के साथ काम क्रीड़ा में रमते हुए राम नक्षत्र मण्डल में चन्द्रिका के साथ चन्द्रमा की भाँति सुशोभित हुए राम, सीता के आविष्ट हृदय में मुग्ध गोपियों के समूह को रस प्रदान करते हुए सुशोभित हो रहे हैं।

---

[43] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 8 / 148, 55

परार्द्ध स्मरलावण्यं बिभ्रत् सुन्दरविग्रहः।
कामिनीनां कामरसं पोषयन् राघवो बभौ।।
सीतायाद्धंगिसंगिन्या सह केलिरसं दधत्।
ज्योत्स्नया चन्द्रवद्रामो रेजे नक्षत्रमण्डले।।
मुग्धानां गोकुलस्त्रीणां जानक्याविष्टचेतसाम्।
समूहं रसयन् रामो बभाराकृतिसौष्ठवम्।।
यन्नेति नेतीति वदन्ति वेदाः, ब्रह्मादयो यन्न लेभुस्तेभिः।
तत्त्वं परं तुच्छ्रुतिमूर्ध्वमृग्यं, व्रजांगनाभिः करयोर्गृहीतम्।।
गुंजाहारं दधदुरसिलसच्छीर्षमायूरचन्द्रो।
वेणुं बिम्बोष्ठदलकलितं बिभ्रदापूर्णनादम्।।
स्निग्धा च श्रीर्नजड्वलसद्वेश सौन्दर्यसारो।
बिभ्रदाभः प्रमुदविपिनं वल्लवीर्मोदयानः।।
राघवो मोदयन् गोपीस्ता एवं सपरिच्छदाः।
एवं योगी वै रमते रामो रमयतां वरः।।[44]

राम के रस लीला विलास में श्रंगार रस की मार्मिक व्यंजना दर्शनीय है। सहजानन्दरूपिणी सीता राम को संक्षुब्ध कर स्वयं अन्तर्धान हो जाती है। राम सीता के वियोग में अतिशय खिन्नता एवं अद्विग्नता का अनुभव करते हैं। वे चन्द्रमण्डल को उपालम्भ देते है। राम सीता को उपालम्भ देते हुए कहते है कि अये कठोर ह्रदय सीते तुम्हें अपने तारूण्य एवं सौन्दर्य पर दर्प है। तुमने मेरी पीर बढ़ायी है और पीड़ित को देखकर तुम्हें दया नहीं आती। सीता के वियोग में राम की स्थिति विचित्र हो जाती है।

क्वचिच्चन्द्रमुपालेभे पूर्णबिम्बं सुधामयम्।
क्वचित् पद्नवनं दृष्टवा दुःखी नेत्रे न्यमीलयत्।।
क्वचित् कैरविणीं वीक्ष्य बभूव च पराङ्मुखः।
क्वचिद् रम्भावनं दृष्टवा स्पृष्ट्वा प्राद्रवदातुरः।।
क्वचित् कुञ्जलतां दृष्ट्वा वक्तुं समुपचक्रमे।
क्वचिद् वसन्तमालोक्य मेने दावानलं विभुः।।
क्वचिदेकान्त सदने तामुपालभत प्रियाम्।
अये! कठोर ह्रदये दृप्ते जनक नन्दिनि।।
व्यथमानह्रदं दृष्ट्वा नाद्यापि करूणा तव।
सकृन्मे दर्शनं दत्वा महाविरह वर्धननम्।।[45]

उधर गोपिकायें भी काम से पीड़ित होकर राम से मिलने के लिये समुत्कण्ठित हो रही हैं। ये राम के पास दूती के द्वारा अपना संदेश भेजती हैं।[46]

---

[44] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 24 / 1 – 7
[45] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 26 / 14, 15, 16, 17, 18
[46] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 26 / 27

एवं राम गुणाकृष्टाः समस्ता वामलोचनाः।।[47]

प्रेम से आपूरित ह्रदय राम गोपिकाओं के साथ रास लीला करते हैं।

राम महाकुंज में वेणु के द्वारा प्रियतमा का विविध प्रकार से आह्वान करते है। राम के वेणु आह्वान को सुनकर सीता अपने सुन्दर रूप में प्रकट होती है।

ततस्तदाकर्ण्य सुवेणुनिः स्वनं प्रियोदितं मन्मथवेग वर्द्धनम्।
स्मरोन्मदप्रोद्धतमानसा बहिर्ह्रदन्तरादाविरभून्नि तम्बिनी।।[48]

राम सुन्दरी सीता को प्राप्त कर उनके साथ रतिक्रीड़ा करते है और सीता के साथ अनेक प्रकार से विहार करते है।

श्रङ्गारयामास रघूद्वहः प्रियां प्रियापि तं दिव्ययुवानमादरात्।
एवं तदन्योन्यमभूतः कुतूहलं दाम्पत्यभाव प्रणयेन संचितम्।।[49]

यहाँ पर राम सीता आलम्बन विभाव प्रमोदवन उद्दीपन विभाव, परस्पर चुम्बन आलिंगन अनुभाव है। मद, मोह, लज्जा, औत्सुक्य, चपलता और संचयी भाव है। इसके द्वारा अभिव्यक्त होकर रति भाव संभोग शृंगार के रूप में परिणत हो रहा है। इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी शृंगार रस की व्यंजना देखी जा सकती है।

शृंगार रस के अतिरिक्त शान्त रस (10–74) दक्षिण खण्ड, करूण रस (10/82–87) रौद्र रस (77/30–48) भयानक रस (231/12–24 तक) वीभत्स रस (114/60–64 तक) अद्‌भुत रस (114/30–33) वात्सल्य रस (8/15) दक्षिण खण्ड) की व्यंजना देखी जा सकती है। इसी प्रकार भुशुण्डि रामायण में भावों की भी सम्यक योजना देखने को मिलती है। भावों के संयोजन में कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुयी है।

भाषा सान्दर्य

भाषा ज्योति वह अलौकिक साधन है जिसके द्वारा अलौकिक जगत अपने काव्य व्यापार में प्रवृत्त होता है। इसी साधन के द्वारा सह्रदय कवि अपनी नवोन्मेष शालिनी प्रज्ञा के द्वारा भाव सम्पत्ति को प्रस्तुत कर देता है।

भुशुण्डि रामायण की भाषा प्रौढ़, परिष्कृत एवं ललित है। कवि ने विषय के अनुरुप भाषा का प्रयोग किया है। मंगलाचरण में प्रस्तुत कवि की भाषा राम के सहज स्वरुप को व्यक्त करती है। कवि की भाषा ने परवर्ती कवियों को अत्यधिक प्रभावित किया है कविवर तुलसीदास ने भुशुण्डि रामायण के अनेक पदों का अविकल अनुवाद जैसा प्रस्तुत किया है। प्रकारान्तर में तुलसीदास जी ने अन्य शिल्पों के साथ ही साथ भाषा शैली का भी मानों अनुवाद ही कर लिया है।

कतिपय प्रसंग इस प्रकार है--

---

[47] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 26/25
[48] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 27/11
[49] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 27/30

रामजन्म–

चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु नवम्यां श्री पुनर्वसौ।
अभिजिन्नामयोगऽसौ कौसल्यानन्दनोऽभवत्।।[50]

नामौतिथि मधुमास पुनीता
सुकुल पृच्छ अभिजित हरिप्रीता।।[51]

पुष्प वाटिका प्रसंग–

तत्रागमच्च मिथिलेन्द कुमारिका सा।
सीता स्वयं नामितुमालयमम्बिकायाः।।
तां वीक्ष्यभूय उदितस्मर वाणताप
संभ्रान्त चित्त इव तत्क्षणमास रामः।।[52]
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई।
जासु बिलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा।।[53]

रामवनगमन –

मंथरा नाम कैकेय्या दासी मंदतया धिया।
तस्या कण्ठे सन्निविश्य ब्राह्मी प्रतिविधास्यति।।[54]

नाम मंथरा मंदमति चेरी केकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।।[55]

अलंकार सौन्दर्य

मानव स्वभावतः सौन्दर्य प्रेमी होता है। वह अलंकार के सुन्दर पदार्थों की ओर सहज ही आकृष्ट हो जाता है। इसलिए जब वह न केवल अपने को अपितु अपने उपयोग में आने वाली प्रत्येक वस्तु को सुन्दर सुसंस्कृत एवं अलंकृत रूप में देखना चाहता है, तो लावण्य और लालित्य के पारखी सहृदय कवियों का तो कहना ही क्या। कवि जन अपनी भाषा सुन्दरी को सजाने के लिए उसे अनेक प्रकार से अलंकृत करते हैं।

भुशुण्डि रामायण को नैसर्गिक अलंकारों से अलंकृत किया है। उन्हें अलंकारों पर पूर्ण निष्ठा है। उन्होंने महाकाव्य में शब्द और अर्थ दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है। महाकाव्य का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि उन्हें अलंकारों पर पूर्ण निष्ठा है उन्होंने अपने महाकाव्य में अलंकारों के प्रति सहज दृष्टिकोण अपनाया है। प्रायः वर्ण्य विषय के अनुरूप प्रयोग किया गया है।

---

[50] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 10/2
[51] रामचरित मानस बाल काण्ड अध्याय 191/1
[52] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 74/4
[53] रामचरित मानस (बालकाण्ड) 228/1
[54] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 6/10
[55] रामचरित मानस (अयोध्या काण्ड) अध्याय 1/10

शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष, आदि तथा अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, काव्यलिंग, स्वभावोक्ति, अतिश्योक्ति आदि अंलकारों का कवि ने यथोचित प्रयोग किया है। कहीं पर भी कृतिम प्रयोग नहीं हुआ है। अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग अत्यन्त मनोहर एवं सुन्दर है इसके संयोजन में कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुयी है।

वस्तुतः भुशुण्डि रामायण, रामायण परम्परा का वह देदीप्यमान ग्रन्थ है। जो परवर्ती कवियों के लिए एक आदर्श रहा है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें ऐतिहासिक महाकाव्य एवं वीरकाव्य के सभी गुण समन्वित है। एक ओर भाषा का लालित्य है, तो दूसरी ओर अलंकारों का सप्तरंगी आकर्षण। एक ओर नायक की उदात्तता है तो दूसरी ओर नैतिकता का चरमोत्कर्ष। एक ओर अन्त प्रकृति का मनोरम संगुम्फन है तो दूसरी ओर बाह्य प्रकृति का सजीव चित्रण। जो किसी भी महाकाव्य के उत्कृष्ट सौष्ठव का प्रतीक है। यह कृति कथानक की अपेक्षा रस संयोजन की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखती है। रस, अलंकार, छन्द, रीति, गुण आदि की दृष्टि से इसका साहित्यिक पक्ष अत्यन्त सुदृढ़ है अतएव इस रामायण का साहित्यिक दृष्टि से भाव पक्ष एवं कला पक्ष समुन्नत है। भुशुण्डि रामायण में उच्चकोटि का काव्यत्व दृष्टिगोचर होता है। कवि की भाषा में तदनुरूप प्रौढ़त्व एवं पाण्डित्य है।

अध्याय द्वितीय

पद, वाक्य, प्रबन्धार्थ, गुण, अलंकार, रसगत औचित्य

अध्याय द्वितीय

पद, वाक्य, प्रबन्धार्थ, गुण, अलंकार, रस गत औचित्य

काव्यशास्त्र से तात्पर्य है, वह ज्ञान जो काव्य के स्वरूप, उसकी विभिन्न विधाओं, समस्याओं और गुण–दोष आदि का बोध कराये। आचार्य राजशेखर ने अपनी काव्य मीमांसा में कारयित्री और भावयित्री नाम की दो प्रतिभाओं का उल्लेख किया है। कारयित्री प्रतिभा रचनात्मक है और भावयित्री प्रतिभा रचना का अनुभव कराने और करने वाली है। काव्यशास्त्र में इसी भावयित्री प्रतिभा का विश्लेषण पाया जाता है। रचनात्मक प्रतिभा जहाँ कवि का निर्माण करती है, वही भावयित्री प्रतिभा आचार्यत्व की ओर ले जाती है। इसी आधार पर हम कालिदास, भवभूति और बाल्मीकि को कवि कहते हैं, परन्तु भरत, भामह, वामन और राजशेखर आदि को आचार्य की संज्ञा प्रदान करते हैं। शास्त्रीय प्रतिभा से समन्वित कवि आचार्य हो सकता है। जैसे दण्डी, क्षेमेन्द्र, पंडित जगन्नाथ आदि।

काव्यशास्त्र के छैः सम्प्रदाओं रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि, औचित्य में औचित्य का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। इसको सीमांकित करना बहुत कठिन कार्य है। यह तत्त्व तो काव्य के अंग–प्रत्यंग में विद्यमान है। औचित्य को यदि ज्ञानचक्षु की संज्ञा दी जाय तो कोई आश्चर्य नहीं होगा, क्योंकि 'औचित्य' ही काव्य की सुन्दरता या असुन्दरता का निर्धारण करता है। 'औचित्य' ही काव्य का ऐसा तत्त्व है जो काव्य में विद्यमान होते हुए भी काव्य की चारुता की वृद्धि करता है। यदि यह तत्त्व काव्य में नही है तो वह काव्य ही प्राणहीन शरीर की भाँति होता है।

भुशुण्डि रामायण में काव्यशास्त्रीय प्रतिभा से समन्वित अनेक गुण सर्वत्र व्याप्त हैं। अतः काव्यशास्त्रीय दृष्टि से उसका अध्ययन करना मानो उन्हीं गुणों को प्रदर्शित करना है।

(क) पदगत औचित्य :

हम सभी अपनी बात को भाषा के माध्यम से वाक्यों द्वारा अभिव्यक्त करते है। वाक्यों को जब हम भिन्न–भिन्न कारकों आदि में विभक्त करते हैं तब हमें पद प्राप्त होते हैं। तर्क संग्रह में पद को **'वाक्यंपदसमूहः'** कहा गया है। अर्थात् पदों का समूह वाक्य कहलाता है। अष्टाध्यायी के रचयिता पाणिनि के 'सुप एवं तिंग' से

युक्त शब्द को पद बतलाया है।[1] निरूक्तकार ने पद को नाम, आख्यात, उपसर्ग एवं निपात इन चार भागों में विभक्त किया है।[2] अतएव विभिन्न विद्वानों के विचारों द्वारा हमें स्पष्ट ज्ञात होता है कि शब्दों और विभक्तियों से मिलकर ही पदों का निर्माण होता है।

पदगत औचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण

आचार्य क्षेमेन्द्र ने पदगत औचित्य को अपने ग्रन्थ 'औचित्यविचारचर्चा' में इस प्रकार परिभाषित किया है–

"काव्य में किसी विशेष पद का उचित प्रयोग उसे इसी प्रकार शोभित कर देता है जिस प्रकार चन्द्रमुखी युवती के मस्तक को कस्तूरी तथा श्यामा के मस्तक को चन्दन का तिलक अपूर्व मनोहरता का संचार करता है।[3]

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण :

आचार्य क्षेमेन्द्र ने पदगत औचित्य को कवि परिमल के निम्न उद्धरण के माध्यम से स्पष्ट किया है–

मग्नानि द्विषतां कुलानि समरे त्वत्खड्गधाराकुले,
नाथास्मिन्निति वन्दिवाचि बहुशो देव श्रुतायां पुरा ।
मुग्धा गुर्जरभूमिपालमहिषी प्रत्याशया पाथसः
कान्तारे चकिता विमुञ्चति मुहुः पत्युः कृपाणे दृशौ।।[4]

"हे राजन! अनेक बार कैदियों के मुख से सुन चुकी हूँ कि रणक्षेत्र में आपकी तलवार की धारा के जल से शत्रुओं के समूह के समूह निमग्न हो गये। गुर्जर देश के राजा की मुग्धा रानी जंगल में जल की आशा से अपने पति की तलवार की ओर देख रही है।

गुर्जन नरेश की रानी इतनी भोली है कि उसे यह भी पता नहीं कि जिस तलवार की धारा में शत्रु समूह डूबता है उससे व्यक्ति की प्यास नहीं बुझाई जा सकती। यहाँ भोली के अर्थ में प्रयुक्त 'मुग्धा' पद समस्त सूक्ति को ही अद्‌भुत चमत्कार से मण्डित कर रहा है। 'मुग्धा' पद के प्रयोग से वस्तुतः कविता प्राणवती हो उठी है। इसका अनुभव सहृदय अनायास ही करते हैं।

प्रत्युदाहरण – पदगत अनौचित्य के संदर्भ में आचार्य क्षेमेन्द्र ने धर्मकीर्ति का यह श्लोक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है–

---

[1] सुप्तिङन्तं पदम् (अष्टाध्यायी) 1/4/4
[2] चत्वारि पद जातानि नामाख्याते उपसर्ग निपाताश्च (निरूक्त) यास्क रचित प्रथम अध्याय
[3] तिलकं बिभ्रती सूक्तिर्भात्येकमुचितं पदम् ।
चन्द्राननेव कस्तूरीकृतं श्यामेव चान्दनम् ।। औचित्यविचारचर्चा–(कारिका 11)
[4] औचित्यविचारचर्चा पृ0 15

लावण्यद्रविणव्ययो न गणितः क्लेशो महान्स्वीकृतः,
स्वच्छन्दस्य सुखं जनस्य वसतश्चिन्ताज्वरो निमितः।
कोऽर्थश्चेतसि वेधसा विनिहितस्तन्व्या स्तनुं तन्वता,
एषापि स्वयमेव तुल्यरमणाभावाद्वराकी हता,।। [5]

"विधाता ने इस 'तन्वी' की शरीर लता का निर्माण करते समय मन में क्या सोचा था पता नहीं, क्योंकि इसके शरीर के सौन्दर्य को बनाने में सौन्दर्य का जो अपार व्यय हुआ उसकी उन्होंने परवाह ही नहीं की। इससे भी अधिक उन्होंने इसके सौन्दर्य के निर्माण में बहुत परिश्रम किया। इस प्रकार उन्होंने अपनी हानि तो की ही साथ ही साथ जो पुरुष स्वच्छन्द सुखमय जीवन करते थे उनके लिए चिन्ता रूपी व्याधि की रचना कर डाली (क्योंकि) इसके सौन्दर्य को देखकर कोई भी निश्चिन्त नहीं रह सकता। उसका ह्रदय उस कामिनी की प्राप्ति की चिन्ता में सर्वदा जलता रहेगा। इसी प्रकार वह बेचारी भी अपने समान पति को न पाकर दुःखी है। पता नहीं विधाता ने उसके समान पुरुष की रचना न कर उस तन्वी की किस प्रयोजनार्थ रचना की है।"

उपर्युक्त उदाहरण में 'तन्वी' (तन्वयाः) शब्द का प्रयोग केवल तकारानुप्रास की दृष्टि से किया है। 'तन्वी' शब्द से अर्थौचित्य का चमत्कार नहीं हो रहा है। यदि तन्वी (तन्वयाः) के स्थान पर सुन्दरी (सुन्दर्याः) पद का प्रयोग होता तो प्रसंग के अनुरूप होता, क्योंकि 'तन्वी' पद का प्रयोग विरह में झुलसती हुई रमणी जनों के लिए प्रयुक्त होता है। क्योंकि तनुता वियोग का स्वाभाविक परिणाम है। आचार्य क्षेमेन्द्र 'तन्वी' शब्द के समान अर्थ बोधक 'कृशांगी' पद का प्रयोग अर्थ की दृष्टि से औचित्यपूर्ण मानते हैं।

भुशुण्डि रामायण में पदगत औचित्य :

भुशुण्डि रामायण में यथास्थान पदों का उचित प्रयोग दर्शनीय होता है। प्रस्तुत कतिपय उद्धरणों के माध्यम से हम भुशुण्डि रामायण में पदगत औचित्य पर एक सूक्ष्म दृष्टि डालते हैं –

परममधुरशीलः प्रावृषेण्याभ्रनीलः सकलसुखदलीलः कृत्तहृच्छोककील ।
त्रिभुवनशुभवेशः कोटिकल्याणदेशः कुटिलमसृणकेशः पातुमास्वल्कुलेशः।।
सलिलनिधि गम्भीरः सर्वलोकैकवीरः स्थिरतरमतिधीरः सूर्यवंशैकहीरः ।
सुरभियशउशीरः स्वर्णवर्णाच्छीरः श्रितविपिन कुटीरः पातु नो रामवीरः ।।[6]

ब्रह्मा द्वारा राम की स्तुति वर्णन में प्रयुक्त सभी पद राम के गुणों की विशिष्टता को दर्शा रहे हैं। जिसमें **'सलिलनिधिगम्भीरः'** पद का प्रयोग अत्यन्त ही सारगर्भित है। जिस प्रकार सागर की अगाधता एवं असीमता, अतर्म्य एवं अकाट्य होते हुए भी अपनी सीमा का कभी भी उल्लंघन नहीं करता है, उसी प्रकार भगवान राम की करूणा असमान्य एवं अलौकिक है। वह भी सागर की भाँति गम्भीरता को

---

[5] औचित्यविचारचर्चा पृ0 17

[6] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड ,अध्याय 1/5, 6

धारण किये हैं। इनकी करूणा के प्रवाह में सत्–असत्, द्वेष–विषाद आदि द्वन्द विशुद्ध भाव को प्राप्त हो जाते हैं। जिस प्रकार गंगा में समाहित समस्त धारायें अपनी मलिनता त्याग कर निर्मल हो जाती हैं और पारस पत्थर को स्पर्श कर लोहा भी विशुद्ध सोना बन जाता है। उसी प्रकार प्रभु के गम्भीर हृदय में व्याप्त करूणा से सभी प्रकार के मलिन भाव भक्ति में परिणित हो जाते हैं। अपने गम्भीर स्वभाव के फलस्वरूप ही राम अपने राज्य सुख का परित्याग कर वन के लिए प्रस्थान करते हैं। यह उनके गम्भीर स्वभाव का ही परिणाम है कि रावण जैसे पापी को जिसने ब्राह्मणों, ऋषि मुनियों को सदैव कष्ट पहुँचाया उसको भी उन्होंने दुर्लभ गति प्रदान की। निश्चय ही महापुरुषों का स्वभाव ही उदार होता है। **मनोहि महनीयानां प्रेमहेतुर्न सन्निधः।**

उपर्युक्त उद्धरण में राम के लिए प्रयुक्त **'सलिलनिधिगम्भीरः'** पद का उचित प्रयोग दृष्टव्य होता है। जो राम के गुणों के अनुरूप उचित वर्णन से औचित्यता का बोध करा रहा है।

सुस्मयः सुस्मितमुखः कालियाहिफणानटः।
विभु विष हरो वत्सो वत्सासुर विनाशनः।।
वृष प्रथमनो वेत्ता मरीचिर्मुनिरंगिराः।
वसिष्ठो द्रोणपुत्रश्च द्रोणाचार्य रघूत्तमः ।
रघुवर्यो दुःखहन्ता वनधाम सश्रमः।।[7]

राम के लिए प्रयुक्त 'दुःखहन्ता' पद का उचित प्रयोग किया गया है। राम का जन्म ही प्राणियों के दुखों को दूर करने लिए हुआ। उन्होंने समय–समय पर अपने भक्तों के कष्टों को दूर करने के लिए अनेक अवतार लिए। उन्होंने रावण जैसे बलशाली राक्षस का वध कर सम्पूर्ण मानव जाति की रक्षा कर धर्म की स्थापना की।

निम्नलिखित उद्धरण में उस समय का वर्णन है जब राम भयानक पूतना राक्षसी का वध कर देते है। राजा दशरथ उनके इस कार्य से आश्चर्यचकित होकर इस प्रकार कहते हैं–

अहो इयं क्रूरमति र्निजैनसा,
मृता विधात्रैव परापकारिणी।
अस्मद्भगैरेव चिरं रघुप्रियो,
रामः सदा मोदमानः स्वलोके।।[8]

प्रस्तुत उद्धरण में राम के लिए 'मोदमानः' पद का उचित प्रयोग किया गया है।

[7] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 13 / 19, 81, 91
[8] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 17 / 45

राजा दशरथ सुमन्त्र के अकेले वन से वापस अयोध्या लौट आने पर अत्यन्त दुःखी होकर इस प्रकार कहते है– अरे अत्यन्त दुःख है कि तुम अकेले ही राम को साथ लिए बिना लौट आये हो। मेरा हृदय अत्यन्त दुखी हो रहा है। भवन में मुझे सर्वत्र अंधकार ही दिखाई पड़ रहा है। मेरे प्राणों से प्रिय राम कहाँ चले गए, अकेले निर्जन स्थान में भार्या के साथ और भाई लक्ष्मण के साथ कहाँ पर निवास करेंगे। शिरीष के पुष्प की तरह कोमल अंगों वाला मेरा पुत्र वन के दुर्लभ स्थानों में कैसे पैदल चलेगा और कहाँ पर निवास करेगा।

अहो कष्टं सुमन्त्र त्वा पश्याम्येकं गृहागतम्।
विना राममतो ननं दीर्यते हृदयं मम्।।
तापेन परिदह्येते चक्षुषी मे सुदुर्भगे।
अंधकारमय सर्वपश्यामि भवनत्रयम् ।।
क्व गतः प्राणदो रामः क्व चावासं करिष्यति ।
एकाकी भार्यया युक्तो भात्रा च लघुनान्वितः।।
कथंस्थास्यति मे वत्सः कानेन भृशदुर्गमे।
शिरीषसकुमाराङ्ग कथं पद्भ्यांचलिष्यति।।[9]

प्रस्तुत उद्धरण में **'शिरीष सुकुमार'** पद का अर्थ सारगर्भित है। राम के लिए प्रयुक्त 'शिरीषसुकुमाराङग्' का सम्यक् प्रयोग हुआ है। जिस प्रकार शिरीष का पुष्प कोमल होता है उसी प्रकार राम के अंग भी कोमल है। राम का शरीर 'शिरीष के पुष्प की तरह कोमल' यह पद समस्त वाक्यार्थ को विशेष रूप से प्रभावित करता हुआ सहृदय को अनायास ही अपनी ओर आर्कषित कर लेता है। जो पदौचित्य के उचित प्रयोग को दर्शा रहा है।

अधोवर्णित उद्धरण में पदगत औचित्य दर्शनीय है–

हे राम करूणासिन्धो रविवंश विवर्धन।
भवद्दर्शनवाञ्छानो वरीवर्ति सदा हृदि।।
क्व नो विहाय राजेन्द्र गमिष्यसि सहानुजः।
सदारः स्थाष्यसि श्रीमन् यत्र यत्र घनेवने।।
तत्र तत्रैवस्थास्यामस्तव पार्श्वं सुखावहम्।
अमुञ्चन्तः कथमपि वयं वृत्या यथा कया।।
एतत्ते वदनं सौम्य चन्द्रादपि सुशीतलम् ।
पश्यतां नः सदा भाविन्यमृतेनैव पारणा ।।[10]

राम की स्तुति करते हुए मुनि इस प्रकार कहते है। हे करूणासिन्धो सूर्य के वंश को बढ़ाने वाले आपके दर्शन की सभी इच्छा करते है। कौन नहीं जानता कि राम अपने अनुज (लक्ष्मण) के साथ सदाचार को स्थापित करने के लिए वन चले

[9] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 20/2, 3, 4, 5
[10] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड,अध्याय 124/2, 3

गए। उन्होंने वन में जहाँ–जहाँ निवास किया वहाँ–वहाँ उसी अवस्था में सुख प्रदान किया। उनका शरीर चन्द्रमा की शीतलता के समान सौम्य है।

प्रस्तुत उद्धरण में राम के लिए '**करूणासिन्धो**' पद का उचित प्रयोग किया गया है। जिस प्रकार सिन्धु की सीमा का कोई अन्त नही समुद्र तट पर खड़े होकर जितनी दूर तक दृष्टि जाती है वहाँ सर्वत्र तरंगों का आलोडन–विलोडन एवं जल की विस्तृत नीलिमा ही दिखाई पड़ती है। और जलराशि तटवर्तिनी सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए चारों ओर बिखर जाती हैं। उसी प्रकार करूणासिन्धु अपनी करूणा से प्राणियों के दुखों को बहा कर ले जाते है। उनकी करूणा समुद्र की तरंगों की भाँति चारों ओर चतुर्दिक होकर फैल जाती है। जिस पर सूर्य का अपने प्रकाश से सभी को प्रकाशित करता है। उसकी दृष्टि से अच्छे बुरे का प्रश्न ही नहीं होता है। उसी प्रकार करूणासिन्धु की दृष्टि में अच्छे बुरे का प्रश्न ही नहीं रहता है। यह उनकी करुणा का ही प्रत्यक्ष उदाहरण है कि राज्य के अधिकारी होने के फलस्वरूप भी कुल की मर्यादा के लिए वह वन को जाना स्वीकार करते हैं। उनका भक्त कैसा भी हो उस पर सदैव अपनी करूणा बर्षाते है। भक्तों के दुखों के निवारण के लिए वे वैसा ही रूप धारण करते है। रावण जैसे बलशाली अत्याचारी को मारने के लिए मनुष्य के रूप में जन्म लिया और सर्वत्र अपनी करूणा दर्शा कर जीवों को सुख प्रदान किया। प्रस्तुत उद्धरण में पदगतौचित्य दर्शनीय है।

राम सीता के वियोग में दुःखी होकर इस प्रकार कहते हैं –

अये मरुत्सखे तत्र गच्छ यत्रास्त्रि मैथिली।
स्फुटं कथय तस्यें त्वं मद्दशां निखिलामपि।
अथ तस्या दशां मित्र कृत्स्नां मम निवेदय।
नास्य त्वदुपकारस्य निष्कृतिर्मम विद्यते।।[11]

प्रस्तुत उद्धरण में 'निष्कृति' पद का उचित प्रयोग किया गया है, राम कहते हैं अरे मरुत्सखे वह जाओ जहाँ मेरी सीता है, उनसे तुम मेरी इस दशा को कहो। हे मित्र मेरे निवेदन को स्वीकार कर आज उनकी दशा मुझे बताओ। तुम्हारा यह उपकार मैं कभी नहीं भूलूँगा।

वानरराज सुग्रीव वन में प्राप्त हुये आभूषणों को राम को दिखाते है उन्हें देखकर राम अत्यन्त दुःखी हो जाते है।

तेषां दर्शन मात्रेण मुमोह रघुपुङ्गवा।
चिरं मूर्छामुपगतो दीप्ते विश्लेषपावके।।
चिराद्ददृशौ समुन्मील्य विललाप सुदुःखितः।
गलद्बष्प जल स्त्रोतः सिक्तादिशिखरावनिः।।[12]

---

[11] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 176/4, 30
[12] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 176/9–10

यहाँ 'विललाप' पद का प्रयोग अत्यन्त उचितपूर्ण है। **'विललाप'** पद से राम की दशा का वर्णन किया गया है। राम के कथन की तर्कहीनता, उद्वेलता अवश्य सीमाओं को लाँघते उद्‌गारों का सम्यक प्रस्तुत कर रहा है। विलाप व्यक्ति की मानसिक उद्विग्नता का परिचायक है। मानसिक उद्विग्नता में मनुष्य कुछ भी कर सकता है। तभी तो राम सीता के आभूषणों को देखकर इतने दुःखी हो जाते हैं कि वे अचेतन आभूषणों में चेतना का संचार कर देते है। राम अचेतन आभूषणों से ही इस प्रकार कहने लगते हैं।

हा कङ्कण त्वमसि तद्‌भुजवल्लिसङ्गात्सौरव्यप्रदादहमिवाद्‌भूत भागधेयः।
दौर्भाग्यमेतदधुना किमु सम्प्रयुक्तं केनावलौलुठ सियद्रजसा परीतः।।
हा मेखले तनुलतामवलम्ब्य तस्यास्तान्युद्धतानि कुरूषे सुरते रूतानि ।
तद्विप्रयोग विधुरा वत दैवयोगात्स्थानेऽधुना भजसि मौनमनून खेदा ।।
हा नुपूर क्वणितनिर्जितराजहंस न श्रावयस्यतिमृदुं किमिति ध्वनि तम् ।
प्रायस्त्वमव्यहमिवाधिधरो वियोगान्मौनेन यापयसि कालमशेषमेव।।
हा भूषणानि निखिलानि विदेहजाया या तानि कामपिदशां स्ववियोगदुःखात्।
आत्मानमत्र वसनाञ्चलगाढबद्धमेवं विधाय नयथार्तिमरेणकालम्।।[13]

राम जो कि परमब्रह्म है जिन्होंने मनुष्य अवतार लिया। मनुष्य अवतार के कारण ही मानवीय क्रियायें की। उनकी इस मानवीय लीला में प्रयुक्त विललाप पद का उचित प्रयोग किया गया है। वे देवी सीता के विरह में इतने दुखी हो जाते हैं कि उनके आभूषणों को भी चेतन समझ लेते हैं।

इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि भुशुण्डि रामायण में कवि ने पदों का यथास्थान उचित प्रयोग किया है। जो पदौचित्य की दृष्टि से सर्वथा अनुकूल है।

(ख) वाक्यगत औचित्य –

हम अपने विचारों का आदान–प्रदान भाषा के माध्यम से करते हैं। भाषा के माध्यम से जिन विचारों को हम व्यक्त करते है, वे ही वाक्य का रूप बन जाते हैं। वाक्य के अन्तर्गत हम भाषा के संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया आदि को व्यवस्थित रूप में प्रयोग करते हैं। तर्क भाषा संग्रह के अनुसार कई पद मिलकर एक वाक्य बनता है।[14] वाक्य निर्माण कार्य हेतु क्रिया की आवश्यकता तो अवश्य होती है, क्योंकि कभी–कभी ऐसा उदाहरण भी मिलता है जिसमें क्रिया होती ही नहीं है।

साहित्य दर्पणकार का अभिमत है कि – **योग्यता, आकांक्षा एवं आसत्ति** से युक्त पदों का समूह वाक्य कहलाता है।[15] वाक्य में यदि साहित्यदर्पणकार के बताये गए तीनों गुण नहीं हैं तो फिर वाक्य का कोई औचित्य ही नहीं होता है। अतः पद समूहों के साथ–साथ योग्यता, आकांक्षा एवं आसत्ति वाक्य रचना के लिए आवश्यक

---

[13] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 178 / 16, 17, 23, 25
[14] तर्कभाषा शब्द निरूपण पृ0 87
[15] वाक्यंस्याद् योग्यताकांक्षासत्ति युक्तः पदोच्चयः (साहित्यदर्पण, द्वितीय आनन)

होते हैं। वाक्य के विषय में यहाँ कुछ अन्य वैयाकरणिकों एवं विद्वानों के मतों की अभिव्यक्ति करना भी सर्वथा उचित होगा।

आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में वाक्य के विषय में लिखा है कि **"पदसमूहों वाक्यमर्थ परिसमाप्तौं।"**[16] वाक्य के विषय में कौशिकाकार का भी यही मत है कि **"एकार्थः पदसमूहोवाक्यम्"**।[17]

वाक्यौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण :

आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार "जिस प्रकार दान से सम्पत्ति तथा दयादि गुणों से युक्त एवं विद्या से अलंकृत सज्जन उत्कृष्ट होते हैं, उसी प्रकार उचित वाक्य की रचना से काव्य उत्कृष्टता को प्राप्त करता है।"[18]

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण :

आचार्य क्षेमेन्द्र ने वाक्यगत औचित्य को स्वरचित 'विनयवल्ली' नामक ग्रन्थ से प्रस्तुत निम्न उद्धरण के माध्यम से स्पष्ट किया है–

देवो दयावान्विजयो जितात्मा यमौ मनः संयम माननीयौ,
इति ब्रुवाणः स्वभुजं प्रमार्ष्टि यः कीचका कालिका कालदण्डम्।
धीरः सः किर्मीरजटासुरारिः कुबेरशौर्य प्रशमोपदेष्टा,
दृष्टो हिडिम्बादयतिः कुरूणां पर्यन्त रेखागणनाकृतान्तः।।[19]

"धर्मराज युधिष्ठिर अत्यन्त दयालु है, अर्जुन बलशाली होते हुए भी जितेन्द्रिय है एवं नकुल तथा सहदेव सात्विक स्वभाव के हैं। भीम इस प्रकार कहते हुए अचानक ही कीचक का वध करने को उद्यत हो गये। कुबेर को शान्त करने वाला किमीर तथा जटासुर का नाश करने वाले, कौरवों को वंश के शत्रु हिडिम्बापति अपने वास्तविक रूप में विद्यमान हो गये।"यहाँ पर भीम के स्वभाव के अनुकूल कीचक, कालिक, कालदंड, हिडिम्बादपति आदि पदों की योजना से रौद्ररस की भावानुभूति होने पर सहृदयों को आनन्द का अनुभव होता है। अतः पदों का सार्थक प्रयोग हुआ है। वाक्यौचित्य की दृष्टि से यह पद सर्वथा अनुकूल है।

प्रत्युदाहरण : वाक्यगत अनौचित्य के संदर्भ में आचार्य क्षेमेन्द ने कवि राजशेखर का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है–

नाले शौर्य महोत्पलस्य विपुले सेतौ समिद्वारिधेः,
शाश्वत्खड्गभुजङ्गचन्दनतरौ क्रीडापधाने श्रियः ।
आलाने जयकुञ्जस्य सद्दशां कन्दर्पदर्पे परः,
श्री दुर्योधनदोष्णि विक्रमपरे लीनं जगन्नन्दतु ।।[20]

---

[16] कौटिल्य अर्थशास्त्र पृ0 179 (त्रिवेन्द्रम संस्करण)
[17] कौशिका 8/1/8
[18] औचित्य रचितं वाक्यं सततं संमतं सताम् ।
त्यागोदग्रमिवैश्वर्यं शीलोज्जवलमिव श्रुतम् ।। औचित्यविचारचर्चा, कारिका – 12
[19] औचित्यविचारचर्चा, पृ0 22

"वीरता कमलिनी के नालदण्ड के स्वरूप युद्ध के सागर का सेतुरूप, तलवार रूपी भुजंग के लिए चन्दन के वृक्ष के समान, लक्ष्मी के लिए आरामदायक तकिया के समान, विजय रूप हाथी के आलान के समान, सुनयनाओं के लिए कामदेव के अश्वर्व गर्व के समान, पराक्रम से युक्त विक्रमशाली दुर्योधन की छत्र छाया में यह संसार सदैव प्रसन्नता को प्राप्त हो।"[20]

प्रस्तुत उद्धरण में दुर्योधन के विक्रमशाली भुजदण्ड के जितने भी विशेषण है उनमें दो को छोड़कर सभी अनुपयुक्त है। शत्रुओं के लिए अत्यन्त कठोर वीरता के सम्पादन सुभट के लिए असमुचित कमलनाल की उपमा देने से सम्पूर्ण वाक्य ही उपहास्यास्पद सा रचित होता है। अतएव यह अनौचित्य पूर्ण है।

भुशुण्डि रामायण में वाक्यगत औचित्य :

भुशुण्डि रामायण में वाक्यों का यथा स्थान उचित प्रयोग दर्शनीय है। हम यहाँ अधोवर्णित कतिपय उद्धरणों के माध्यम से भुशुण्डि रामायण में वाक्यौचित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालते हैं –

सीता के सौन्दर्य वर्णन की प्रस्तुति में वाक्यगत औचित्य दर्शनीय है। सीता के सौन्दर्य को देखकर राम मुग्ध हो जाते है। और इस प्रकार कहते हैं–

एषा विमानादवरूहय याति विद्याधरी चापि सुरी नरी वा ।
सौदामिनी वा रति कामिनी वा शची रमा वा हिमशैलजा वा।।
न मे प्रयात्य मनोरथान्तर्वधिष्णुभिर्निः प्रतिमैर्महोभिः ।
जाने ममानङ्गजतापहारिण पीयूषधारेयमहो भविष्यति ।।[21]

कवि ने सीता के लिए सौदामिनी (बिजली के समान) रति कामिनी (आनन्द प्रदान करने वाली) हिमशैलजा (पर्वत राज हिमालय की पुत्री) आदि पदों का सार्थक प्रयोग किया है। पूरा वाक्यार्थ पीयूषधारेयमहोभविष्यति (अमृत के समान मेरे द्वारा कब धारण किया जायेगा) से चमत्कृत हो रहा है। यहाँ प्रयुक्त पद वाक्य की सुन्दरता को तो बढ़ा ही रहा है साथ ही साथ भाव की अनुरूपता को धारण कर रहे हैं।

देवी सीता के कथन में भी वाक्यौचित्य का उचित प्रयोग द्रष्टव्य होता है। सीता राम के साथ वनवास जाने का निश्चय करती है। राम उन्हें वन में आने वाली कठिनाइयों से अवगत कराते है और घर पर ही निवास करने को कहते है। परन्तु सीता उनसे कहती हैं कि मेरे लिए घर, मित्र, भाई–बन्धु सब कुछ वहीं वन में ही है। पत्तों से निर्मित कुटी में रह लूंगी। इस मन्दिर रूपी घर को स्मरण नहीं करूँगी।

किं मे ग्रहेण किं सौख्यः किं धनेन च बन्धुभिः।
यस्मै प्रियं तत्सकलं सद् व्रजति काननम् ।।

---

[20] औचित्यविचारचर्चा, पृ0 26
[21] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 74/4–5

लौकिकैर्वैदिकैश्चापि विधिभिर्यत्करेकृता।
तस्य सार्थे वनं यान्त्याः शोभामे किमतः परम्।।
पर्णशालाः शुभास्तास्ततरू पल्लवनिर्मिताः।
काननेष्वधितिष्ठन्ती न स्मरिष्यामि मन्दिरं।।[22]

प्रस्तुत उद्धरण में वाक्यगत औचित्य का पूर्णतयः निर्वाह हुआ है। योग्यता, आकांक्षा एवं आसक्ति के प्रयोग से वाक्य रचना सहृदय को शीघ्र ही आकर्षित कर रही है। सीता जी ने अपने जीवन में कठोर परीक्षाएँ देकर स्त्री जाँति के यह सिद्ध कर दिखाया कि जो स्त्री आपत्तिकाल में धर्म का पालन करेगी वह सदा परमानन्द में मग्न रहेगी। उनकी कीर्ति सदा के लिए अमर हो जायेगी। यहाँ सीता के द्वारा प्रयुक्त वाक्यों की प्रस्तुति औचित्य पूर्ण है।

सत्य है हमारी भारतीय संस्कृति में पत्नी के लिए उसका पति ही सर्वोपरि होता है। वह उसी का अनुकरण करती है, पति चाहे जिस अवस्था में रहे। कवि ने इस प्रकार के सुन्दर वाक्यों को प्रस्तुत कर औचित्य का उचित निर्वाह किया है।

कवि ने देवी सीता के गुणों के वर्णन में यथा स्थान कहीं--कहीं जो छोटे--बड़े वाक्यों का प्रयोग किया है वह सीता के सौन्दर्य की श्री वृद्धि तो कर ही रहे है साथ ही साथ वाक्यों के उचित प्रयोग को दर्शा रहे है। प्रस्तुत उद्धरण द्रष्टव्य है--

"चन्चलापांग संक्षोभित कोटिकन्दर्पकामिनी हृदये कोटिब्रह्माण्ड कमला समुच्चय विग्रहे मन्दस्मितमात्रनिरस्त विरहशोके हा भागिनी हा चण्डि हात्यन्त कोपनेहातिशयदुशाध्य शीले भूलीलादिविविधा कारावान्तरावतारातिं निमग्न क्वासि क्वासीति ऊँ ऊँ ऊँ ऊँ आनन्द वल्लिके क्वासि क्वासीति जगौ।।"[23]

राम की स्तुति वर्णन में भी वाक्यौचित्य दर्शनीय है।

त्वमेव परमं ब्रह्म सदसत्यपरमव्ययम् ।
प्रकृते परमो दिव्यः पुरुषश्च ततः परम्।।
अक्षरं ब्रह्म यत्पूर्ण तत्तेधाम परं पदम्।
ततोऽपि परमः पूर्णस्त्वमेव पुरुषोत्तमः ।।[24]

कवि के द्वारा राम की स्तुति वर्णन में प्रयुक्त पदों का उचित प्रयोग किया है जो वाक्यौचित्य की दृष्टि से सर्वथा अनुकूल है। श्रीमद् भगवद्गीता में कृष्ण के स्तुतिपरक गीत में राम के समान ही वाक्य की सुन्दर छटा दर्शनीय है।

त्वमादिदेवः पुरुषपुराणः, स्त्वमस्यविश्वस्य परमंनिधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूपम् ।।[25]

---

[22] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 9/105, 107, 111
[23] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 27/20
[24] भुशुण्डि रामायण उत्तरखण्ड, अध्याय 23/1, 2
[25] श्रीमद्भगवद्गीता -- श्लोक 38

सीता की इन्द्र द्वारा स्तुति वर्णन में वाक्यौचित्य की छटा दर्शनीय हो रही है।

त्वं जानकी जनकस्यालयेऽघ त्वं श्रीः परा सहजा त्वं कलेश्वरी।
स्वयोगशक्या बहुधा त्वं विभासि त्वया सनाथा वयमद्धा समस्ताः।।[26]
त्वं कालरूपा त्वमसि श्रीः सुधा त्वं माता पिता जगतस्त्वं हितेषु।
लीलावतारैर्जयसि क्रीडसि त्वं नानास्वरूपैः सह पत्या रमेत ।।[27]

कवि ने सीता के स्तुति वर्णन में प्रयुक्त सम्पूर्ण विशेषताओं को एक ही वाक्य में सुन्दर रूप से वर्णित किया है। सीता के लिए प्रयुक्त पदों के उचित रूप में वर्णन के कारण यह उद्धरण वाक्यौचित्य की दृष्टि से सर्वथा अनुकूल है।

सामान्य एवं विशिष्ट भाषा के प्रयोग में भी पदों के उचित प्रयोग से पूरा वाक्यार्थ ही चमत्कृत हो रहा है। जो वाक्य के सौन्दर्य की श्री वृद्धि तो कर ही रहे है साथ ही साथ सह्रदयों को आनन्दित भी कर रहे है।

नमामि ते राम पदारविन्दं,
भक्त्या लभ्यं भक्तिहीनैरचिन्त्यम्।
स्वरूपशक्त्यैवमुदंवितन्वन्,
वक्रीडमानो जयसे सुरान् रणे।।
ममापराधस्तववत्सहुर्तः,
क्षन्तव्य एषोऽतितरां रमेशः।
अज्ञानतोबालकस्यपराधं,
यथैव माता क्षमते मिट्पुरीषम्।।[28]

हे राम आपके चरण कमलों को नमस्कार करता हूँ। मेरे अपराधों को अज्ञान बालक का अपराध समझ कर उसी प्रकार क्षमा करें, जिस प्रकार माता अपने पुत्र को मूल विर्सजन करने पर भी क्षमा कर देती है। कवि ने सरल वाक्य रचना में सामान्य भाषा का प्रयोग किया है।

विशिष्ट वाक्य रचना भी पदों के उचित एवं पदों के विशिष्ट प्रयोग को दर्शा रही है।

सर्वैलोकेः सर्वभावेन नित्यम्।
सर्वस्येशः सर्वदेवैक भाव्यः।
सर्वाकारः सर्वसर्वश्चसर्वाः।।[29]

जो सब संसार में सभी कार्यो का कारण है। सभी में व्याप्त है। उनकी इस प्रकार वंदना में प्रयुक्त पदों के विशिष्ट प्रयोग उसकी सुन्दरता को बढ़ा रहे है। जो वाक्यौचित्य की दृष्टि से सर्वथा अनुकूल है।

[26] भुशुण्डि रामायण पश्चिमखण्ड, अध्याय 20/23
[27] भुशुण्डि रामायण पश्चिमखण्ड,अध्याय 20/13
[28] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 21/42
[29] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 20/45

निम्नलिखित प्रसंग में प्रयुक्त वाक्यों द्वारा हृदय के गम्भीर भाव प्रकाशित हो रहे है जो वाक्यौचित्य की दृष्टि में सर्वथा उचित होने के साथ ही साथ सहृदयों को भी प्रभावित करने में सक्षम है।

कः आश्रमोऽस्यजगतः किं निमित्तं तथा प्रभो,
किं सारमत्र वेद्यं च बहुवल्गिनि चागमे।
भवतः संमतं किं च लोकेशस्य विधेर्वद।।
क आदौ विनियोक्ता च कः स्वमावोऽस्य संततम्।
किं स्वरूपं क आकारो ब्रह्मापि वद कीदृशम्।।
कीदृशं तस्य संस्थानं किं स्थानं परमं पदम्।
सगुणं निर्गुणं चापि ध्येयं ज्ञेयं च कीदृशम् ।।[30]

देवताओं के द्वारा इस प्रकार विश्व पितामह ब्रह्मा जी से जिज्ञासा निवृत्ति हेतु प्रश्न वर्णन करना कि इस संसार का निमित्त और आश्रय क्या है, इसका स्वभाव कैसा है, स्वरूप कैसा है, आकार कैसा है, उसका निवास स्थान क्या है, वह मनुष्य है अथवा निर्गुण। इस प्रकार के प्रश्नों में हृदय के गम्भीर भावों की उचित रूप में प्रस्तुति हुई है। जो वाक्यौचित्य के उचित प्रयोग को व्यक्त कर रही है। जिससे सहृदय प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते।

भरत द्वारा कथित वाक्यों में भी वाक्यौचित्य की सुन्दर छटा द्रष्टव्य हो रही है। राम वनगमन से दुःखी भरत कहते है कि–

किं मे राज्येन किं भोगैः किं प्राणै किं पुनरस्त्वया।
प्रवासिते वनं रामे ताते लयगतेऽधुना।।
सर्व मे दुःसहं लोके जीवितुं चापि नोत्सहे।
पापं कृतवतीमेव त्वामहं हन्मि निश्चितम्।।[31]
स्मारं स्मारं रामचन्द्रं प्रोषित मातृ कर्मणा ।
भूयोऽपि विललापासौ भरतो भ्रातृवत्सलः।।
निःश्वस्य दुःखीसंवीतो रूदित्वा च चिरं तदा।।[32]

इस प्रकार दुखी होकर भरत शत्रुघन से कहते है–

यथा मे नाशिता कीर्तिरार्यदास्य समुद्भवा ।
किं करोमि क्व गच्छामि दुःखपारं न दृश्यते।।[33]

यहाँ भरत के हृदय की निष्कुलषता, क्षोभ, ग्लानि, दुःख, पवित्रता आदि के वर्णन से सम्पूर्ण वाक्य में औचित्य दर्शनीय हो रहा है। दशरथ के मरण को तथा राम के वनगमन को भरत अपने को ही सब अनर्थो का मूल मानते है। बहुधा देखा जाता है कि व्यक्ति को जब अकारण किसी कार्य का दोषी माना जाता है तो वह अपने को निर्दोष साबित करने के लिए अनेक प्रमाणों का सहारा लेता है। यहाँ पर

[30] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 2/7
[31] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 27/40, 41
[32] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 28/2, 3
[33] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 30/6, 7

यही मनोदशा भरत की है पाठक भरत की निष्कुलषता तथा ह्रदय की सराहना करता है। भरत की राम के प्रति प्रेम से सम्पूर्ण वाक्यार्थ चमत्कृत हो उठता है।

वस्तुतः हमें ज्ञात होता है कि भुशुण्डि रामायण में वाक्य विन्यास का व्यवहारिक एवं समुचित प्रयोग हुआ है। कवि ने यथा स्थान वाक्यों का उचित प्रयोग किया है। कोमल पदावली के माध्यम से उसे अपने वाक्य विन्यास कला में सर्वत्र सफलता प्राप्त हुयी है। उसका वाक्य विन्यास प्रयोग अत्यन्त ही उत्कृष्ट है। जो निश्चय ही काव्य में वाक्यौचित्य के उचित प्रयोग का बोध करा रही हैं।

(ग) प्रबन्धगत औचित्य

भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्यो ने प्रबन्ध काव्य के विषय में अपने–अपने विचारों को विविध प्रकार से व्यक्त किया है। जैसे–जैसे काव्य की रचना की गयी, प्रबन्ध काव्य के लक्षण बढ़ते गये। सभी के विचारों को यदि एक सूत्र में पिरो कर देखा जाये तो प्रबन्ध काव्य की कतिपय निम्नलिखित विशेषतायें हमें प्राप्त होती हैं–

यथा प्रबन्ध काव्य कथा का क्रम निर्बाध रूप से चलता रहता है। उसमें मूल कथा के साथ–साथ प्रासंगिक कथायें भी सम्बद्ध रहती है। प्रबन्ध काव्य में जीवन का समग्र चित्रण रहता है तथा उसका फलक व्यापक और विस्तृत रहता है। प्रबन्ध काव्य में कथानक घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं होती है। यह सर्गो अध्यायों में उपनिबध होता है। इसकी रचना महान उद्देश्यों को लेकर की जाती है और इसमें विषय प्रधान होता है। प्रबन्ध काव्य में वन, पर्वत, नदी, सूर्य, चन्द्रमा, दिन, रात, ऊषा, मध्याह्न, पर्वत, वन समुद्र, संयोग–वियोग, मुनि, यज्ञ, विवाह, स्वर्ग आदि का भी वर्णन होता है। इसकी कथा ऐतिहासिक तथा किसी लोक प्रसिद्ध व्यक्ति से सम्बन्धित होती है। इसका नामकरण चरित्र नायक के नाम पर या कवि के नाम पर होता है। सर्ग की वर्णनीय कथा के आधार पर भी नामकरण रखा जाता है। भारतीय काव्य साहित्य में प्रबन्ध काव्य की कथा को लोकग्रहीत सुविख्यात, इतिहासोद्भूत होने पर जोर दिया गया।

कवि अपनी तीक्ष्ण प्रतिभा द्वारा ऐसे अर्थ की कल्पना करें जिससे समस्त प्रबन्धार्थ अप्यायित हो जाये सारा काव्यार्थ उससे प्रभावित हो। एक विशेष चमत्कार आभासित हो प्रबन्धगत औचित्य कहलाता है। मानव का व्यक्तित्त्व अनेक गुणों से युक्त रहता है और उन गुणों से प्रकाशित होकर वह व्यक्तित्त्व प्रभावशाली बनता है। उस प्रभाव के वैभव से मानव सत्पुरुष की संज्ञा प्राप्त कर समाज में सुशोभित होता है। इसी प्रकार प्रबन्ध के अन्तर्गत कुछ विशेष अर्थ उचित रूप से उपनिबद्ध होकर समस्त प्रबन्धार्थ को सुशोभित कर देता है, यही प्रबन्धार्थ का औचित्य है।

प्रबन्धौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण :

प्रबन्धौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने इस प्रकार परिभाषित किया है–

"जिस प्रकार दया, विनम्रता, धीरता, धैर्य आदि गुणों के वैशिष्ट्य से विभूषित ऐश्वर्य के द्वारा सज्जन पुरुष सुशोभित होते हैं उसी प्रकार यदि कोई विशेष अर्थ उचित रूप से उपनिबद्ध हो, तो उससे समस्त प्रबन्धार्थ शोभायमान हो उठता है।"[34]

आचार्य क्षेमेन्द्र ने कारिका की वृत्ति में इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है–

"काव्यों में कभी–कभी तीक्ष्ण प्रतिभा द्वारा ऐसे अर्थ की कल्पना की जाती है कि वह अमृत बरसाकर समस्त प्रबन्धार्थ को आप्यायित कर देता है। सारा काव्यार्थ उससे व्याप्त एवं प्रभावित होता है और एक विशेष चमत्कार आभासित होने लगता है।"[35]

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण :

आचार्य क्षेमेन्द्र ने प्रबन्धौचित्य के सम्बन्ध में दो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं–

प्रथम कालिदास के मेघदूत से जिसमें यक्ष ने मेघ के द्वारा, जो अचेतन है, सन्देश पहुँचाने की प्रार्थना की है। मेघ को एक प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न माना है। मेघ में इच्छा के अनुरूप शरीर धारण करने की शक्ति है। वह इन्द्र का प्रधान सेवक है। ऐसे श्रेष्ठ व्यक्ति से दूत बनने की याचना करना उपर्युक्त है, क्योंकि नीच व्यक्ति की अपेक्षा श्रेष्ठ व्यक्ति से की गयी याचना अच्छी है।

> **जातवंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां,**
> **जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषकामरूपं मघोनः।**
> **तेनार्थित्वं विधि परवशाद्दूरबन्धुर्मतोऽहं,**
> **याञ्चा मोघ वरमधि गुणेनाधमे लब्धकामा।।**[36]

इस उदाहरण में मुख्य बात यह है कि यहाँ अचेतन मे चेतनत्व का अध्यारोप किया गया है। प्रसिद्ध वंश तथा सेवक धर्म में दक्षता उसके दौत्यकर्म की समीचीनता सिद्ध कर समस्त प्रबन्धार्थ में कल्पित इतिव्रत को संगत तथा औचित्य की सीमा में समेट लेता है।

प्रत्युदाहरण : प्रबन्धगत अनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने महाकवि राजशेखर का निम्न उदाहरण प्रस्तुत किया है–

---

[34] उचितार्थ विशेषेण: प्रबन्धार्थ: प्रकाशते।
गुण प्रभावभव्येन विभवेनेव सज्जनः ।। औचित्यविचारचर्चा, कारिका 13

[35] औचित्यविचारचर्चा – आचार्य क्षेमेन्द्र, (पृ0 28)

[36] औचित्यविचारचर्चा, (कालिदास रचित मेघदूतम), पृ0 201

रावण : यत पार्वतीहठकचग्रहणप्रवीणे,
पाणौ स्थितं पुरभिदः शरदां सहस्त्रम्।
गीर्वाणसारकणनिर्मितगात्रमत्र,
तन्मैथिली क्रयधनं धनुराविरस्तु।।
जनक : आविरस्तु सममगर्भसम्भवया सीता।"

सीता के स्वयंवर में आया हुआ रावण इस प्रकार कह रहा है – "जो धनुष पार्वती के केशपाश से हठपूर्वक खेलने वाले भगवान शंकर के हाथ में सहस्त्रों वर्ष तक रहा चुका है; देवताओं के तेज से निर्मित है; सीता को प्राप्त करने का मूल्यभूत है, वह धनुष यहाँ प्रत्यक्ष हो।" जनक : अयोनिजा सीता के साथ वह प्रकट हो।

यहाँ 'सीता के साथ ही' शंकर जी का धनुष आविर्भूत हो। जनक के द्वारा जो कहा गया है उससे प्रतीत होता है कि उस मांसभक्षी को कन्या देना उन्हें अभीष्ट है। यह बात समझ में नहीं आती कि सुकोमल सीता, राक्षसराज रावण को कैसे दी सकती है? अतः इस कथन में इतिहास से पूर्णतया विपरीत स्थिति, जो अनौचित्य के रूप में प्रसिद्ध है, सहृदयों के हृदय से सहमति नहीं उपस्थित करती अर्थात् हृदय इस बात को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं हो पाता है।

भुशुण्डि रामायण में प्रबन्धगत औचित्य :

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत प्रबन्धगत औचित्य और अनौचित्य को प्रस्तुत करने के पश्चात् भुशुण्डि रामायण में प्रबन्धगत औचित्य पर अपनी विहंगम दृष्टि डालते हैं। भुशुण्डि रामायण में अनेक स्थलों पर प्रबन्धगत दृश्य दर्शनीय होते हैं। जहाँ पर औचित्य का पूर्णतयः निर्वाह हुआ है। रचयिता का यह कर्तव्य होता है कि वह ग्रन्थ की कथावस्तु में ऐसे मार्मिक प्रसंगों का वर्णन करे जिससे उसका पूरा प्रबन्ध ही औचित्य युक्त हो सके।

भुशुण्डि रामायण में अनेक स्थलों पर, राम वनगमन से लेकर सीता हरण तक अनेक वर्णन प्रबन्ध गत औचित्य से पूर्ण हैं। चाहे वह दशरथ का विलाप हो, भरत की आत्म ग्लानि, चित्रकूट में राम और भरत का मिलन, अनेक प्रसंगों का स्वाभाविक चित्रण किया है। उससे सम्पूर्ण प्रबन्ध प्रसंग की झांकी अत्यन्त ही मार्मिक एवं भावपूर्ण रूप से व्यंजित हुयी है। कुछ उद्धरणों के माध्यम से हम भुशुण्डि रामायण में प्रबन्धगत औचित्य को प्रस्तुत कर रहें हैं। सर्वप्रथम हम अचेतन में चेतन का अध्यारोप दिखाते हुए प्रबन्धौचित्य का दिग्दर्शन कराना चाहेंगे।

अचेतन पादुका में चेतना का अध्यारोप :

भुशुण्डि रामायण में पादुका राज्य संचालन वर्णन में अचेतन में चेतना का आरोप दिखाया गया है। जो कवि के उत्कृष्ट प्रबन्धौचित्य को दर्शा रहा है। भरत राम की पादुकायें शिरोधार्य कर पादुकाओं को राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित करते है।

---

36 औचित्यविचारचर्चा, पृ0 33

उन्हीं पादुकाओं से आज्ञा माँगकर भरत राज्य का संचालन करते है। भरत कहते है:-

> **ते अहं शिरसि न्यस्य कृतार्थो न्यवृतं ततः।**
> **करिष्यते महीराज्यं ते एव मम मूर्द्धगे।।**
> **सोऽहमार्याम्यनुज्ञातो गच्छामि किलकोसलाम्।**
> **गृहीत्वा पादुकायुग्ममार्यस्याखिलमंगलम् ।।**[30]

इस प्रकार भरत पादुकाओं को सिंहासन पर आरूढ़ करके स्वयं नन्दिग्राम में तपोमय जीवन व्यतीत करते है। और समस्त राज्य कार्य पादुकाओं के आदेश पर ही करते हैं। पादुकायें अचेतन होते हुए भी चेतन का कार्य कर रही हैं। पादुकाओं के शासनकाल में घटित तीन–चार घटनाओं से ऐसा प्रतीत होता है जैसे पादुकायें स्वयं चेतन बन कर कार्य कर रही हो। एक बार अतिवृष्टि से सारी प्रजा दुःखी होकर भरत के पास जाती है और उनसे कष्ट निवारण के लिए कहती है। भरत उनसे कहते है कि इस समय राम की पादुका का शासन है। इसलिए आप उन्हीं से प्रार्थना करें। प्रजावर्ग के द्वारा गलदश्रु स्तुति करने से मूसलाधार वृष्टि तत्काल ही रूक गयी। जिससे सभी प्रजाजन खुश हो उठे। पादुकाओं के द्वारा इस प्रकार अनेक प्रकार से सहायता करने से उसका प्रभाव एवं महिमा सब जगह प्रसिद्ध हो गयी। राम पादुकाओं के इस प्रभाव और महिमा को सुनकर रावण तथा बाणासुर ने उन्हें चुराने का निश्चय किया। इस उद्देश्य से दोनों एक दिन रात्रि में भरत के आश्रम आये और चुपके से पादुकाओं को उठा ले जाना चाहा। परन्तु वे पादुकाओं को उठा नहीं सके और लज्जित होकर, हार मानकर लंका वापस चले गये।[31]

इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि भुशुण्डि रामायण में अचेतन पादुकायें चेतन का कार्य कर रही है। वह शासक की भाँति सिंहासन पर विराजमान हैं। भरत उन पादुकाओं की पूजा कर उन्हीं से आदेश माँगकर राज्य का समस्त कार्य करते हैं। यहाँ भरत का भ्रातप्रेम आदर्श एवं उच्चकोटि का दर्शनीय होता है। प्रेम और निष्ठा के कारण उन्हें इन पादुकाओं में चेतन का बोध हो रहा है। जिससे समस्त इतिव्रत प्रबन्धौचित्य की परिधि में आ रही है। इस अनन्त काव्य जगत में कवि ही प्रजापति है। यह विश्व उसकी इच्छा के अनुरूप ही परिवर्तित होता है। कवि ही है जो अपने काव्य में अचेतन को चेतन के रूप में प्रस्तुत कर सकता है। कवि ने ग्रन्थ में अचेतन पादुका को चेतन रूप में प्रस्तुत किया है। वह उसकी श्रेष्ठ प्रबन्धौचित्य को ही व्यक्त कर रहा है।

चित्रकूट में राम, भरत मिलनः

चित्रकूट मे राम और भरत के मिलन का दृश्य अत्यन्त ही कारूणिक तथा अश्रु संचित है। इससे समस्त इतिव्रत ही चमत्कृत हो उठता है। भाई का विरह न सहने वाले भरत भाई राम को वापस अवध ले जाने हेतु प्रस्थान करते है। भाई का अटूट प्रेम उस समय दृष्टिगोचर हो उठता है। जब भरत जहाँ पर उनके भाई ने

---

[30] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 54/27, 28

[31] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 60/4, 5, 6, 7, 8

विश्राम किया को देखकर विलख उठते है। निश्चय ही भरत के हृदय में भ्रातृत्व प्रेम सागर की अथाह गहराई के समान था। भ्रात प्रेम के आगे वे राज्य छोड़कर चित्रकूट की राह लेते है। राम मिलन का यह दृश्य अत्यन्त ही कुशलता के साथ प्रस्तुत किया गया है। भरत जी के नेत्र में आँसू की अविकल धारा बह चलती है। जब वे सीता को वनवासिनी की तरह वल्कल धारण किये देखते है। वे अत्यन्त दुखी होकर इस प्रकार कहते है–

अहो क्वसा सभा नाथ प्रजामण्डल शोभिता।
क्वेयं वनमृगव्याप्ता पर्ण त्वयोषिता।।
क्व तानि दिव्य वांसासि महार्हाणि तव प्रभो।
क्वेमानि मृगचर्माणि वल्कलानि च भूरुहाम्।।
क्व तानि सुविचित्राणि माल्यानि सुरभीणि ते ।
क्वेमा जटा भस्मचिताः शिरसा वहसि स्फुट्म।।
क्व ते यज्ञोद्भवो धर्मो भूरिसौख्यकरःप्रभौ।
क्व चायं वनवासोत्थः शरीरक्लेशसंचयः।।
हा हन्त मन्निमित्तं ते दुःख मेतदुपस्थितम् ।
सुखसंवर्द्धितस्योच्चैः श्रीशालिनि पितुर्गृहे।।
धिङ्मां नृशंसया जातं मात्रातादृशकर्मणा।
तव प्रवासदं यस्य जीवनं लोकगर्हितम्।।[40]

भरत की इस स्थिति को देखकर सिद्ध और साधक लोग भी अनुराग से भर जाते है और उनका राम के प्रति प्रेम को देखकर सभी उनकी प्रशंसा करते हैं। यदि पृथ्वी पर भरत का जन्म न होता तो जड़ को चेतन और चेतन को जड़ कौन करता। इस मिलन का उद्देश्य राम, भरत के हृदय की स्थिति का मूल्यांकन कर पिता–पुत्र, भाई–भाई, पत्नी–पति आदि के हृदय में धैर्य, गम्भीरता और भावों के उत्कर्ष का सृजन करना है। परिवार और समाज को बीच प्राणियों में स्थित अन्तर्द्वन्द्व को दूर करने का कवि ने यही श्रेष्ठ माध्यम चुना।

पक्षीराज जटायु और रावण का प्रसंग वर्णन :

भुशुण्डि रामायण के दक्षिणखण्ड में पक्षीराज जटायु और रावण का प्रसंग वर्णन कवि की उत्कृष्ट प्रबन्ध कुशलता को दर्शा रहा है। रावण द्वारा हरण की जाती सीता का करूण रूदन सुनकर जटायु का हृदय करूणा से आर्द्र हो जाता है। वह रावण से युद्ध करने के लिए तैयार हो जाता है। वह रावण से इस प्रकार कहता है–

हे राक्षय साधमखल पापीयस्तीक्ष्णमानस।
हत्वा मम सुहृत्पुत्रवधू क्व खलु गच्छसि।।
मुञ्च मुञ्चावलामेनां परस्य ललनां सतीम् ।
इत्युक्ता तीक्षण या चञ्च्वा भृशं विव्याधराक्षसम्।।

---

[40] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 37 / 18, 19, 20, 21, 23, 24

हतश्चञ्चुप्रहारेण बज्रेणेन स राक्षसः ।
भृशमुद्विविजे तं च प्रजाहार स्वपाणिना।।[41]

वह अनेक प्रकार से रावण के कभी नेत्रों, तो कभी कानों में अपने चोंच के द्वारा प्रहार करता है। उनसे अनेक बार चोंच से प्रहार कर रावण को घायल कर दिया। इस प्रकार वह अनेक प्रकार से युद्ध करता हुआ रावण की तलवार से घायल हो जाता है फिर यथा संभव रावण से युद्ध करता है अन्त में पृथ्वी पर घायल होकर मरणासन्न अवस्था में गिर पड़ता है। राम, सीता की खोज करते हुए उस स्थान पर आते है और जटायु को मरणासन्न अवस्था में देखकर राम कहते हैं किसने तुम्हें पंखविहीन कर इस प्रकार मरणासन्न तक पहुचाया है। वह कहता है कि यह रावण द्वारा सीता हरण की जाती हुयी मेरे द्वारा उस बलवान से युद्ध से हुयी। राम उसको देखकर द्रवित होकर कहते है कि हे पिता हे पितृमित्र आप धन्य हो। तुम्हारा ऋण चुकाया नहीं जा सकता। हे पक्षीराज तुम्हें नमस्कार है। राम कहते है कि –

हा गृध्रराज सुकृतिन् क्व स राक्षस उत्कटः।
पक्षमात्रसहायश्चक्व त्वं जात्या विहंगमः।।
सत्वं तु भवतः श्लाघ्यं येन त्वं युद्धवांस्तथा।
अथो मम पितुर्मैत्र्या आनृण्यं गतवानसि।।
हा व्रणानि तवांगेषु तेन युद्धवतो द्विषा।
क्षरद्रुधिरपृक्तानि विलोक्यन्ते सहस्त्रशः।।
अहो बलमहो धैर्यमहो तव पराक्रमः।
अहो उपकृत स्तात तव स्वजनबन्धुषु।।
अहो निस्तारिता कृत्स्ना गृध्रजातिरापित्वया।
येषां कुले भवान् जातो धन्यास्ते पितरस्तवः।।[42]

इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि रचयिता ने मानव (राम) के साथ–साथ पक्षी में भी जो करूणा भाव को दर्शाया हैं उससे पूरा का पूरा प्रबन्ध ही चमत्कृत हो उठा है। सज्जनों का चित्त प्रायः अकारण ही अत्यधिक करूणा से आद्र हो उठता हैं। वे दूसरे को दुःख को अपना दुःख समझकर उसके निवारण के लिए सदैव प्रयत्नशील हो जाते हैं। उनका एकमात्र लक्ष्य उनका स्वभाव होता है कि दूसरों की भलाई हो सके। मानव अपने प्रयत्न से दया, करूणा और सहानुभूति की जो भावना प्रकट करता है। जिससे जीव मात्र का भला हो सके। जटायु पक्षीराज के हृदय में रचयिता ने करूणा भाव को दिखाया है। जिसने परिहित परोपकार के लिए अपने जीवन की भी चिन्ता नहीं की।

---

[41] भुशुण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड, अध्याय 156/2, 6
[42] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड ,अध्याय 161/16, 17, 18, 19, 20

इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि रचयिता ने अपनी अभिधाशक्ति के द्वारा इस प्रकार की इतिव्रत का जो प्रस्तुतीकरण किया है उससे सम्पूर्ण प्रबन्धकाव्य चमत्कृत हो रहा है। कवि के द्वारा वर्णित प्रस्तुत प्रसंग वर्णन से हमें ज्ञात होता है कि संसार में दो प्रकार की भावनायें होती है स्वार्थ और निस्वार्थ। स्वार्थ अपने निज कल्याण की भावना से संयुक्त होता है जबकि निस्वार्थ दूसरों के कल्याण की भावना से। हमारे देश में असंख्य महापुरुष ऐसे हैं जिन्होने दूसरों के कल्याण के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया। जहाँ एक ओर जटायु की निस्वार्थ भावना हमें द्रष्टव्य होती हैं। वहीं दूसरी ओर मर्यादा पुरुषोत्तम राम की उदारता भी द्रवित कर देती है। केवल मानव ही नहीं अपितु प्रकृति पशु–पक्षी भी निस्वार्थ भावना से प्रेरित है।

जीवन पथ पर चलने के दो रास्ते होते हैं सन्मार्ग, कुमार्ग। सन्मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को अपने जीवन में अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है किन्तु अन्ततः परिणाम अच्छा ही होता है। परन्तु कुमार्ग पर चलने वाले व्यक्ति का परिणाम विनाशकारी होता है। उसका सत्त्व, तेज, बल, साहस सब कुछ नष्ट हो जाता है। रावण जिसने अपने अतुलित बल से मनुष्य किन्नरों, गन्धर्वो, असुरों यहाँ तक कि देवताओं को भी अपने वश में कर लिया। वही दशासन जब सीता का हरण करने चला तो उसका समस्त तेज बल जाता रहा। उसका कुमार्ग की उसका विनाश का कारण बन गया। वस्तुतः असत्य पर सत्य की विजय होना भी इस ग्रन्थ के श्रेष्ठ प्रबन्धौचित्य को दर्शाता है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हमें ज्ञात होता है कि भुशुण्डि रामायण में कवि ने यथा स्थान प्रबन्धौचित्य को प्रस्तुत करने का पूरा प्रयास किया है। जिससे समस्त प्रबन्धार्थ सुशोभित होकर औचित्य से मण्डित होता प्रतीत हो रहा है।

(घ) गुणगत औचित्य :

मानव जिस मूल सत्ता का अंश है वह स्वयं सच्चिदानन्द है। सत, चित, आनन्द तीन गुणों का पुंजीभूत प्रकाश है। उसके तीन गुण ओऽम् के 'अ', 'उ', 'म' है। यही सत, रज, तम है। ज्ञान, कर्म तथा भक्ति में भी यही कार्य कर रहे हैं। साहित्य में सत्य, शिव और सुन्दर, ब्रह्म के तीन गुणों के अपर नाम है। पाश्चात्य साहित्य में इन्हीं को The Truth, The God, The Beautiful के नाम से जाना जाता है। ये तीनों गुण परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। कवि जब काव्य में गुणों का सन्निवेश कर समस्त मलावरणों से असम्प्रक्त रह कर काव्य रचना करता है, तो काव्य रचना में आनन्द रस बरस उठता है। आनन्द में समरसता है, सामंजस्य है जो औचित्य के ही दूसरे नाम हैं।

सहृदयों को इसी आनन्दावस्था तक पहुँचाने के लिए, उसमें आकंठ डुबो देने के लिए, रसमग्न कर देने के लिए काव्य में कतिपय गुणों का निर्धारण किया गया है। ये गुण भी संख्या में तीन प्रकार के हैं– माधुर्य, ओज तथा प्रसाद। "माधुर्यमोजोऽथप्रसाद इतितेत्रिधा।" भारतीय साहित्यकारों ने रस तत्त्व को काव्य की

आत्मा कहा है, किन्तु दूसरी ओर उन्होंने रस तत्त्व के उत्कर्ष विधायक अंगों की भी अवहेलना नहीं की है। रस के इस उत्कर्षवर्धक अंगों में अलंकार, लक्षण, व्यंजनादि शब्दशक्तियों तथा गुण एवं रीतिवृत्ति का स्थान प्रमुख है। गुणों को आचार्यों ने रस का स्थायी धर्म कह कर स्वीकार किया है। जिस प्रकार शौर्य, औदार्य एवं त्याग आदि गुणों से मनुष्य की आत्मा का गौरव और महानता प्रकट होती है, उसी प्रकार माधुर्य आदि गुणों की सन्निविष्ट से काव्य की आत्मा प्रदीप्त हो उठती है।

साहित्यकार ने स्पष्ट शब्दों में इन रसोत्कर्षवर्धक गुणों की व्याख्या में कहा है–

"रसस्यांत्विमाप्तस्य धर्माः शौर्यादयो तथा।
गुणाः माधुर्यमोजोऽयं प्रसाद इतिते त्रिधा।।"[43]

काव्य में गुणों की उचित स्थिति अत्यन्त ही आवश्यक है। गुण काव्य रूपी शरीर को सरस तथा मनोहर छवि प्रदान करते है। आचार्य मम्मट ने अपने ग्रन्थ काव्य प्रकाश में गुणों का विस्तृत विवेचन किया है। वे गुणों का रस का धर्म स्वीकार करते है। उन्होंने माधुर्य, ओज, प्रसाद इन तीन गुणों की स्थिति को काव्य में अनिवार्य मानी है। माधुर्य, ओज, प्रसाद इन गुणों का सम्बन्ध, चित्त की तीन वृत्तियों द्रवण शीलता, उत्तेजना, एवं प्रसन्नता से है। भुशुण्डि रामायण में इन तीन गुणों के प्रसंगानुकूल दर्शन होते है।

गुणौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण :

आचार्य क्षेमेन्द्र ने 'औचित्यविचारचर्चा' नामक अपने ग्रन्थ में गुणौचित्य को बहुत सुन्दर रूप में इस प्रकार परिभाषित किया है–

"अर्थ के अनुरूप ओज, प्रसाद आदि गुण काव्य में उसी प्रकार सुन्दर तथा चरितार्थ होकर प्रवाहित करते हैं, जैसे रति–क्रीड़ा के अवसर पर उदित चन्द्रमा आनन्द को प्रवाहित करता है।"[44]

अर्थात् काव्य में ओज, प्रसाद, माधुर्य आदि गुणों का सफल प्रयोग होता है तो वह काव्य चन्द्रमा के समान सहृदयों को आनन्द प्रदान करता है।

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण

आचार्य क्षेमेन्द्र ने गुणौचित्य के सम्बन्ध में दो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। प्रथम महाकवि भट्टनारायण के वेणी संहार से लिया गया है। इसमें योद्धा शिरोमणि अश्वत्थामा का, पकड़ने वाले तेजस्वी प्रताप के अनुरूप, वाक्य 'ओजो' नामक काव्य गुण के कारण समृद्धि को प्राप्त कर हजार गुणा अधिक सा होकर विक्रम के अनुरूप गौरव को धारण कर रहा है।

---

[43] साहित्य दर्पण, 8–1

[44] प्रस्तुतार्थोचितः काव्येभव्यः सौभाग्यवान्गुणः।
स्यन्दतीन्दुरिवानन्दं संभोगावसरोदितः।। औचित्यविचारचर्चा– कारिका – 14

महाप्रलयमारुत क्षुभित पुष्करावर्तक,
प्रचण्डधनगर्जित प्रतिखानुकारी मुहुः।
ख श्रवणभैरवः स्थगितरोदसीकन्दरः,
कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूर्वः पुरः।।[45]

उपर्युक्त उद्धरण में योद्धा अश्वत्थामा को पकड़ने वाले तेजस्वी प्रताप के अनुकूल वाक्य ओजो गुण नामक काव्यगुण के कारण समृद्धि को प्राप्त कर हजार गुना अधिक गौरव को धारण कर रहा है।

प्रत्युदाहरण :

गुणगत अनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि राजशेखर द्वारा रचित निम्न उदाहरण को प्रस्तुत किया है–

एतस्याः स्मरसंज्वरः करतलस्पर्शे परीक्ष्योनयः,
स्निग्धेनापि जनेनदाहभयतः प्रस्थम्पचःपाथसाम।
निर्वीर्यीकृवचन्दनौषधि विधौ तस्मिंस्तडत्कारिणो,
लाज स्फोटममी स्फुतटन्तिमणयः सर्वेऽपि हारस्त्रजाम्।।[46]

"इस वियोगी नायिका का काम ज्वर स्नेही स्वजनों के द्वारा हाथ रखकर इसलिए नहीं देखा जा रहा कि कहीं इसके शरीर पर हाथ रखने से हाथ जल न जाये। उसके शरीर पर पोता गया औषधिमिश्रित चंदन का लेप भी सफल नहीं हो रहा है। और उस वृक्ष स्थल पर धारण की गई मुक्तमाला की सभी मणियाँ धान के लावा की तरह तड़तड़ा कर फूट रही हैं।

इस श्लोक में वियोग से संतप्त सुन्दरी की मनोदशा के अनुकूल मधुरता को छोड़कर तड़तड़ा कर लावा के समान फूट रहे हैं' इस कथन में ऊर्जित स्वभाव वाले ओज गुण का समावेश होने से सभी सूक्ति उसी प्रकार से सहृदयों के हृदय में अनौचित्य का संचार कर देती है, जिस प्रकार अत्यन्त सुकोमल, सुन्दर शरीर वाली मनोहारिणी ललना अपने कटु भाषण से श्रोताओं के चित्त में शब्द सुनते ही विरसता की सृष्टि कर देती है।

भुशुण्डि रामायण में गुणगत औचित्य :

भुशुण्डि रामायण में माधुर्य, ओज एवं प्रसाद गुण की औचित्य पूर्ण योजना हुयी है।

---

[45] औचित्यविचारचर्चा,(पृ0 38)
[46] औचित्यविचारचर्चा,(पृ0 42)

1. माधुर्य गुण :

जिससे हृदय में अह्लाद की अनुभूति होती है, चित्त द्रवित हो उठता है, उसे माधुर्य गुण कहते है। तात्पर्य है कि चित्त को द्रवित करने वाला आह्लाद का गुण माधुर्य है–

"आह्लादकत्वंमाधुर्य श्रंगारेदुतिकारणम्।"[47]

यथा – "चित्त द्रवीभावमयोऽह्लादोमाधुर्यमुच्यते।।"[48]

भरत मुनि के अनुसार काव्य का सौन्दर्य श्रुति मधुरता में है। दण्डी रसमयता को माधुर्य मानते है। आचार्य मम्मट के अनुसार हृदय को भाव विभोर करने की विशेषता माधुर्य गुण में है। प्रेम या करुण प्रसंगों में चित्त विगलित हो उठता है चित्त का शीघ्र ही द्रवीभूत हो जाना माधुर्य का कारण है। माधुर्य गुण संयोग शृंगार की अपेक्षा करूण, विप्रलम्भ में और विप्रलम्भ की अपेक्षा शान्त रस में इसकी प्रधानता रहती है।[49] समास रहित या स्वल्प समासयुक्त रचना होती है।[50] माधुर्य गुण के काव्य में माधुर्य व्यंजक वर्णो का प्रयोग होता है। इसमें टवर्ग, लम्बे–लम्बे समास कठोर वर्णो का प्रयोग नहीं होता है मधुर वर्ण सानुनासिक (ञ, म, ङ, ण, न) तथा कोमल वर्णो का ही प्रयोग होता है।

भुशुण्डि रामायण में माधुर्य गुणगत औचित्य :

भुशुण्डि रामायण में माधुर्य गुण का यथा स्थान प्रयोग किया है। जो कि औचित्य से परिपूर्ण है।

अधोवर्णित कतिपय उद्धरणों में गुणौचित्य दर्शनीय है–

राम के सौन्दर्य वर्णन में गुण औचित्य का उचित प्रयोग किया गया है–

हरिचन्दन लिप्ताङ्ग मणिवर्यावतंसकम्।
किशोरं कञ्जपत्राक्षं रासरूप मनोहरम्।।
गोपालतरूणी तीक्ष्ण कटाक्षतरलीकृतम्।
फुल्लार विन्द संयुक्तं नाल भ्रमरकारिणम्।।
मकराकृति माणिक्य कुण्डल श्रवणद्वयम्।
नवमौक्तिकसंशोभिनासाग्रमधुराकृतिम्।।
उन्नद्धचारूचिबुकं पक्वबिम्बारूणाधरम्।
दशन ज्योतिरालोक प्रकाशितदिगन्तरम्।।
नीलालकालिलावण्य ललितानन
श्री मच्चूडामणि द्योतिमूर्धानं वेणिकान्वितम्।।

---

[47] काव्य प्रकाश, आचार्य मम्मट (8/89)
[48] साहित्य दर्पण –आचार्य विश्वनाथ (8/2)
[49] संभोगेकरुणे विप्रलम्भे शान्तेऽधिक क्रमात् (साहित्य दर्पण, आ० विश्वनाथ, पृ० 173)
[50] काव्य प्रकाश 8/98

मुरली मञ्जूमाधुर्य संमुग्धमधुराधरम्।
रत्नाङ्गुलीयकद्योतविचित्र मुरलीकरम्।।
रत्नकेयूर संभ्रान्तद्दोर्दण्ड द्वयममण्डितम्।
रक्ताम्भोजदलाकार चारूपाणितलद्वयम्।।
रत्नपूर्ण कटीबन्धरणत्क्वर्णित विग्रहम्।
पीताम्बर परीधानं निम्न नाभिवलित्रयम्।।[61]

प्रस्तुत उद्धरण में ञ् ,ङ्ग , न आदि माधुर्य व्यंजक वर्णो का तथा कोमल वर्णो का उचित प्रयोग हुआ है। रचना में लघु समास भी दृष्टव्य है जो कि माधुर्य की विशेषताओं से युक्त है।

राम के सौन्दर्य वर्णन में कवि ने माधुर्य व्यंजक वर्णो का उचित प्रयोग किया है। प्रस्तुत उद्धरण में माधुर्य गुणौचित्य दर्शनीय है।

मणि नूपुर युग्माढयविस्फुरत्पादपल्लवः।
यावकद्युतिसंदोहद्योति पादाङ्गुलीगणः।।
नाना वर्णलसच्चीर नाट्यकक्ष मनोहरः ।
मणिकिंकिणिकाचारू मेखलादामसुन्दरः।।
पञ्चवर्ण प्रसूनाढ्य यवन मालाविराजितः।
वैजन्तीमिलन्मञ्जु मुक्तादामश्रियाञ्चितः।।
पञ्चवर्ण महारत्नदीर्घ मालावलम्बितः।
कौस्तुमाख्यमणिद्योत कोटीन्दुर विदीधिति।।
विचित्र कञ्चुक श्रेष्ठ कस्तूरी कुङ्कुमाञ्चितः।
रत्नाङ्गदल सद्बाहुरूद्दामकटकप्रभः ।।[62]

प्रस्तुत उद्धरण में ञ् , ङ्ग , न आदि माधुर्य व्यंजक वर्णो तथा कोमल वर्णो का एवं लघु समासों का उचित प्रयोग किया गया है।

2. ओजगुण :

"'ओज' वह गुण है, जिसमें चित्त का विस्तार स्वरूप उद्दीप्त हो उठता है। वीर, वीभत्स और रौद्र रसों में क्रम से इसकी अधिकता होती है।" जो चित्त का विस्तार रूप और दीप्ति का हेतु होता है उसे ओज गुण कहते हैं।

"दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजोवीररसस्थितिः।"[63]
यथा "ओजश्चित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते।"[64]

[61] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 51/31–38
[62] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 129/68–70
[63] काव्यप्रकाश (8/91)
[64] साहित्यदर्पण, (8/4)

इस गुण का वीर, वीभत्स और रौद्र रस में प्रायः आधिक्य रहता है। इसमें 'ट वर्ग' आदि संयुक्ताक्षरों स, ष वर्ण और दीर्घ पदावली वाले समासों का प्रायः प्रयोग होता है।

भुशुण्डि रामायण में ओजगुणगत औचित्य :

भुशुण्डि रामायण में यथा स्थान ओजगुण का प्रयोग प्राप्त होता है। अधोवर्णित उद्धरणों में ओज गुण का उचित प्रयोग दृष्टिगोचर हो रहा है।

राम के गुण वैशिष्ट्य में ओज गुणौचित्य दर्शनीय है।

> **संरभेण ब्रुवाणं च मार्ग देहीति सिन्धवे ।**
> **ईषद्भ्रूभ्रभंगसंभिन्न ललाटविकटाकृतिम् ।।**
> **सीता विरहनिर्जूटजटामुकुट मण्डितम् ।**
> **ईदृशं भावयेन्मां तद्धयानं राजसतामसम् ।।**
> **गोपालतरूणी तीक्ष्ण कटाक्षतरली कृतम् ।**
> **फुल्लारविन्दसंयुक्तं नालभ्रमरकारिणम् ।।**
> **कण्ठादुभयपार्श्वस्थ लोलत् पीतपटच्छविम् ।**
> **मणिक्य मुकुट भ्राजिमुक्ताहार विभूषणम् ।।**
> **पञ्चवर्ण प्रसूनांढयं वनमालाविभूषितम् ।**
> **मञ्जीरमञ्जुलाकारं चरणाम्भोजपल्लवम् ।।**[55]

प्रस्तुत उद्धरण में ओज गुण की सभी विशेषताओं का उचित प्रयोग द्रष्टव्य होता है। ट वर्ग संयुक्ताक्षरों स, ष वर्ण और दीर्घ समासों का उचित प्रयोग हुआ है।

राम की स्तुति वर्णन में ओज गुणौचित्य दर्शनीय है—

> **नमस्ते नित्यनिरवधिनिरूपमनिर्भरानुकम्पा समुद्धृताखिलजीवराशये कदुदन्चत्कृ – पाकटाक्षसमुद्बोधितचिरविस्तृतस्वरूपाय शिवविरन्चिरमान्वेषितचरणपरागरजः कणायविमलकौस्तुभाङ्कुरितकृपाकन्दाय श्रीमत्प्रमोदवनकुन्जाधिपतये विमलगुणभूमिसमुन्मूर्छितश्रुतिगणगन्धर्वगानाय नेतिनेतिवचसोऽप्यगोचरायरूचिरगोरोचिष्णुचिदानन्दमयमूर्तिमहोमहनीयमहापौरुषविस्फूर्जिताश्रीरामायाभिरामाय ।**[56]

प्रस्तुत गद्यांश में ओजगुण की विशेषताओं का सम्यक प्रयोग दृष्टिगोचर हो रहा है।

---

[55] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 51/27, 28, 32, 42, 43
[56] भुशुण्डि रामायण, पश्चिमखण्ड, अध्याय, 66/683

3. प्रसाद गुण :

प्रसाद शब्द का अर्थ है 'प्रसन्नता'। अतएव जिस रचना को पढ़कर मन प्रसन्न हो जाय, हृदय की कली खिल उठे, वह प्रसाद गुण है। इस गुण की विशेषता है सहज ग्राह्यता। जिस प्रकार शुष्क ईंधन में अग्नि सहसा ही व्याप्त हो जाती है उसी प्रकार जो गुण चित्त में व्याप्त हो जाये उसे प्रसाद गुण कहते हैं। यह सभी रसों में समाहित रहता है–

"शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत सहसैव यः।
त्याजोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितास्थितिः।।"[57]

यथा – "चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च ।।"[58]

रचना के श्रवण मात्र से ही अर्थ की प्रतीति हो जाय, ऐसे सरल सुबोध पद प्रसाद गुण के शब्दों के व्यंजक होते है। रौद्रादि उग्ररसों में इसकी स्थिति शुष्क, काष्ठ में अग्नि के समान और श्रृंगारादि कोमल रसों में वस्त्र में शरीर के समान रहती है। इसमें श्रवण मात्र से ही अर्थ का बोध हो जाता है।

भुशुण्डि रामायण में प्रसाद गुणगत औचित्य :

भुशुण्डि रामायण में प्रसाद गुण का यथा स्थान उचित प्रयोग किया गया है। कतिपय निम्नलिखित उद्धरणों के माध्यम से हम भुशुण्डि रामायण में प्रसाद गुणौचित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालते हैं।

राम की स्तुति वर्णन में प्रसादगुणौचित्य दर्शनीय है–

नमामि ते राम पदारविन्दं,
भक्त्या लभ्यं भक्ति हीनैरचिन्त्यम्।
स्वरूपशक्त्यैव मुदं वितन्वन,
विक्रीडमानो जयसे सुरान रणे ।।
ममापराधस्तव वत्सहर्तुः,
क्षन्तव्य एषोऽतितरां रमेशः ।
अजानतो बालकस्यपराधं,
यथैव माता क्षमते मिट्पुरीषम।।
न ज्ञायते महिमा बालकस्य,
ब्रह्मस्वरूपस्य हरेर्मयापि ।
अगोचरो वेद वेदांगिरा सः
स्वयं त्वपायः परिदर्शनीयः।।"[59]

---

[57] काव्य प्रकाश (8/93)
[58] साहित्य दर्पण (8/68)
[59] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड अध्याय 21/39, 42

रचयिता ने उपर्युक्त पदों में सहज भाषा का प्रयोग कर सर्वत्र औचित्य का निर्वाह किया है। केवल श्रवण मात्र से ही अर्थ का बोध हो जाता है और पाठक का चित्त प्रसन्नता से भर जाता है।

राम की बाल लीला वर्णन में प्रसादौचित्य दर्शनीय है –

ते बालकास्तत्र गवेन्द्रधाम,
न्यलङ्कृता हेममयैर्विभूषणैः।
विचेरूरानन्दितबन्धुलोचना,
स्वरूप सौन्दर्यलसत्प्रतीकाः।।
कदाचिदेका खलु राक्षसी छलाद्,
विधाय रूपं किल लोकवञ्चकम्।
साक्षादिव श्रीरगमन्निहन्तुं,
यत्रास्ति रामः खलु तत्र वेश्मनि।।
स गोपध्वा पयसा प्रपायितः,
शंशायितो मृदुशयनेऽति बालकः।
तूर्णं तयागत्य जनैरदृष्टया,
गृहीत एव स्तनदानवाञ्छया।।[60]

प्रसाद गुण की सबसे बड़ी विशेषता है अर्थ की स्पष्टता तथा सुबोधता उपर्युक्त पदों में प्रसाद गुण की सभी विशेषतायें दर्शनीय हो रही हैं, जो औचित्यपूर्ण है।

इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि भुशुण्डि रामायण कवि ने माधुर्य, ओज, प्रसाद तीनों गुणों का यथा स्थान उचित प्रयोग किया है। गुणों के यथा स्थान उचित प्रयोग से ग्रन्थ को चारूता प्राप्त हुयी है। वस्तुतः हम कह सकते है कि गुणोपेत सरस काव्य ही सहृदय को श्लाघ्य है।

---

[60] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड अध्याय 21/43-46

(ङ) अलंकारगत औचित्य :

भारतीय साहित्य में अलंकार अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। प्राचीन आचार्यो ने अलंकारों के महत्व को एक स्वर से स्वीकार किया है। किसी आचार्य द्वारा यह साधन रूप में स्वीकार किये गये, तो किन्हीं आचार्यो द्वारा प्राणतत्त्व के रूप में, परन्तु काव्य में समुचित रूप से इनकी आवश्यकता का अनुभव सभी आचार्यो द्वारा किया जाता रहा। आचार्य भामह, दण्डी, वामन, रूद्रट आदि आचार्यो ने काव्य सौन्दर्य के लिए अलंकार तत्त्व को आवश्यक बताया है। आचार्य भामह के अनुसार–"कविता कान्तिगुण सम्पन्न होने पर भी जब तक अलंकृत नहीं होती, तब तक उसमें विभावन की सामर्थ्य होने पर भी जब तक अलंकृत नहीं होती, तब तक उसमें विभावन की सामर्थ्य का उदय नहीं होता।"[61] अनुसार आचार्य दण्डी के अनुसार – "अलंकार काव्य का शोभाकार धर्म है।"[62]

संस्कृत में **'अलम'** का अर्थ है – **'आभूषण'**। इस दिशा में जो अलंकृत करे, उसी काव्योपादन का नाम है अलंकार। जिस प्रकार नारी का सहज स्वाभाविक सौन्दर्य स्वयं के आकर्षण होते हुए भी अलंकारों एवं प्रसाधनों से सज्जित होकर आँखों के राग का विषय बन जाता है। सौन्दर्य में कोमलता का पुट विद्यमान रहता है, कठोरता तथा भार एवं गुरूता नहीं। अतः भार स्वरूप या अनायास लादी गयी अलंकृतियाँ सौन्दर्य में उत्कर्ष नहीं अपितु अपकर्ष का कारण बन बैठती है। काव्य में स्वाभाविक रूप से आये हुए अलंकार ही सौन्दर्य का कारण बनते हैं, अनायास लादे हुए नहीं।

अलंकार योजना तथा औचित्य का घनिष्ट सम्बन्ध है। अलंकारो का अलंकारत्व तभी सुशोभित एवं अभिनन्दनीय होता है जब उनका विन्यास उचित स्थान पर किया गया हो। जिस प्रकार लोक में उचित रूप से विन्यास अलंकार ही अलंकारधारी को अलंकृत करता है, ठीक उसी प्रकार काव्य रसादि में भी अलंकार्य को अलंकृत करने के उद्देश्य से अलंकार का औचित्यपूर्ण विधान ही सौन्दर्य का विधायक होता है। प्रकृति तथा मानव दोनों में ही अलंकार प्रियता दृष्टिगत होती है। उसी का अनुकरण कर कवि भी अपने काव्य या लेख को कामनीय एवं आकर्षक बनाते हैं। औचित्य को अलंकार के इसी रहस्य का उद्घाटन करते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र कहते है–

"उचित स्थान विन्यासादलंकृतिरलंकृति"[63]

औचित्य के बिना अलंकार शोभा की वृद्धि नहीं करता। उचित स्थान विन्यास पर विन्यस्त होने पर ही वह अलंकार चारूत्व का संपादक हो जाता है। अलंकरण शब्द और अर्थ दोनों का होता है। इसी आधार पर अलंकारों के शब्दालंकार एवं अर्थालंकार नामक दो भेद प्राप्त होते है। भुशुण्डि रामायण में यथा स्थान दोनों

---

[61] "न कान्तमपिनिर्भूषयंनिताविभातिवनिता मुखम्।" (काव्यालंकार), 1/13

[62] "काव्य शोभाकारान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते।" (काव्यादर्श) 2/1

[63] औचित्यविचारचर्चा, (पृ0 6)

प्रकार के अलंकारों का समुचित प्रयोग हुआ है। रामायण के अलंकार योजना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें अत्यन्त साध्य स्वाभाविक सौन्दर्य का होना। ऐसा लगता है अलंकार सहज रूप से ही उनके काव्य में आ गये है, वे कहीं अनायास लादे प्रतीत नहीं होते। भुशुण्डि रामायण में अलंकार रमणीयता की वृद्धि करते है, उसके भार नहीं। वे उसके सौन्दर्य की वृद्धि करते है।

अलंकारौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण :

आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ औचित्य विचार चर्चा में अलंकारौचित्य को इस प्रकार परिभाषित किया है–

"काव्य में अर्थो के अनुकूल आयी हुयी अलंकार योजना उसको उसी प्रकार शोभा सम्पन्न बना देती है। जिस प्रकार मृगनयनी के पुष्ट स्तनों पर हार पड़े होने से वह सुशोभित होता है।"[68]

आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्पष्ट करते हुए कहा कि औचित्य से युक्त उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों द्वारा सत्कविरचना उसी प्रकार सुशोभित होती है, जैसे ऊँचे स्तनों पर लहराने वाली आकर्षक मुक्ता माला से काम के मद से मतवाली तरूणी सुशोभित होती है।

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण –

क्षेमेन्द्र ने अलंकारगत औचित्य के सम्बन्ध में उदाहरण रत्नावली–महाकवि हर्षरचित से प्रस्तुत किया है।

विश्रान्त विग्रहकथो रतिमाञ्जनस्य,
चित्तेवसन् प्रियवसन्तक एव साक्षात्।
पर्युत्सुको निजमहोत्सवदर्शनाय,
वत्सेश्वरः कुसुमचाप इवाभ्युपैति।।[69]

यहाँ उस समय का प्रसंग वर्णित है जब उदयन बसन्त महोत्सव देखने के लिए पधार रहे है। उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि साक्षात कामदेव ही अपने द्वारा आयोजित उत्सव को देखने आ रहे है। अब युद्ध की चर्चा भी खत्म हो गयी, अतः वे प्रत्येक मनुष्य के हृदय में प्रेमी के रूप मे निवास करते हुए मानो कामदेव लग रहे है।

यहाँ पर श्रृंगार रस के अनुकूल वत्सराज उदयन की कामदेव से उपमा देना अत्यन्त सुन्दर है, जिससे मन में चमत्कार उत्पन्न होता है।

---

[68] अर्थौचित्यवता सुक्तिरलंकारेण शोभते।
पीनस्तन स्थितेनेव हारेण हरिणेक्षणा।। औचित्यविचारचर्चा कारिका – 16

[69] औचित्यविचारचर्चा, पृ0 45 (रत्नावली 9)

प्रत्युदाहरण : अलंकार गत अनौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि 'मालवरुद्र के निम्न उद्धरण के माध्यम से स्पष्ट किया है–

अभिनववधुरोषास्वादः करीषतनूनपा
दसरलजनाश्लेषक्रूरस्तुषारसमीरणः।
गलितविभवस्याज्ञेवाद्य द्युतिर्मसृणा रवे–
र्विरहिवनितावक्त्रौपम्यं बिभर्तिनिशाकरः।।[66]

"शीतकाल में शुष्क गोबर (करसी) की आग नयी नवेली वधू के कोप के समान आनन्द करती है, तथा शीतल हवा कपटी मनुष्य के आलिंगन के समान अप्रिय लगती है। सूर्य का तेज निर्धन हो गये मनुष्य की आज्ञा के समान हो जाता है, तथा चन्द्रमा विरहिणी नायिका के मुख के समान निस्तेज हो जाता है।"

प्रस्तुत उद्धरण में सुकुमार सुन्दरी का कोमल कोप है। उसके साथ शुष्क करसी की आग का सादृश्य बतलाना, शीतकाल में रुचिकर होने के कारण हृद्य होते हुए भी, अनुचित होने के कारण सहृदयों के हृदय को संकुचित कर देता है, क्योंकि हृदय को आनन्द सागर में निमग्न कर देने वाले नवोढ़ा के कोप की तुलना दाहक अग्नि के साथ दिखलाना अनुचित है, जो उपमालंकार के अनुचित प्रयोग को दर्शा रही है।

कवि जन अपनी भाषा सुन्दरी को सजाने के लिए उसे अनेक प्रकार से अलंकृत करते है। भाषा को ललित एवं मधुर रूप से प्रस्तुत करने के लिए कविजन अनेक विधाओं का आश्रय लेते हैं। कवि की इसी आवश्यकता की पूर्ति हेतु अलंकारों का उद्‌भव हुआ। सौन्दर्य की कोई सीमा नहीं होती है। इसलिए अलंकारों की संख्या भी निश्चित नहीं है।

भुशुण्डि रामायण में अलंकारगत औचित्य :

भुशुण्डि रामायण में रचयिता ने अपने महाकाव्य को नैसर्गिक अलंकारों से अलंकृत किया है। कवि को अलंकारों पर पूर्ण निष्ठा है। उन्होंने अपने ग्रन्थ में शब्द और अर्थ दोनों की प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है। उन्होंने अलंकार प्रयोग के प्रति सहज दृष्टिकोण अपनाया है। प्रायः वर्ण्य–विषय के अनुरूप ही अलंकारों का प्रयोग किया गया है। यहाँ हम संक्षेप में भुशुण्डि रामायण में प्रयुक्त शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों पर प्रकाश डाल रहे है–

अ– शब्दालंकार :

शब्द प्रधान अलंकार को शब्दालंकार कहते है।

---
[66] औचित्यविचारचर्चा पृ0 49

1. अनुप्रास अलंकार :

"जहाँ स्वरों के असमान होने पर भी व्यंजनों में समानता होती है वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है।"[67]

भुशुण्डि रामायण में अनुप्रास अलंकार का प्रचुर प्रयोग हुआ है। यहाँ हम कतिपय उद्धरण के माध्यम से भुशुण्डि रामायण में अनुप्रास अलंकार का अवलोकन करते है।

अनंगलावण्य परार्ध सम्पदा,
संस्पृष्ट सर्वांगमनोहरोज्जवलः।
श्रृंगारमंगीरससूचकैर्दृशोः,
कटाक्षपातैः कमलां प्रमोदयन्।।

प्रस्तुत उद्धरण में क, ङ्ग, म, स, ज आदि व्यंजनों की आवृत्ति से अनुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय हो रही है।

राम के गुण वैशिष्टय वर्णन में अनुप्रास अलंकार दर्शनीय है।

सलिल निधि गम्भीरः सर्वलोकैकवीरः स्थिरतरमतिधीरः सूर्यवंशैकहीरः।
सुरभियशउशीरः स्वर्णवर्णाच्छचीरः श्रितविपिनकुटीरः पातु नो रामवीरः।।[68]

यहाँ पर 'स' व्यंजनों की आवृत्ति से अनुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय है।

2. यमक अलंकार :

"जहाँ भिन्न–भिन्न अर्थ वाले वर्ण समुदाय की उसी क्रम से आवृत्ति होती है, वहाँ यमक अलंकार होता है।"[69]

भुशुण्डि रामायण में यमक अलंकार का उचित प्रयोग हुआ है। अधोवर्णित उद्धरण में यमक अलंकार दर्शनीय है–

रामो रामो रामरामोऽभिरामो,
रामो रामो रामरामश्च रामः।
रामो रम्यो रामचन्द्रो रमेशः,
इत्थं चोक्त्वा मुच्यते चैव बन्धात्।।[70]

प्रस्तुत उद्धरण में भिन्न–भिन्न अर्थ वाले वर्ण समुदाय की उसी क्रम से आवृत्ति होने से यमक अलंकार की स्थिति है।

---

[67] वर्णसाम्यानुप्रासः (काव्य प्रकाश) 9/104
[68] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड ,अध्याय 1/4
[69] अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः यमकम्। काव्य प्रकाश (पृ० 9/117)
[70] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 20/46

तस्याः स्तनोत्थं विषहं विषं हरि,
र्प्रहषन् प्राणौः साकमह्नायदेवः।
प्राणान् पपौ येन तदा तथा व्यसुः,
प्रकाशयामास निजं कलेवरम्।।[71]

प्रस्तुत उद्धरण में विषहं (कठोर) और विषं (जहर) भिन्न अर्थ वाले वर्ण समुदाय की उसी क्रम में आवृत्ति हुयी हो। अतएव यहाँ यमक अलंकार की स्थिति है।

3. श्लेष अलंकार :

"जहाँ अर्थ भेद होने से भिन्न–भिन्न शब्द एक साथ उच्चारण विषय के कारण जो एक रूप (श्लिष्ट) प्रतीत होते है, वहाँ श्लेष अलंकार होता है।"[72]

भुशुण्डि रामायण में श्लेष अलंकार का यथास्थान प्रचुर प्रयोग हुआ है। अधोवर्णित उद्धरण में श्लेष अलंकार दर्शनीय है।

रामंलोकाभिरामं रघुवरतनयं कोशलामुक्तिपुर्यां,
खेलन्तं कामकेलिं सुविमलसरयूतीरकुञ्जे नटन्तम्।
जानक्या चारूहासच्छविविशदशरच्चचन्द्रिकाकान्तिमत्या,
संयुक्तं राज्य (ज?) वेषंललित रसमयं ब्रह्मपूर्ण नमामि।।[73]

यहाँ कामकेलि काम और केलि भिन्न–भिन्न पद इस भाव को व्यक्त कर रहा है। काम (कामना) केलि (पुरुषार्थ) के साथ ही क्रीड़ा के रूप में प्राप्त होने पर मनोरंजन का साधन बन जाता है। और जब कामकेलि एक रूप श्लिष्ट पद प्रतीत होता है। तब वे प्रेमी युगल की अनुरक्त भावना को दर्शाता है।

प्रस्तुत उद्धरण में श्लेष अलंकार का उचित प्रयोग दर्शनीय हो रहा है। जो औचित्य पूर्ण है।

ब– अर्थालंकार :

'वे अलंकार जो आन्तरिक सौन्दर्य की वृद्धि करते है, अर्थालंकार कहलाते है।'

1. उपमा अलंकार :

"उपमेय और उपमान का भेद होने पर उनमें साधर्म्य का वर्णन होता है, वहाँ उपमा अलंकार होता है।"[74]

---

[71] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 17/27
[72] वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद भाषणस्पृशः ।
शिलष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा।। काव्यप्रकाश, (9/118)
[73] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 1/1
[74] साधर्म्यमुपमा भेदे (काव्यप्रकाश) 10/125

भुशुण्डि रामायण में यथा स्थान उपमालंकारों का उचित प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत उद्धरण में उपमालंकार का उचित प्रयोग दर्शनीय है।

भक्तानां प्राणनाथं वरदपरिवृढं वंशवर्यं वरेण्यं,
शुद्धं श्यामावदातं हरितमणिरूचिं सच्चिदानन्ददेहम्।
आभीरीनेत्र पद्मनप्रकरदिनकरं पूर्णचन्द्राभिरामं,
रामं श्यामं प्रकामं निजहृदि कलये कोटिकामावतारम्।।[75]

यहाँ पर उपमेय राम के लिए उपमान भक्तानां प्राणनाथं वंशवर्य वरेण्यं, श्यामावदातं आदि पदों का उचित प्रयोग हुआ है, जो औचित्यपूर्ण है।

स जातमात्रो निविडाम्बुकृतिः,
पीताम्बरः सुस्मितवक्रपङ्कजः।
भुजद्वयो वाणवरादि चिह्नितः,
स्ववामभागे श्रियमुत्तमां दधत्।।[76]

यहाँ पर उपमेय राम का उपमान निविडाम्बुकृतिः मेघ (बादल) के समान आकृति वाला) सुस्मितवक्रपकङ्ज (कमल के समान) पीताम्बरः (पीले वस्त्र वाला) आदि से उपमायें राम के सौन्दर्य की श्रीवृद्धि कर रहे है। प्रस्तुत उद्धरण में उपमालंकार का उचित प्रयोग हुआ है।

2. उत्प्रेक्षा अलंकारः

"जहाँ प्रकृत अर्थात उपमेय की सम अर्थात उपमान के साथ संभावना की जाती है, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।"[77]

भुशुण्डि रामायण में उत्प्रेक्षा अलंकारों का यथास्थान उचित प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत अधोवर्णित उद्धरण में उत्प्रेक्षा अलंकार दर्शनीय है।

अथ कापि करोति रोदनं प्रथुमुक्ता फललोचना श्रुभिः।
प्रिय कापि विलीनवृत्तिका भुवनं शून्यमिवैव वीक्ष्यते।।[78]

निम्नलिखित में उत्प्रेक्षा अलंकार दर्शनीय है।

कदाचिदेका खलु राक्षसी छलाद्,
विधाय रूपं किल लोक वञ्चकम्।
साक्षादिव श्रीरगमन्निहन्तुं
यत्रास्ति रामः खलु तत्र वेश्मनि।।[79]

---

[75] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 1/2
[76] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 10/3
[77] संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्। काव्यप्रकाश (10/137)
[78] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 26/46
[79] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 17/25

अर्थात् एक दिन विभिन्न रूप धारिणी राक्षसी ने लक्ष्मी के समान मोहक रूप बनाकर गोपराज के घर में जहाँ राम थे, प्रवेश किया। प्रस्तुत उद्धरण में उत्प्रेक्षा अलंकार दर्शनीय है।

3. रूपक अलंकार :– "जहाँ उपमान और उपमेय का अभेद वर्णित होता है, वहाँ रूपक अलंकार होता है।"[80]

भुशुण्डि रामायण में रूपक अलंकारों का यथास्थान उचित प्रयोग हुआ है। अधोवर्णित उद्धरण में रूपक अलंकार दर्शनीय है –

नमामि ते नाथ पदारविन्दं,
विष्ण्वादिसेव्यं च सुखैकहेतुम्।
न यत्र सद्यः प्रमितिः श्रुतीना,
तत्रामिते वानरः कोऽस्मि एषः।।[81]

यहाँ उपमान (राम) और उपमेय (विष्णु) में अभेद वर्णित है। अतएव यहाँ रूपक अलंकार का सुन्दर वर्णन हुआ है।

4. उदात्त अलंकार :

"जहाँ किसी वस्तु की समृद्धि का वर्णन हो, वहाँ उदात्त अलंकार होता है।"[82]

भुशुण्डि रामायण में उदात्त अलंकार का यथास्थान उचित प्रयोग हुआ है। अधोवर्णित उद्धरण में उदात्त अलंकार दर्शनीय है।

दशरथभवनं सदा समृद्धं,
सुवित्तमूर्जितमिन्दिरानिवासम्।
रामजनुषि सुमंगले च जाते,
व्यरूचदतीव मनोज्ञयैव लक्ष्म्या।।[83]

प्रस्तुत उद्धरण में अयोध्यापुरी की समृद्धि का जो वर्णन किया गया है। वह उदात्त अलंकार की दृष्टि से औचित्य पूर्ण है।

राम की समृद्धि वर्णन में उदात्त अलंकार की स्थिति दर्शनीय है।

रामो जयति लोकानां नित्यमानन्दवर्द्धनः।
स्वच्छन्दक्रीडनानन्दी सच्चिदानन्दविग्रहः।।
तं नमामि रसानन्दरूपिणी रघुवल्लभम।
यं भजन्ति सदा भवता भक्त्या प्रेम स्वरूपया।।[84]

---

[80] "तद्रूपकमभेदोय उपमानोपमेययोः"। काव्यप्रकाश (10 / 93)
[81] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 7 / 1
[82] उदात्तं वस्तुनः सम्पत्। काव्यप्रकाश (10 / 176)
[83] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 12 / 32
[84] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 12 / 32

5. उल्लेख अलंकार :

"जहाँ कही विषय भेद से एक ही वस्तु का अनेक प्रकार से उल्लेख होता है, वहाँ उल्लेख अलंकार होता है।"[65]

भुशुण्डि रामायण में उल्लेख अलंकार का यथास्थान उचित प्रयोग हुआ है। अधोवर्णित उद्धरण में उल्लेख अलंकार दर्शनीय है।

राम की स्तुति वर्णन में उल्लेख अलंकार दर्शनीय है–

नमो रामाय रामाय गोविन्दाय नमोनमः।
नमः सत्वाय शान्ताय नमः कारुणिकायते।।
नमः श्री रामचन्द्राय दशाकृतिविधायिने।
नमो गोपालवेषाय नमो गोपीविलासिने।।
नमोऽनुग्रहरूपाय नमोऽनुग्रहकारिणे ।
नमो रामावतरिणे नमो भक्तिविधायिने ।।
नमस्तेफलरूपाय नमस्तेसाधनात्मने।।
नमोनमस्ते पुरुोत्तमायरामायरामाय च राघवाय।।[66]

राम के लिए **गोविन्दाय, रामचन्द्राय, गोपालवेषाय, भक्ति विधायिने, पुरुषोत्तमाय** आदि नामों का उल्लेख किया है। जो औचित्यपूर्ण है।

6. स्वभावोक्ति अलंकार :

"जहाँ बालक आदि की स्वाभाविकक्रिया या रूपादि का वर्णन हो, वहाँ स्वभावोक्ति अलंकार होता है।"[67]

भुशुण्डि रामायण में स्वाभावोक्ति अलंकारों का यथास्थान उचित प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत उद्धरण में स्वभावोक्ति अलंकार दर्शनीय है।

राजापि प्रणयवशीकृतान्तरोऽभूद्,
रामस्य स्मितसुभंग मुखविलोक्य।
रिङ्गन्तं शिशुकमजातचूडकृत्तं,
नो शेकुः स्वमुप विलोक्य संविमर्तुम्।।[68]

प्रस्तुत उद्धरण में भगवान राम की स्वाभाविक क्रियाओं का वर्णन होने से स्वाभाविक अलंकार दर्शनीय है।

---

[65] क्वचित भेदाद् ग्रहीतृणां विषयाणां तथा क्वचित्।
एका स्थानेकधोल्लेखाः यः स उल्लेख उच्यते ।। साहित्य दर्पण (10/37)
[66] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 20/21–24
[67] स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्। काव्यप्रकाश (10/168)
[68] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 16/26

अतिश्योक्ति लंकार :

"जहाँ उपमान के द्वारा उपमेय का निगरण होने से दोनों का अभेद ज्ञान निश्चित रूप से प्रतीक हो वहाँ अतिश्योक्ति अलंकार होता है।"[89]

भुशुण्डि रामायण में अतिश्योक्ति अलंकारों का यथास्थान उचित प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत उद्धरण में अतिश्योक्ति अलंकार दर्शनीय है –

> **भक्तानां प्राणनाथं वरदपरिवृढं वंशवर्यं वरेण्यं,**
> **शुद्धं श्यामावदातं हरितमणिरूचिं सच्चिदानन्ददेहम्।**
> **आभीरीनेत्र पद्मनप्रकरदिनकरं पूर्णचन्द्राभिरामं,**
> **रामं श्यामं प्रकामं निजहृदि कलये कोटिकामावतारम्।।**[90]

प्रस्तुत उद्धरण में उपमान (राम) के द्वारा उपमेय (भक्तों के प्राणनाथ, पूर्णचन्द्र के समान सुन्दर) आदि उपमेय पदार्थों का निगरण होने से दोनों का अभेद ज्ञान निश्चित रूप से प्रतीक होने के कारण अतिश्योक्ति अलंकार की छटा दर्शनीय हो रही है।

यथासंख्य अलंकार :

"जहाँ किसी क्रम से उक्त (कहे हुए) पदार्थों का उसी क्रम से समन्वय होता है, वहाँ यथासंख्य अलंकार होता है।"[91]

भुशुण्डि रामायण में यथासंख्य अलंकार का यथास्थान उचित प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत उद्धरण में यथासंख्य अलंकार दर्शनीय है।

> **जरया लुप्तरूपस्य लोपिताधिषणापि ते।**
> **सत्यं च लोपितां प्रायस्तादृग्धर्मगुरोस्तव।।**[92]

यहाँ लोपिता (प्रथम उक्त) का द्वितीय (लोपिता) के साथ अन्वाय होने से यथासंख्य अलंकार दर्शनीय हो रहा है।

इस प्रकार निष्कर्षतः हम कह सकते है कि भुशुण्डि रामायण में कवि ने अलंकारों का यथास्थान उचित प्रयोग किया है। कवि को अलंकारों के स्वाभाविक एवं उचित प्रयोग में पूर्णरूपेण सफलता प्राप्त हुयी है। अतएव औचित्य की दृष्टि से किया गया अलंकार प्रयोग सहृदयों के लिए सर्वथा आकर्षण बन पड़ा है।

---

[89] "निगीर्याध्यवसानं तु प्रकृतस्य परेण यत्"। काव्यप्रकाश (10/153)
[90] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 1/2
[91] यथासंख्यं क्रमेणैव क्रमिकाणां समन्वयः। काव्यप्रकाश, (10/164)
[92] भुशुण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड, अध्याय 4/42

(च) रसगत औचित्य :

सामान्य रूप से रस का अर्थ 'आनन्द' है। किसी काव्य को सुनकर या पढ़कर अथवा नाटक के किसी दृश्य को देखकर हमारे मन में विचित्र आनन्द की तरंगे उठने लगती है तथा एक अव्यक्त अथवा अवर्णनीय भाव का संचार होता है, किंचित काल के लिए मंत्रमुग्ध होकर आनन्द में झूमने लगता है। मन के इसी अवर्णनीय भाव अथवा अलौकिक आनन्द को 'रस' कहा जाता है। रस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि माने जाते है, उन्होंने **"नहिरसादश्रतेकिश्चिदर्थःप्रवर्तते।"**[83] इस प्रकार रस को परिभाषित किया है। रस के अस्तित्त्व को प्रायः सभी आचार्यो ने स्वीकारा है।

कवि राज विश्वनाथ ने रस के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा कि **"वाक्यंरसात्मकंकाव्यं"**[84] कवि का उद्देश्य अपने काव्य के द्वारा सहृदयों को रसास्वादन कराना होता है। सामाजिक जन काव्य मार्ग से रसानुभूति के लिए ही प्रवृत्त होते है। काव्यानन्द को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है। इस ब्रह्मानन्द सहोदर काव्यानन्द की प्राप्ति रस के द्वारा होती है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में नौ रसों की कल्पना की गयी है। जिसमें श्रृंगार रस, हास्य रस, करूण रस, रौद्र रस, वीर रस, भयानक रस, वीभत्स रस, अद्भुत रस, शान्त रस इसके अतिरिक्त वात्सल्य रस को भी एक रस के रूप में निरूपित किया जाता है। रसों के संचरण में विभाव, अनुभाव, संचारीभाव का संयोग होता है एवं उनके द्वारा अभिव्यक्ति रति आदि स्थायी भाव 'रस' कहलाते हैं। जैसा भरतमुनि स्पष्ट कहा– **"विभावअनुभावव्याभिचारीभावसंयोगादरसनिष्पन्ति।"**[85] सम्पूर्ण रस का विवेचन आधार है। ये चारों मिलकर 'रस' की निष्पत्ति करते हैं। जो भाव मनुष्य के हृदय में सदैव अशान्त दशा में रहते हैं और अनुकूल वातावरण उपस्थित होने पर सहसा जाग्रत हो उठते हैं। वे स्थायी भाव कहे जाते हैं और वे ही अभिव्यक्त होकर इस रूप में परिणत हो उठते हैं। विभाव स्थायी भावों को जगाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं। आलम्बन तथा उद्दीपन। आलम्बन विभाव द्वारा जाग्रत तथा उद्दीपन विभाव द्वारा उद्दीप्त होने वाले स्थायी भाव की चेष्टाओं को अनुभाव कहते हैं। स्थायी भाव के साथ–साथ बीच में प्रगट होने वाले मनोभावों को संचारी भाव कहते है। इनको व्याभिचारी भाव भी कहा जाता है। इस प्रकार नौ रसों की अभिव्यक्ति होती है। नौ रसो के स्थायी भाव निम्न प्रकार हैं– श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति, हास्य रस का स्थायी भाव 'हास' करूण रस का स्थायी भाव 'शोक' रौद्र रस का स्थायी भाव 'क्रोध' वीर रस का स्थायी भाव 'उत्साह' भयानक रस का स्थायी भाव 'भय', वीभत्स रस का स्थायी भाव 'घृणा', अदभुत रस का स्थायी भाव 'विस्मय', शान्त रस का स्थायी भाव 'निर्वेद'।

---

[83] नाट्यशास्त्र आचार्य भरत।

[84] साहित्य दर्पण आचार्य विश्वनाथ।

[85] नाट्यशास्त्र आचार्य भरत।

रस काव्य के प्राण होते हैं। रस को प्रस्तुत करने के लिए ही कवि शब्दार्थ रूपी काव्य की रचना करता है। सहृदयों को रस की अनुभूति कराना ही कवि के काव्य निर्माण का सरस प्रयोजन होता है। यही कारण है कि संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने रस को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। काव्य को सुनकर सहृदयों को रस की अलौकिक अनुभूति ही कराना ही कवि का उद्देश्य होता है। रस विहीन काव्य को काव्य नहीं माना गया है। और यदि मान्यता दी गयी तो अधम काव्य (तृतीय श्रेणी) के काव्य रूप में माना गया है। आचार्यो ने रस की निष्पत्ति के लिए साधारणीकरण की स्थिति को अनिवार्य माना है। साधारणीकरण में जिन भावों का अभिव्यंजन होता है, वे भाव जिस प्रकार कवि को प्रभावित करते है उसी प्रकार पाठकों पर भी अपना प्रभाव डालते है। कवि के हृदय में विद्यमान रस पाठकों के हृदय में संचरित हो उठता है। रस तो पहले ही विद्यमान होता है। वह कवि की प्रक्रिया द्वारा उद्‌बुद्ध हो उठता है। यदि कोई कवि रस का ऐसा प्रभाव डालने में समर्थ होता है, तो निश्चित ही उसका अभिव्यंजन औचित्य के अन्तर्गत होगा।

रसौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण :

रसौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ औचित्यविचारचर्चा में बहुत ही उत्कृष्ट रूप से इस प्रकार परिभाषित किया है –

"औचित्य कथन से सुशोभित सम्पूर्ण जनमानस व्यापी शृंगार, वीर आदि रस सहृदयों के चित्त को उसी प्रकार नवनवोन्मेष कर देता है, जिस प्रकार बसन्तु ऋतु के आगमन पर अशोक वृक्ष में नये–नये अंकुर प्रस्फुटित हो जाते हैं।"[66]

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत शृंगार रसगत औचित्य :

शृंगार रसगत औचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्वरचित औचित्यविचारचर्चा नामक ग्रन्थ में कवि कालिदास द्वारा रचित 'कुमार संभव' काव्य से प्रस्तुत उद्धरण के माध्यम से इस प्रकार परिभाषित किया है–

बालेन्दु वक्राण्य विकास भावाद्धभुः पलाशान्य तिलोहितानि।
सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीव वनस्थलीनाम् ।।[67]

"अविकसित होने के कारण द्वितीया के चन्द्रमा के कारण टेढे–टेढ़े तथा लाल–लाल पलाश के फूल उसी प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो वसन्त रूप नायक के साथ अभी अभी रमण करके आई हुई वनस्थली रूप नायिका के कपोलों पर पड़े हुए नखक्षत हो।"

---

[66] कुर्वन्सवार्शये व्यापिमौचित्य रूचिरी रसः।
मधुमास इवाशोकं करोत्यंकुरितं मनः ।। औचित्यविचारचर्चा कारिका–16

[67] औचित्यविचारचर्चा, पृ0 57

इसमें बसन्त में नायक का आरोप और वन स्थलियों में सुन्दरी नायिका का आरोप किया गया है। इसी तरह नवीन तथा लाल–लाल पलाश कलियों से नव संगम के अवसर पर नायक के द्वारा किये गये नखक्षत की संभावना की गई है। यह आरोप तथा संभावना आगे वर्णित श्रृंगार रस का पोषक होने के कारण अत्यन्त उचित है। इस औचित्य पूर्ण वर्णन के कारण काव्य की चारूता अत्यन्त निखर उठी है।

प्रत्युदाहरण : श्रृंगार रसगत अनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है।

वर्ण प्रकर्षे सति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्धतया स्मचेतः ।
प्रायेण सामग्रयृविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्ति।।[illegible]

"रंगरूप आदि में देखने में आकर्षक होने पर भी कर्णिकार निर्गन्ध होने के कारण चित्त को मार्मिक पीड़ा प्रदान करता है। सब तरह से गुणों की परिपूर्णता में सृष्टिकर्ता की प्रवृत्ति प्रायः प्रतिकूल ही हुआ करती है।"

प्रस्तुत उद्धरण में केवल कर्णिकार पुष्प का वर्णन मात्र किया गया है। यहाँ विधाता को दोष ही दिया गया है। अतः यह वर्णन प्रसंग प्राप्त श्रृंगार रस के अनुपयोगी है तथा उसके उद्दीपन विभाव के अनुकूल कुछ भी नहीं कहा गया है। यही कारण है कि इसमें रसानौचित्य दृष्टिगोचर हो रहा है।

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत हास्य रसगत औचित्य :

हास्य रसौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्वरचित 'लावण्यवती' नामक काव्य के प्रस्तुत उद्धरण के माध्यम से इस प्रकार स्पष्ट किया है–

सीधु स्पर्श भयान्न चुम्बसि मुखं कि नासिकां गूहसे,
रे रे श्रोत्रियतां तनोषि विषमां मन्दोऽसि वेश्यां विना।
इत्युक्त्वा मदघूर्ण माननयना वासन्तिका मालती,
लीनस्यात्रिवसोः करोति वकुलस्ये वासवासेचनम्।।[illegible]

"अरे ब्राह्मण अपवित्र मदिरा के स्पर्श हो जाने के भय से तुम मेरे मुख को नहीं चूम रहे हो? मद्य के गंध से तुम अपनी नाक क्यों ढक रहे हो? क्या शराब के स्पर्श हो जाने के डर से नहीं चूम रहे हो? अपनी वैदिक ब्राह्मणता को क्यों बढ़ा रहे हो? वेश्या के पास न आने से ही तुम इस प्रकार असहाय हो रहे हो। यदि तुम लगातार वेश्या को पास आते रहते तो तुम्हें इस असहाय स्थिति का सामना नहीं करना पड़ता। ऐसा कहती हुयी मद की विह्वलता के कारण चञ्चल नयन वाली वसन्तिका नामक वेश्या मालती नामक अपनी पत्नी के प्रेम में लीन अत्रिवसु नामक

[illegible] औचित्यविचारचर्चा पृ0 56
[illegible] औचित्यविचारचर्चा, पृ0 63

ब्राह्मण को अपने मुख में भर कर कुल्ला किये गये मद्य से उसी प्रकार सींच रही है, जैसे बकुल वृक्ष को कोई तरूणी मद्य के कुल्ला से सींचती।"

यहाँ पर कवि ने ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया है जो अपनी प्राण प्रिया पत्नी को प्रेम करने वाला है। परन्तु साथ–साथा वेश्या के साथ भी रमण करना चाहता है। संयोग वश एक दिन वेश्या ने जो उसके साथ आचरण किया उसको कवि ने यहाँ प्रस्तुत किया है। अपवित्र मदिरा के स्पर्श की आशंका के संकोचवश सिकुड़े हुए अत्रिवसु नामक ब्राह्मण को, सूखे हुए वृक्ष की तरह सरस बनाने के लिए वेश्या सुन्दरी के द्वारा जो मदिरा से सींचने की बात वर्णित की गई है उसमें अंगभूत शृंगार रसाभाव के स्पर्श से हास्य रस की चमत्कारिता उसी प्रकार बढ़ रही है, जिस प्रकार आमरस के मिश्रण से उच्चकोटि की मदिरा का आस्वाद बढ़ जाता है।

प्रत्युदाहरण : हास्यगत अनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य कवि श्यामलक का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है–

चुम्बनसक्तः सोऽस्या दशनं च्युतमात्मनो वदनात् ।
जिह्वामूलप्राप्तं खाडिति कृत्वा निरष्ठीवत ।।

"कोई अधम नायक किसी वृद्धा नायिका को चूम रहा था। उसी समय वृद्धा नायिका का दाँत टूट कर उस नायिका के गले में फंस गया जिसे नायक खकार कर थूक कर बाहर निकाल देता है।"[100]

यहाँ पर हास्य रस एवं वीभत्सरस से मिश्रित वर्णन से हास्य रस की उत्पत्ति सर्वथा अनुचित है, क्योंकि ऐसी स्थिति में हास्य रस का चमत्कार गौड़ हो जाता है।

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत करूण रसगत औचित्य :

करूणौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्वरचित मुनिमतमीमांसा के निम्न उद्धरण के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

प्रत्यग्रोपनताभिमन्युनिधने हा वत्स हा पुत्र के,
त्वश्मद्रावि सुभद्रया प्रलपितं पार्थस्य यत्तत्पुरः ।
येनोद्बाष्पविमुक्त शष्पकवलैः सेनातुरंगै
न्यञ्चत्पार्श्वगतैक कर्ण कुहरैर्निः स्पन्द मन्दंस्थितम् ।।[101]

"अभिमन्यु के मृत्यु पर उसकी माँ सुभद्रा ने हा बेटा! हाय! कह कर अपने पति अर्जुन के समक्ष जो विलाप किया वह पत्थर को भी द्रवित कर देने वाला था। सुभद्रा के करूण–क्रन्दन को सुनकर सेना के घोड़ों की आँखों में आँसू छल–छला आये। वे भी घासों के ग्रास को छोड़कर एवं अपने कानों को नीचे की तरफ झुकाकर निश्चल और निस्तेज रूप से खड़े रहे।"

---

[100] औचित्यविचारचर्चा पृ0 64
[101] औचित्यविचारचर्चा पृ0 66

यहाँ पुत्र के वियोग से उत्पन्न शोकरूप स्थायी भाव के अनुरूप पत्थर के भी हृदय को पिघला देने वाला जो विलाप सुभद्रा ने किया वह एक मात्र अर्जुन के ही चित्त में प्रतिफलित होकर करूण रस के विभाव के रूप में नहीं रह सका अपितु पक्षियों, घोड़ों आदि के हृदय में भी करूण रस का संचारक सिद्ध हुआ। यह बात उन घोड़ो के आँसू बहाने, घास ग्रास छोड़ने तथा निश्चल निष्पन्द रूप से खड़ा रहने आदि अनुभावों में जानी जा सकती है। इस प्रकार सुभद्रा का करूण क्रन्दन करूण रस की अनिर्वचनीय प्रतीति का अनुभव कराने वाला सिद्ध हो रहा है। यह करूण रस का समुचित उदाहरण कहा जा सकता है।

प्रत्युदाहरण : करूण रसगत अनौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि परिमल के निम्न उद्धरण के माध्यम से इस प्रकार स्पष्ट किया है–

हा श्रृंगाृरतरंगिनीकुलगिरे हा राजचूडामणे,
हा सौजन्यसुधानिधान हा वैदहय दुग्धोदधे ।
हो देवोज्जयिनी भुणङ्ग्य युवतिप्रत्यक्षकन्दर्प हा,
हा सद्वान्धव हा कलामृतकर! क्वासि प्रतीक्षस्व नः।।[132]

उज्जैन से राजा की मृत्यु पर उसके शोक संतृप्त परिवार जन इस प्रकार विलाप करते हुए कह रहे है–

"हे स्वामी, आप श्रंगार रूपी निर्झरिणी के उद्‌गम स्थल थे, राजाओं के मुकुटमणि थे, सुजनता रूपी अमृत के भण्डार थे; विदग्धता के क्षीर सागर थे, उज्जयिनी के भुजंग थे। युवतियों के लिए आप साक्षात् कामदेव के समान थे। सज्जनों के बन्धु थे, कलाओं के उज्जीवक थे। हाय! आप कहाँ चले गये। हम लोगों की तरफ भी जरा दृष्टिपात तो कीजिए।"

यहाँ मृत राजा के विरह में 'हा' 'हा' पद की अधिकता के साथ उनके (राजा) गुणों के प्रकाशक शब्दों से शोक केवल वक्ता तक ही सीमित रूप से प्रतीत हो रहा है, क्योंकि विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के मिश्रण से शोक रूप स्थायी भाव के अनुरूप कुछ भी रस निष्पत्ति नहीं हो सकी। अतः पाठक के हृदय में करूण रस का संचार नहीं होने से यह उद्धरण अनौचित्य को व्यक्त कर रहा है।

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत रौद्र रसगत औचित्य :

रौद्र रसौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने भट्‌टनारायण द्वारा रचित काव्य से प्रस्तुत उद्धरण के माध्यम से इस प्रकार स्पष्ट किया है–

यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुज गुरूमदः पाण्डवीनां चमूनां,
यो यः पाञ्चालगोचे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतोवा।

---

[132] औचित्यविचारचर्चा (पृ० 67)

यो यस्तत्कर्म साक्षी चरति मयि रणे यश्च यश्च प्रतीपः,
क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमपि जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम्।।[103]

"अपने पिता की मृत्यु पर क्रोध से अन्धा अश्वत्थामा कहता है कि पाण्डवों की सेना में जो भी बाहुबल पर घमण्ड करता हुआ अस्त्र–शस्त्र धारण करता है, पाञ्चाल कुल में जो भी बालक अथवा अधिक अवस्था वाला प्रौढ़ अथवा गर्भरूप में हो, जो–जो उस घृणित कर्म का द्रष्टा हो, युद्ध में मेरे विचरण करने पर जो–जो भी विरोध कर्ता होगा, इस युद्ध में क्रोध से अन्धा उसका वध कर दूँगा, चाहे स्वयं संसार के विनासक यमराज ही क्यों न हों।"

यहाँ कोप रूप स्थायी भाव वाले प्रस्फुटित रौद्ररस के योग्य, शिशु, वृद्ध और गर्भस्थ शिशु की हत्या में खड्ग–चालन रूप कार्य में प्रसक्त, द्रोण के वध जन्य क्रोध से उत्पन्न, विष की तरह तीखी व्यथा, अश्वत्थामा की मोहाच्छन्न आन्तरिक स्थिति का बोध कराती है। यह भाव सहृदय के अन्तःकरण में प्रतिम्बित होकर एक अनिर्वचनीय दहशत की भावना उत्पन्न कर देता है। इस प्रकार रौद्र रस का बड़ा ही औचित्य पूर्ण सुन्दर समावेश किया गया है।

प्रत्युदाहरण : रौद्र रसगत अनौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने श्री प्रवरसेन के निम्न उद्धरण के माध्यम से स्पष्ट किया है–

दनुजेन्द्ररूधिरलग्ने यस्य स्फुरति नखप्रभासमूह ।
व्याकुली भवन्ती विपलाथिला गलितस्तनांशुका ।।[104]

"हिरण्यकशिपु के रूधिर से लिप्त हुए भगवान नृसिंह की नखों की कान्ति की चमक से भयभीत होकर हिरण्यकशिपु की राज्यलक्ष्मी अपने वस्त्रों को भी ठीक न कर सकी। उनके वक्षःस्थल से वस्त्र खिसक कर गिर गया।"

यहाँ क्रोध व्यंजक पद के न रहने के कारण रूधिर से सने हुए नखों से वीभत्स रस का तथा 'व्याकुलीभवन्तीदैत्यश्रीः पलायिता' इस वर्णन से भयानक रस के सम्मिश्रण हो जाने के कारण प्रकृत प्रसंग के अनुरूप प्रधान भूत रौद्र रस की असफल अभिव्यंजना हुयी है।

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत वीर रसगत औचित्य :

वीर रसौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि राजशेखर द्वारा रचित निम्न उद्धरण के माध्यम से इस प्रकार स्पष्ट किया है–

स्त्रीणां मध्ये सलीलं भ्रमित गुरूगदाघात निर्नष्ट संज्ञ,
सद्यो वध्योऽभवस्त्वं परशुरिव विवशस्तेन राज्ञाऽर्जुनेन ।

---

[103] औचित्यविचारचर्चा (पृ0 69)
[104] औचित्य विचार चर्चा, (पृ0 71)

तस्यच्छेत्तापि योऽसौ सकलनृपरिपुर्जामदग्न्यो भुजानां,
जित्वोच्चैः सोऽपि येन द्विज इति न हतस्तापसस्त्वेष रामः।।[105]

"स्त्रियों के मध्य में बड़ी ही सरलता से जिस सहस्त्रार्जुन नामक राजा ने अनायास ही अपनी गदा को घुमाकर प्रहार किया है। उस प्रहार से ही आप बेहोश हो गये थे। वेवश पशु की भाँति बाँधकर आपको जिसने मरने के लिए विवश कर दिया था। उस सहस्त्रार्जुन की भुजाओं को काटने वाले परशुराम जो सकल राजाओं के विजेता है। उनको भली–भाँति जीतकर जिसने ब्राह्मण होने के कारण जान से नहीं मारा।"

प्रस्तुत उद्धरण में क्रमशः रावण, सहस्त्रार्जुन एवं परशुराम की श्रेष्ठता का वर्णन किया है। उससे प्रधान नायक राम की वीरता पराकाष्ठा तक पहुँच गयी है।

प्रत्युदाहरण : वीर रस अनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि भवभूति का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है–

वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु हुं वर्ततां,
युद्धं स्त्रीदमनेऽप्यखण्डयशसो लोके महान्तो हि ते।
यानि त्रीणि कुतोमुखान्यपि पदान्यासन्खरायोघने,
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुदमने तत्राप्यभिज्ञो जनः।।

लव और चन्द्रकेतु के विवाद के अवसर पर लव कह रहे है– "वे (राम) वयोवृद्ध है, अतः उनके चरित्र की आलोचना शोभायमान नहीं है। वे वैसे ही रहे उनके विषय में क्या कहा जाय। यह लोग यदि युद्ध में स्त्रियों का नाश करें, तो भी इसे अपना गौरव मानते है। मैं तो केवल जानता हूँ कि खर के साथ युद्ध में वे तीन पग पीछे हटे थे एवं इन्द्र के पुत्र बालि के वध में जो नैपुण्य दिखाया वह तो संसार विदित है।"

यहाँ पर लव के द्वारा राम के ऊपर दोषों का आक्षेप किया गया है तथा स्वयं (लव) के द्वारा वीरता को प्रदर्शित कर कवि ने अपने ही शब्दों के माध्यम से वीर रस का हनन कर दिया। यह अनौचित्य को प्रदर्शित कर रहा है।

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत भयानक रसगत औचित्य :

भयानक रसौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि श्रीहर्ष द्वारा रचित निम्न उद्धरण के माध्यम से इस प्रकार स्पष्ट किया है–

कण्ठे कृत्तावशेषं कनकमयमधः श्रंखलादाम कर्षन,
कान्त्वा द्वाराणि हेलाचलचरणरणत्किकिङ्कणीचकवालः।
दत्तातकोऽगानानामनु सृतसरणिः संभ्रमादश्वपालैः,
प्रभ्रष्टोऽयं प्लवंग प्रविशति नृपतेमन्दिरं मन्दुरायाः ।।[106]

[105] औचित्यविचारचर्चा (पृ0 74)
[106] औचित्यविचारचर्चा (पृ0 87)

"गले में टूटने से बची हुयी स्वर्ण निर्मित जंजीर को नीचे घसीटता हुआ, उछल–कूद के कारण चंचल चरणों में बजते हुए घुँघुरूओं के समूह वाला, दरवाजों को पारकर (अन्तपुर की) स्त्रियों को आतंकित करने वाला, हड़बड़ा कर अश्वरक्षकों के द्वारा पीछा किया जाता हुआ घुड़साल से छूटकर भागा हुआ यह बन्दर राजमहल में प्रवेश कर रहा है।"

यहाँ पर वानर के भय से आतंकित स्त्रियों के भयवश भागने का उल्लेख किया गया है। यहाँ भागना आदि अनुभावों का जो वर्णन किया गया है वह भयानक रस के अनुरूप अत्यन्त मनोहर औचित्य को प्रकट कर रहा है। अतः यहाँ भयानक रस के औचित्य का सुन्दर समावेश किया गया है।

प्रत्युदाहरण : भयानक रसगत अनौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने राजपुत्र मुक्तापीड़ के निम्न उद्धरण के माध्यम से स्पष्ट किया है–

नीवारप्रसराग्रमुष्टि कवलैर्यो वर्धितः शैशवे,
पीतं येन सरोज पत्रपुटके होमावशेषं पयः ।
तं दृष्टवा मदमन्थरा लिवलयत्यालोलगल्लं गजम्,
सानन्दं सभयञ्च पश्यति मुहुर्दूरे स्थितस्तापसः ।।[107]

"तपस्वी के द्वारा जिस हाथी को नीवार के कोमल अग्र भाग की एक–एक मुट्ठी को ग्रास बनाकर खिलाया गया तथा कमल–लता के पत्र के दोने में भर–भर कर जिसे हवन कार्य से बचे हुए जल को पिलाया था, आज उसे ही मद के कारण मस्त चाल से मँडराते हुए भ्रमर–समूह के कारण चञ्चल गण्ड स्थल वाले गज को वह आनन्द एवं भय के साथ दूर से ही देख रहा है।"

यहाँ गज के आघातक एवं विकृत चेष्टाओं के अभाव होने के कारण भय का केवल नामतः कथन करने से भी भय के अनुरूप अनुभाव आदि का अभाव होने से वह भय रस रूपता को प्राप्त नहीं हो सका। अतः भयानक रस के अनौचित्य को दर्शा रहा है।

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत वीभत्स रसगत औचित्य

वीभत्स रसगत औचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्वरचित 'मुनिमतमीमांसा' के निम्नलिखित उदाहरण के माध्यम से इस प्रकार स्पष्ट किया है–

सर्वापायचयाश्रयस्य नियतं कुत्सानिकासस्य किं,
कायस्यास्य विभूषणैः सुवसनैरानन्दनैश्चन्दनैः।
अन्तर्यस्य शकृद्यकृत्कृमिकुलक्लोमान्त्रमाला कुलेः
क्लेन्दिन्यन्तदिने प्रयान्ति विमुखाः कौलेय काका अपि।।[108]

---

[107] औचित्यविचारचर्चा पृ0 81
[108] औचित्यविचारचर्चा, पृ0 83

"समस्त पापों के आश्रय, निन्दा के निधान, अस्थायी इस शरीर को आभूषणों, बहुमूल्य वस्त्रों एवं आनन्ददायक चन्दन आदि लेपों से अलंकृत करने से क्या प्रयोजन? क्योंकि मृत्यु के अनन्तर मल, मूत्र, यकृत, कृमि समूह, कीट और आतों के समूह से क्लिन्न इस मनुष्य शरीर को निर्घृण्यभोजी कुत्ते एवं कौवे भी तो नहीं पूछते हैं।"

यहाँ जुगुप्सा रूप स्थायी भाव के अनुरूप शरीर के घृणित आत, आदि के वर्णन से वैराग्य बासना से सहकृत वीभत्स का निःसार शरीर के अभिमान से वैराग्य उत्पन्न करने का उचित चित्रण किया है। अतः यह वीभत्स के औचित्य का यह एक बड़ा ही उचित उद्धरण है।

प्रत्युदाहरण : वीभत्स रसगत अनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि चन्दनक का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है–

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहित : पुच्छविकलः,
क्षुधा क्षामो रूक्षः पिठरककयालार्दितगलः ।
व्रणै पूतिक्लिन्नैः कृमिपरिवृतै रावृततनु,
शुनीमन्वेति श्वा तमपि मदयत्येष मदनः ।।[109]

"अत्यन्त क्षीण, काना, लंगड़ा, बहरा, पुछकटा, भूख से पीड़ित, रूक्ष, सिर एवं गले के रोग से ग्रस्त, सड़े तथा रिसते हुए, कीड़ो से भरे हुए घावों से व्याप्त शरीर वाला यह कुत्ता कुतिया के पीछे–पीछे दौड़ रहा है और कामदेव इसे भी कामान्ध बना रहा है। (अन्तः धन्य है काम की महिमा)।" यहाँ कुत्ते के शरीर में घृणित कुत्साओं का वर्णन अनौचित्यपूर्ण है क्योंकि कुत्ता का तो यह स्वाभाविक गुण ही है। यदि ये सभी विशेषण किसी पुरुष के लिए प्रयोग किये जाते तो वीभत्स रस पोषक होने के कारण अत्यन्त स्पृहणीय माने जाते। अतः यह उद्धरण वीभत्स रस के अनौचित्य को सूचित कर रहा है।

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत अद्‌भुत रसगत औचित्य :

अद्‌भुत रसौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि चन्दनक के निम्नलिखित उद्धरण के माध्यम से इस प्रकार स्पष्ट किया है–

कृष्णेनाम्ब? गतेन रन्तुमधुनामृद भक्षिता स्वेच्छया,
सत्यं कृष्ण? क एवमाह मुसली, मिथ्याम्ब? पश्याननम्।
व्यादेहीति विकासितेऽथ वदने द्रष्टवा समस्त जग–
न्माता यस्य जगाम विस्मयपदं पायात्स वः केशवः ।।[110]

---

[109] औचित्यविचारचर्चा, पृ० 84
[110] औचित्यविचारचर्चा (पृ० 86)

"बलराम कहते है कि हे माँ आज खेलते समय कृष्ण ने स्वेच्छानुसार मिट्टी खायी है। यशोदा कृष्ण से पूछती है कि कृष्ण क्या तुमने मिट्टी खायी है? कृष्ण कहते है कि आपको यह किसने बताया यशोदा कहती है बलराम ने। कृष्ण कहते है यह सब झूठ है मेरा मुख देख लो। ऐसा कहने पर जब कृष्ण ने अपना मुँह फैलाया तब उसमें समस्त विश्व को देखकर माता आश्चर्य चकित हो जाती है। ऐ अद्‌भुत कृष्ण हमारी और श्रोताजनों की रक्षा करें।"

प्रत्युदाहरण : अद्‌भुत रसगत अनौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्वरचित 'मुनिमतमीमांसा' के निम्न उद्धरण के माध्यम से स्पष्ट किया है–

समस्ताश्चर्याणां जलनिधिरपारः स वसति–
स्ततोऽप्याश्चर्य यत्पिबति सकलं तं किलमुनिः।
इदं त्वत्याश्चर्य लघुकलशजन्मापि यदसौ,
परिच्छेत्तुं को वा प्रभवति तवाश्चर्यसरणिम् ।।"[111]

"एक तो यह विशाल समुद्र ही समग्र आश्चर्यो का निधान है; किन्तु इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि यह इसे मुनि अगस्त्य ने एक बार में ही पूरा पी लिया और इससे भी महत्तम आश्चर्य यह है कि वे घड़े से उत्पन्न हुए थे। हे जगत्प्रभो! आपकी आश्चर्य–परम्परा की सरणि को कौन जानने में समर्थ हो सकता है?"

यहाँ पर क्रमशः एक के बाद एक की महिमा को खण्डित कर आश्चर्य मूलक अद्‌भुत रस का जो अंकुर उत्पन्न किया गया है। यह समग्र संसार इसी प्रकार की आश्चर्यजनक परम्पराओं से भरा पड़ा है। इसमें आश्चर्य की कोई बात ही नहीं है। यहाँ पर अर्थान्तरन्यास (पहले वर्णित किये गये अर्थ के समानार्थ वर्णित अर्थ) के द्वारा हठात तिरोहित हो जाता है। अतएव यहाँ अनौचित्य के कारण अद्‌भुत रस का समुचित परिपाक नहीं पाता है।

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत शान्त रसगत औचित्य :

शान्त रसौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्वरचित चतुवर्ग संग्रह नामक ग्रन्थ के निम्न उद्धरण के माध्यम से इस प्रकार स्पष्ट किया है–

भोगे रोगे भयं सुखे क्षय भयं वित्तेऽग्नि भूभृदभ्यं,
दास्ये स्वामिभयं गुणे खलभयं वंशे कुयोषिदभ्यम्।
माने म्लानिभयं जये रिपुभयं काये कृतान्तादभ्यं,
सर्व नाम भये भवेदभ्यमहो वैराग्यमेवाभयमं ।।"[112]

---

[111] औचित्यविचारचर्चा (पृ0 88)
[112] औचित्यविचारचर्चा (पृ0 90)

"भोग में रोग का भय, सुख में उसके समाप्त होने का भय है। धन में अग्नि एवं राजा का भय, नौकरी में स्वामी का भय, गुणों में निंदकों से भय, कुल में कुलटा स्त्रियों से भय, सम्मान में उसके मलिन होने से भय, विजय में शत्रुओं से भय, शरीर में मृत्यु से भय। इस प्रकार हम देखते है कि संसार की कोई भी वस्तु भयरहित नहीं है, केवल वैराग्य ही भय की सीमा से बाहर है। अतः सभी को वैराग्य का सेवन करना चाहिए यह कवि का अभिप्राय है।"

प्रस्तुत उद्धरण में सभी व्यक्तियों के लिए अभिप्रेत भोग, सुख तथा धन आदि को भयमय होने के कारण त्याज्य बतलाकर एवं वैराग्य को सकल भय तथा आयास का शमनकर्ता होने के कारण उसकी जो उपादेयता प्रतिपादित की गई है। उसमें शान्त रस का मार्ग बाधा रहित अधिक प्रशस्त हुआ सा प्रतीत हो रहा है। यहाँ शान्त रस का बड़े ही मार्मिक ढंग से समावेश किया गया है।

प्रत्युदाहरण : शान्त रसगत अनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि 'उत्पलराज' का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है–

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा,
मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयने वा दृशदि वा।
तृणे वा स्त्रैणं वा ममसमदृशो यान्ति दिवसाः,
क्वचित्पुण्याण्ये शिवशिवशिवेति प्रलपतः।। [113]

"विषधर सर्प हो, अथवा पुष्पमाला हो, शक्तिशाली शत्रु हो अथवा परम प्रिय मित्र, बहुमूल्य मणि हो अथवा मिट्टी का ढेला, सुकुमार पुष्प की शैया हो अथवा कठोर पत्थर की चट्टान, तुच्छ तृण हो अथवा स्त्रियों का आकर्षक समूह में समान भाव रखने वाले मेरे दिन कही पवित्र जंगल में शिव–शिव जपते हुए व्यतीत हो रहे हैं।"

यहाँ जो कहा गया है वह द्वेत भावना का प्रतिपादक है। अतः अभेद भावना विरोधी होने से अनुचित प्रतीत होता है। क्योंकि अविच्छिन्न समभाव के कारण जिनके भेदाभिमान की गाँठ खुल चुकी है। अतः सम्पूर्ण संसार को शिवमय देख रहे है। ऐसे महात्माओं के लिए निर्मल तपोवन एवं नागरिक भू–भाग का मूल्य समान होना चाहिए। फिर उनके लिए क्वचित्पुण्यारण्ये का उच्चारण अनुचित ही है। क्योंकि समदृष्टि के लिए पावन और अपावन एक समान है। इस कथन से शान्त रस का पोषण न होकर दुर्बलीकरण ही होता है। अतः यह पूर्णतया शान्त रस के अनौचित्य का ही उद्धरण कहा जा सकता है।

भुशुण्डि रामायण में रसगत औचित्य :

भुशुण्डि रामायण में शान्त, वात्सल्य, श्रृंगार, वीर, रौद्र, भयानक रसों की यथास्थान उचित व्यंजना हुयी है।

---

[113] औचित्यविचारचर्चा पृ० 93

1. भुशुण्डि रामायण में शृंगार रसगत औचित्य :

शृंगार रस से तात्पर्य 'प्रेम' से है। कामोद्रेक की गति में शृंगार की उत्पत्ति होती है। इसी को 'काम रति' भी कहते है। पुरुषों पारस्परिक परस्पर नैसर्गिक आसक्ति ही काम रति है। यही शृंगार का स्थायी भाव है। श्रंगार के दो पक्ष स्वीकार किये गये है। (1) संयोग शृंगार (2) विप्रलम्भ शृंगार

(1) संयोग श्रृंगार :

जिसमें नायक नायिका के परस्पर दर्शन, स्पर्शन आदि से रस की जो अनुभूति होती है, उसे संयोग शृंगार कहते है।

दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ।
यत्रानुरक्तावन्योन्यं संभोगेऽयमुदाहृतः।।[114]

(2) विप्रलम्भ श्रृंगार :

जिसमें नायक, नायिका का परस्पर अनुराग तो होता है परन्तु परस्पर मिलन नहीं हो पाता, उसे विप्रलम्भ शृंगार कहते है।

विप्रलम्भोऽथ संभोग इत्येष द्विविधोमतः।[115]

भुशुण्डि रामायण में श्रृंगार रस की यथास्थान व्यंजना हुयी है। भुशुण्डि रामायण में हमें दोनों ही प्रमुख पक्षों संयोग एवं वियोग की सरस झलक देखने को मिलती है। प्रारम्भ में ही संयोग श्रृंगार की मार्मिक व्यंजना हुयी है। जिसमें राम सीता का रति भाव उभयाश्रित रूप में दृष्टव्य हो रहा है।

भुशुण्डि रामायण में राम की विहार लीला और राम रास लीला में शृंगार की मार्मिक व्यंजना हुयी है। भगवान राम अलौकिक सौन्दर्य को धारण किये हुए है। सुन्दरी स्त्रियों के काम रस का पान करते हुए सुशोभित हो रहे है। अर्द्धांगिनी सीता के साथ काम क्रीड़ा में रमते हुए राम नक्षत्र मण्डल में चन्द्रिका के साथ चन्द्रमा की भाँति सुशोभित हुए राम सीता के आविष्ट हृदय में मुग्ध गोपिकाओं के समूह को रस प्रदान करते हुए सुशोभित हो रहे है।

परार्द्धस्मर लावण्यं बिभ्रत् सुन्दर विग्रहः ।
कामिनीनां कामरसं पोषयन राघवो बभौ ।।
सीतायार्द्धांगसंगिन्या सह केलिरसं दधत् ।
ज्योत्स्नया चन्द्रवद्रामो रेजे नक्षत्र मण्डले ।।
मुग्धानां गोकुल स्त्रीणां जानक्या विष्टचेतसाम्।
समूहं रसयन् रामो बभाराकृतिसौष्ठवम् ।।[116]

---

[114] साहित्य दर्पण, (आचार्य विश्वनाथ) 3/210
[115] साहित्य दर्पण, (आचार्य विश्वनाथ) 3/186-87
[116] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड,, अध्याय 24/1-3

राम महाकुञ्ज में वेणु के द्वारा अपनी प्रियतमा का विविध प्रकार आह्वान करते है। राम के वेणु आह्वान को सुनकर सीता अपने सुन्दर रूप में प्रकट होती है।

ततस्तदाकर्ण्य सुवेणुनिः स्वनं प्रियोदितं मन्मथवेग वर्द्धनम्।
स्मरोन्मदप्रोद्धत मानसा बहिर्हृदन्तरादाविरभून्नितम्बिनी ।।[117]

राम सुन्दरी सीता को प्राप्त कर उनके साथ रति क्रीड़ा करते है और सीता के साथ अनेक प्रकार से विहार करते है–

शृंगारयामास रघूद्वहः प्रियां प्रियापि तं दिव्ययुवानमादरात्।
एवं तदन्योन्यमभूत् कुतूहलं दाम्पत्यभाव प्रणयेन संचितम्।।[118]

यहाँ पर राम सीता आलम्बन, विभाव, प्रमोदवन उद्दीपन विभाव परस्पर चुम्बन आलिंगन अनुभाव है मद, मोह, लज्जा, औत्सक्य, चपलता और संचयी भाव है। इसके द्वारा अभिव्यक्त होकर रति भाव संयोग श्रृंगार के रूप में परिणत हो रहा है।

भुशुण्डि रामायण में विप्रलम्भ शृंगार का भी यथास्थान उचित प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। विप्रलम्भ श्रृंगार रसगत औचित्य का निम्न लिखित उद्धरण देखे–

जानकी के विरह में राम की विरह वेदना सहृदय मन को द्रवित कर देती है। उनके विरह दशा का कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है।

क्वचित्स्खलन् क्वचिद्गच्छन क्वचिद्धावन क्वचिद्भ्रमन्।
क्वचिद्रुदन् क्वचिज्जल्पन् क्वचिन्मौनुपाश्रयत ।।
जगाहे काननं सर्व प्रियान्वेषणतत्परः ।
पृच्छमानस्तरूलतागुल्मतुंगवनस्पतीन् ।।
अवीक्षमाणः शोकान्तमपार विरहज्वरः ।
पश्यन्नन्धतमोव्याप्ता दिशः शून्यतमा इव।।
तस्यास्तीर भुवि श्रान्तः पश्यन् प्राण प्रियापदैः।
अंकितं सैकतं रामो मुमूर्छ हृतचेतनः ।।
तदाननं शीततर्गोतमीनीर विन्दुभिः।
ममार्जखिन्नहृदयो लक्ष्मणः करूणाञ्चितः।।
प्रक्षालितमुखस्तेन भ्राता प्राकृतचेतनः।
कथंचिदुन्मील्य दृशौ तस्थिवान् मौनमाश्रितः।।[119]

---

[117] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड,, अध्याय 26/2-5
[118] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड , अध्याय 27/30
[119] भुशुण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड,,अध्याय 160/2, 4, 5, 6, 7, 8, 9,

राम सीता के वियोग में अत्यन्त दुःखी हो जाते है। उनका हृदय विदीर्ण हो रहा है। सीता की पूरे वन में खोज करते है। वह इतने दुःखी हो जाते है कि अचेतन वनस्पतियों और लताओं से सीता के बारे में पूछते है।

यहाँ पर राम का सीता के प्रति प्रेम में विरह वेदना का वर्णन जो किया है। वह निश्चय ही वियोग शृंगार की परिधि में आ रहा है।

2 भुशुण्डि रामायण में हास्य रसगत औचित्य :

किसी भी वस्तु या स्थिति की विकृति, वेश–विन्यास, चेष्टा तथा व्यवहार आदि व्यवहार के साक्षात् से हमें हास्य रस की अनुभूति होती है। इसका स्थायी भाव 'हास' है। भुशुण्डि रामायण में हास्य रस की यथास्थान उचित व्यंजना हुयी है।

हसति च हासयते च शिशुभ्यः,
कुरूते विग्नाः गोकुलरामः।
किमपि च वक्तुं न पारयामः,
शिक्षय मातर्ननु निजबालम्।।
स्फोटयति प्रसभं दण्डि माण्ड,
विगुणीभवति निवारित एषः,
एवमादि वचनानि नदन्त्यः,
कान्तविलोकन पूरितकामाः।
जग्मुरात्मसदनानि तरण्य
स्तमेव सततं भावयमानः।।[120]

यहाँ पर राम आलम्बन मटकी फोड़ना आदि कार्य उद्दीपन विभाव है। 'हास' नामक स्थायी भाव परिपुष्ट होकर हास्य रस की निष्पत्ति कर रहा है।

3. भुशुण्डि रामायण में करूण रसगत औचित्य :

चित्त को द्रवित करने वाले प्रसंगों में करूण रस की अभिव्यक्ति होती है। इसका स्थायी भाव शोक है। किसी प्रिय अथवा इष्ट के विनाश अथवा अपूरणीय होने पर करूण रस की अभिव्यक्ति होती है। काव्य में करूण रस का विशिष्ट महत्त्व है, क्योंकि उसकी गति केवल मनुष्यों तक ही सीमित न होकर पशु–पक्षियों तक व्याप्त है। महर्षि वाल्मीकि के हृदय में कौञ्च पक्षी के वियोग से उत्पन्न यह करूणा ही थी जो प्रथम श्लोक के रूप में परिणित हुयी। भुशुण्डि रामायण में करूण रस की यथास्थान उचित व्यंजना हुयी है।

राम सीता के विरह में अत्यन्त दुःखी होकर करूण विलाप करते हुए इस प्रकार कहते है कि न जाने मेरी प्राण प्यारी सीता को कौन हरण कर ले गया। देवता मनुष्य या यक्ष गन्धर्व राक्षस इनमें से किसने मेरी प्राणप्रिया का हरण कर लिया।

---

[120] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड,,अध्याय 18/16, 17, 18

हा प्राणदयिते देवि हा हन्त जनकांगजे।
हा हन्त चन्द्रवदने हा हा कमललोचने ।।
हा तन्वि रमणि क्वासि क्वासि हा प्राण दायिनि।
हा हन्त वञ्चितोऽस्म्याद्य त्वया हठपरायणे।।
हा कोमल वचोलापे हा कोकिल कलस्वरे।
हा हन्त कोमलापांगि क्वासि क्वासि विदेहजे।।
हा हन्त स्वर्णहरिणच्छद्नना विधिरेव माम।
प्रसमं वञ्चयामास को वेत्ति पुनरीदृशम्।।
हा हन्त लक्ष्मण भ्रातस्त्वयि विश्वस्तमानसः।
निधाय प्राणदयितां गतोऽहं मृगहेतवे ।।
जवेन स त्वममधुना देहि प्राणप्रियां मम ।
नो चेत्यक्ष्याम्यहं प्राणानिति मे निश्चितं मतम्।।
आनयस्व प्रियां सद्यः सौमित्रे मां यदीच्छसि।
क्व मे प्राणेश्वरी याता पर्णशालामधिष्ठिता।।
को मे प्राणप्रियां तावदपहृत्याशमस्थिताम् ।
स्थापयिष्यति तं भित्वा सद्य आनय लक्ष्मण।।
वन्यो वा वनदेवी वा गिरिर्वा भित्तिरेव वा।
देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गन्धर्व एव वा ।।
को मे प्राणप्रियाः हत्वा निनायरहसिस्थिताम्।।[121]

यहाँ पर सीता के हरण के अनिष्ट से करूण रस प्रकाशित हो रहा है। सीता आलम्बन विभाव, उनका हरण उद्दीपन विभाव, विलाप आदि अनुभाव, स्मृति, चिन्ता मोह आदि व्याभिचारी भाव है। इनके द्वारा परिपुष्ट शोक नामक स्थायी भाव करूण रस की निष्पत्ति कर रहा है।

राम के विरह में चराचर जगत शोक सागर में निमग्न हो जाता है। केवल अयोध्यावासी ही नहीं अपितु वहाँ के जीव–जन्तु, पशु–पक्षी भी करूण क्रन्दन करने लगते है।

वनात्वयि निवृत्तैऽद्य सम्पूर्णाः स्युर्मनोरथाः।
अमीपक्षिर वैवृक्षाः कुर्वन्ति करूण स्वरान्।।
रोरूवन्ति चिरं क्लिष्टाः खगा वृक्षेण्वबस्थिताः
सरःसु गुञ्जदभ्रमरा यामिन्यो विरूवन्ति च।।[122]

उपर्युक्त प्रसंग में वृक्षों पक्षियों का करूण रूदन अत्यन्त मार्मिक एवं ह्रदयावर्जक है। करूण रस का अगाध उमड़ता हुआ प्रतीत हो रहा है।

---

[121] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड., अध्याय 158/5, 6, 7, 31, 32, 33, 34, 38, 39, 40
[122] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 10/74, 75

दशरथ की मृत्यु के समय कौशल्या आदि रानियों के विलाप वर्णन में करूण रस की प्रतीति द्रष्टव्य हो रही है।

हा हा महाराज मही महेन्द्र हा हा महाकीर्ति निधे महादयं।
हा हा महाबाहुवरेण्य पुण्यनिधे न मां पश्यसि शोक मग्नाम्।।
हा हा महाबल महामहनीय कीर्त्तै तत्तादृगुज्जवलतरं विमलं मनस्ते।
कैकेयराजसुताया तिनृशसया तिपापात्मना विकलितं कथमेव मासीत्।।
हा हा निःशेष गुणाभिराम हा लक्ष्मण क्षेमदलक्षणाढय।
हा मैथिलिख्यापिता साधुवते कुत्रस्थयूयंननुमांनवित्थ।।
हा हा महाराज कुमारकौ वा प्रस्यन्दमानं ननुवा मचुक्षः।
किमद्यनाख्यास्यतिदुर्निमित्तंततेपि न स्यादविपिनान्निवृत्तिः।।[123]

यहाँ पर दशरथ की मृत्यु रूपी अनिष्ट की प्राप्ति से करूण रस प्रकाशित हो रहा है। मृत महाराज आलम्बन विभाव, उनकी मृत्यु उद्दीपन विभाव है। रोदन, निःश्वास, उच्छ्वास, प्रलाप आदि अनुभाव है। निर्वेद, मोह, अपस्मार ग्लानि, स्मृति, विषाद, उन्माद, चिन्ता व्याभिचारीभाव है। इनके द्वारा परिपुष्ट शोक नाम स्थायी भाव करूण रस की निष्पत्ति कर रहा है।

महाराज दशरथ की मृत्यु पर उनकी रानियों ने हाय महाराज! इस प्रकार कारूणिक शब्दों के द्वारा जो विलाप किया है। वह सहृदय को अनायास ही द्रवित कर देता है।

4. भुशुण्डि रामायण में रौद्र रसगत औचित्य :

मानव मन में रति, उत्साह आदि मनोभावों की भाँति क्रोध की भी अपनी अंतरंग अवस्थिति होती है। यह किसी के क्षोभ जनक वचन या प्रतिकूल कर्म से उदबुद्ध होता है। रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। जिसकी मूल में प्रतिशोध की कष्ट मूलक भावना रहती है। इसमें शत्रु ही आलम्बन होता है। अपमान सूचक वाक्य उद्दीपन तथा कुटिल भृकुटियाँ, क्रूर दृश्य अनुभाव अमर्ष, उग्रता, गर्व, चपलता मद आदि संचारी भाव होते है।

भुशुण्डि रामायण में यथास्थान रौद्र रस की उचित व्यंजना हुयी है। भार्गव परशुराम के वचनों में रौद्र रस की उचित स्थिति देखी जा सकती है।

अहो अरे क्षत्रिय पोतकस्त्वमीदृक् पापं कर्म कस्मादकार्षीत्।
केनेदं ते शिक्षितं शत्रुभावाद् भव्यासहं मत्कुठाराचलाग्नौ।।
अहो अभाग्यं जनकस्य दुर्मतेर्जामातृरक्षा कुशलैकघातिनः।
पर्णाकृतं येन धनुः पिनाकिनो दुर्बुद्धिना वार्धकनष्टचेतसा।
ईशस्तु भगवान साक्षात करूणा रसवारिधिः।
शान्तात्मा तापसां राशिः कस्तस्मात् संबिभेतिवै।।

[123] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 25/56-60

तत्पुत्रस्तारकस्यारिस्तादृग दैत्यचमूपतेः।
स्कन्दोऽपि विस्मितो येन तस्य शन भविष्यति।।
स्कन्दोऽपियदि नेदानीं भूतानां भयकारकः।
अहं त्वनादृतः कस्मात् कुठारकठिनाशयः।।
धिक् क्षत्रवंशे करूणामिदं यस्याः फलं खलु।
अतः कृपालुना भाव्यं नातः परमिहान्वये।।
इतिब्रुवाणं भृगुवंशकेतुं कोपेन संभ्रामितसत्कुठारम्।
सौमित्रिरभ्येव्य जवादवादीत् संरम्भसाटोपगिरा गभीरः।।[124]

यहाँ आलम्बन राम लक्ष्मण है। उनके द्वारा धनुर्भंग, उद्दीपन विभाव है। परशुराम की भृकुटि भंग कठोर, वचन, उग्रता, आवेग, मद आदि अनुभाव है। आक्षेप, अमर्श मोह आदि व्याभिचारी भाव है। इनके द्वारा परिपुष्ट क्रोध नामक स्थायी भाव यहाँ रौद्र रस की व्यंजना कर रहा है। रौद्र रस के विभाव स्वरूप परशुराम आश्रय के रूप में एवं शिव धनुष भंगकर्ता श्रीराम आलम्बन स्वरूप जो क्रोध की व्यंजना हो रही है। वह अत्यन्त ही उचित एवं मनोहारी है।

5. भुशुण्डि रामायण में वीर रसगत औचित्य :

किसी कार्य के सम्पादन हेतु मन में एक विशेष प्रकार की क्रिया सत्वर एवं सजग रहती है उसे उत्साह कहते हैं। इसी उत्साह नामक स्थायीभाव से वीर रस की उत्पत्ति होती है। वीर के सामने खड़ा प्रतिपक्षी, ऐश्वर्य, साहसिक कार्य, यश इसके आलम्बन विभाव होते है। प्रति पक्षी की ललकार एवं प्रदर्शन आदि उद्दीपन का कार्य करते है। आँखों की रक्तिम आभा, आवेश, रोमांच एवं प्रहार आदि अनुभाव होते है। गर्व, उग्रता आदि संचारीभाव होते है।

भुशुण्डि रामायण में वीर रस की अनेक स्थलों पर उचित निष्पत्ति हुयी है। ताड़का राक्षसी का वध, बालिवध, अशोक वाटिका में हनुमान द्वारा राक्षसों का संहार, कुम्भकर्ण, मेघनाद और रावण के साथ युद्ध में अनेक स्थलों पर वीर रस की निष्पत्ति हुयी है। राम में अद्भुत वीरता देखने को मिलती है राम का अपूर्व पराक्रम सम्पूर्ण रामायण में दृष्टिगत होता है। वे अपने पूर्व पराक्रम से भगवान शंकर के धनुष को तोड़ देते है। जिससे उनका पराक्रम प्रकट होता है।[125] वे रावण जैसे महापराक्रमी वीर से युद्ध करने में परन्मुख नहीं हुये। रावण के साथ युद्ध में उनकी अद्भुत वीरता का उदाहरण देखने को मिलता है। रावण जब राम पर शताग्नि का प्रहार करता है, तब राम उसे खण्ड–खण्ड कर देते है। इसके पश्चात राम ब्रह्मास्त्र के मंत्रित एक बाण का धनुष पर संधान करते है। वह बाण रावण के दसो सिरों को काट देता है और रावण पृथ्वी पर गिर पड़ता है।

---

[124] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 77/30–36
[125] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड,, अध्याय 76

अमोघः स तडिदवृन्द दीप्ति दीर्पित दिग्गणः।
दशधा ददृशो व्योग्नि परशद्भिः सुरकिन्नरैः।।
फणादशाकविस्फारवदनो भोगिवानिव।
युयुजे दशकण्ठस्य कण्ठेषुसहसैव सः।।
अज्ञातक्षतपीडस्य रावणस्य शिरांसि सः।
दशापि पातयामास दशास्यो राम मार्गणः।।
छिन्नेषु तस्य कण्ठेषु दशस्वापि स तत्क्षणात्।
पपात राक्षसपतिः कम्पयन् धरणीतलम् ।।[126]

यहाँ रावण आलम्बन है। उसकी चेष्टायें उद्दीपन विभाव हैं। राम की धृति, मति आदि संचारीभाव है। इसके द्वारा राम का उत्साह सिद्ध होता है। राम के उत्साह के द्वारा यहाँ युद्धवीर रस की व्यंजना हो रही है।

महावीर हनुमान के द्वारा अशोक वाटिका में राक्षसों का संहार वर्णन मे वीर रस की उचित व्यंजना द्रष्टव्य है। महाबली हनुमान साहस, शक्ति और संकल्प के प्रतिमान है। वह कठिन से कठिन कार्य को जिस लगन, उत्साह और वेग से करते है। वह विलक्षण है चाहे दुःस्साध्य समुद्र या संकट पूर्व लंका दहन अथवा दुष्प्राप्त संजीवनी बूटी को लाना सर्वत्र उनकी वीरता देखते बनती हैं। प्रस्तुत उद्धरण उनकी वीरता का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

स तान् प्रहरतो दृष्टवा राक्षसान् धोर कर्मणः।
चुकोप बलवान् वीरो वायु सूनुर्महोर्जितः।।
ततो जघान तरूभिः स ताना पततोऽसुरान्।
समूलोत्पाटितैस्तुंगै दीर्घशाखा शिफान्वितैः।।
महाशैलाशिलाभिश्च कठिनाभिः सहस्त्रशः।
तीक्षणाग्रभिर्महावेगपातिनीभिर्नभस्तलात्।।
कांश्चित्प्राणिप्रहारेण पादघातैस्ताथापरान्।
पणिपादनखैः कांश्चिद्दंष्ट्राभिश्चैव कांश्चान।।
पतिताः पनुरूत्तस्थुः प्रहारैरतिदारूणैः।
क्षारत्क्षतजसम्पृक्ता राक्षसा घोरनादिनः।।
घूर्णायन्तेस्म धरणौ पतिताः केऽपि राक्षसाः।
वातपुत्रेण बलिना मर्मणि प्रसंभहताः।।
महाशैलशिलाघातप्रहताः कोऽपि राक्षसाः।
वमन्तोरुधिरं वक्त्राद् धूर्णन्ति स्मधरातले।।
मूर्छामपेदिरे तेन यातुधानाः सुनिर्हताः।
जवेरिताभिः प्रसभं चपेटाभिर्बलीयसा।।

126 भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड,अध्याय 241 / 14–32

उत्पाद्योत्या तरूमिर्जाघान बलिनोऽसुरान्।
इत्थं सर्व वनमपि क्षपितं तेन वेगिना।।
हताश्च राक्षसाः सर्वे महागर्व मराकुलाः।
पतंगा इव दीपेऽस्मिन् नाशं जग्मुः समंततः।।[127]

यहाँ हनुमान का उत्साह युद्ध वीरता का प्रतिपादन है। उत्साही हनुमान अपनी पूँछ में लगी हुयी अग्नि से लंका को भस्मात कर देते है।

लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध में लक्ष्मण का अद्वितीय शौर्य उनके उत्साह को व्यक्त कर रहा है। जिससे वीर रस की व्यंजना हो रही है। दोनों ही पक्षों में भयंकर युद्ध होता है। राम के निर्देश से लक्ष्मण, हनुमान आदि प्रमुख वानर वीर मेघनाद से युद्ध करने के लिए प्रस्थान करते है। प्रारंभ में ये वीर योद्धा राक्षसों का वध करते हैं। अतएव मेघनाद निकुम्भला देवी की अराधना करता है और राक्षस समूहो को आदेश देता है कि तब तक वह शत्रुओं को रोक कर रखे, परन्तु लक्ष्मण के तीक्ष्ण बाणों और हनुमान के प्रहारों से राक्षस टिक नहीं पाते है। कुछ मारे जाते है कुछ भाग जाते है। वानर मेघनाद को जाकर घेर लेते है और उसके यज्ञ में विघ्न करते है। कुपित मेघनाद युद्ध करने के लिए उठ खड़ा होता है। दोनो एक दूसरे पर भयंकर बाणों से प्रहार करते है। छठें दिन लक्ष्मण मेघनाद की भुजा को काट देते हैं। वह भुजा सुलोचना के पास जाकर गिरती है। इसके पश्चात लक्ष्मण उसकी दूसरी भुजा भी काट देते है। तत्पश्चात वे उसका सिर भी काट देते है।[128]

यहाँ लक्ष्मण का उत्साह एवं युद्धकुशलता वीर रस की व्यंजना कर रहा है।

भुशुण्डि रामायण में रचयिता ने इसका सर्वत्र ध्यान रखा है। वीर रस की प्रस्तुति समयानुकूल एवं औचित्यपूर्ण है। यही कारण है कि रावणादि शठ पात्रों से सहृदय कभी तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाता है।

6. भुशुण्डि रामायण में भयानक रसगत औचित्य :

भय उत्पन्न करने वाले व्यक्ति, हिंसक पशु, भयानक वस्तु को देखने से भयानक रस की उत्पत्ति होती है। इसका स्थायी भाव 'भय' है। भय उत्पन्न करने वाली वस्तुयें आलम्बन विभाव, भयानक वस्तुओं का उल्लेख उद्दीपन का कार्य करते है। कंप, स्वेद, रोमांच, स्वर भंगादि आदि अनुभाव होते हैं। चिन्ता शंका, जुगुत्सा आदि संचारी भाव होते है। इस सभी शास्त्रीय उपकरणों से परिपुष्ट भयानक रस की उत्पत्ति होती है।

भुशुण्डि रामायण में अनेक स्थलों पर भयानक रस की उचित निष्पत्ति हुयी है। कुम्भकरण के संग्राम में भयानक रस का अवलोकन करें।

---

[127] भुशुण्डि रामायण (दक्षिणखण्ड) अध्याय 204 / 1–11
[128] भुशुण्डि रामायण (दक्षिणखण्ड) अध्याय 237 / 12–18

स पपातमहाभीमो वानाराणां कदम्बके।
आदायादाय हस्ताभ्यां मुख चिक्षेप वानरान्।।
दंष्ट्राभ्यां चूर्णायामास भक्षयामास तान् बहन्।
सहस्त्रशो मुखेन्यस्ताश्च र्व्यन्तो कपयोऽमुना।।
तेषां द्वित्रामुखाद्भष्टाः कूर्दित्वा यान्ति हस्ततः।
तेऽसि क्रुद्धाः कपिभटाः परितो वेष्टयन्तितम्।।
नखदन्तायुधैरूग्रैर्लूयन्तेगांनितैर्भृशम्।
आदायादाय सोऽत्युग्रस्तान् बमक्षा सहस्त्रशः।
केचित्तस्य नखैर्दन्तैर्मुखमामोटयन्ति च।।
केचिद्घ्राणद्वयं केचित्कर्णौकेऽपि विलोचने।।
केऽपि दोर्मूलयुगलं केऽपि वक्षस्थलंपुनः।
तानधिक्षिपते चायं लुवतः परितो वपुः।।
हस्ताभ्यां चैव पादाभ्यां विध्वंसयति वानरान्।
ते ध्वंस्थमाना अपितं न त्यजन्ति महोद्भटाः।।
महाद्रिकन्दराकारं दीर्ण तस्य मुखं रणे।
महोग्रदंष्ट्रा विकटं वीक्ष्य भीताः प्लवगंमाः।।[129]

यहाँ भयानक रस का आश्रय पात्र वानर है। कुम्भकर्ण आलम्बन है, उसकी चेष्टायें उद्दीपन विभाव है। विवर्णता, रोमांच, कम्प आदि अनुभाव है। जुगुप्सा, मोह, आवेग, ग्लानि, शंका, अपसार, संभ्रम आदि इसके व्याभिचारी भाव है। इसी प्रकार भुशुण्डि रामायण में अनेक स्थलों पर भयानक रस की उत्पत्ति हुयी है। जो समयानुकूल है एवं औचित्य से परिपूर्ण है।

7. भुशुण्डि रामायण में वीभत्स रसगत औचित्य :

घृणित वस्तुओं के श्रवण व दर्शन से मन में आकुंचनता उत्पन्न होती है। मन वहाँ से पलायन कर जाता है। वीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा है। काव्यों में वीभत्स रस की अभिव्यक्ति युद्ध आदि के प्रसंगों में होती है।

भुशुण्डि रामायण में यथास्थान वीभत्स रस की व्यंजना हुयी है।

खरदूषण और त्रिशिरा का राम के साथ युद्ध वर्णन में वीभत्स रस की उचित व्यंजना दृष्टिगोचर हो रही है।

उत्कृत्योत्कृत्य मांसोत्करमथ विकटाराविभिः फेरूसंघै
र्युक्ता मत्ताः शिवाल्यः समरभुवि मुहुर्वभ्रमुर्भीमरूपाः।।
काकाःकंकाश्चग्रधाः पृथुतरपललग्रासकेलीर्दधाना।
उड्डीयोड्डीय पक्षध्वनिभरभपदा प्रेतवृन्दे निपेतुः।।
मांसमस्तिष्कपंकेषु प्रमत्ताः फेरुभि शिवाः।
विकटारावकारिण्यः सीदन्तिस्म सतृप्तयः।।

[129] भुशुण्डि रामायण (दक्षिणखण्ड) अध्याय 231/12–18

मेदोमांसवसास्वादसोष्माणः पलचारिणः।
शोणित स्त्रोतसांमध्येचिक्रीडःशमितोष्मणाम्।।
प्रसहय भूतेशगणैः पिशाचैराकृष्यमाणा रूधिरौघमध्य ।
बभुर्निबद्धान्त्रगुणाः कबन्धा नावो यथा सिन्धुषुकर्णधारेः।।
आकर्षन्तो गृध्रनखा ग्रलग्नान्यन्त्राणि युद्धांगणगाः पिशाचाः।
उड्डीयमाना दिवि वातजीवा गुणैर्दधानां इव रेजिरेतराम्।।[130]

यहाँ मांस, रूधिर, चर्बी आदि आलम्बन हैं उनकी उग्रता आदि उद्दीपन है। मोह, अपस्मार, मरण आवेग आदि व्याभिचारी भाव है। इससे पुष्ट 'जुगुप्सा' नामक स्थायीभाव वीभत्स रस की व्यंजना कर रही है।

8. भुशुण्डि रामायण में अद्भुत रसगत औचित्य :

आश्चर्यजनक वस्तु के दर्शन अथवा श्रवण से अद्भुत रस की अनुभूति होती है। इसका स्थायी भाव 'विस्मय' है। आश्चर्य वस्तु आलंबन विभाव, विलक्षणता और आकस्मिकता उद्दीपन विभाव तथा रोमांस स्तंभ स्वेद एवं प्रफुल्लादि अनुभाव होते हैं। जड़ता, आवेग, वितर्क, भ्रान्ति आदि संचारी भाव होते हैं।

भुशुण्डि रामायण में कई अवसरों पर अद्भुत रस की व्यंजना हुयी है।

संग्राम में राम की अद्भुत लीला देखने लायक है। वे अकेले ही हजारों राक्षसों का वध कर देते है–

त्वेषां करविनिर्मुक्ताः सायका रामसायकैः।
सद्योद्विधाकृत्वा युद्धे विनिपेतुः परागताः।।
सहस्त्रं राक्षसा रामे एकसार्थ निपातिनः।
तावद्भिस्तच्छैरैः सदयः परावृत्य निपातिताः।।
रामचापजवोन्मुक्तैर्मल्लैः प्रबलयातिभिः ।
ड्डीयन्तेस्म मूद्धानो राक्षसां श्रीफलोपमाः।।
मूर्द्धानारक्षसा धोरा गिरिगण्डमिताऽपि ।
उड्डीय संगता व्योम्नि दृश्यन्ते लघुसंम्मिताः।।[131]

प्रस्तुत पंक्तियों में अद्भुत रसगत औचित्य का सुन्दर सन्निवेश किया गया है। माता कौशल्या के द्वारा मना किये जाने पर भी राम बदरीफल भक्षण कर लेते है। जब बालक माता को आकर बतलाते है तो राम कहते है कि मैंने बदरीफल नहीं खाया तुम्हें विश्वास नही तो मेरा मुख खोलकर देख लो। कौशल्या राम के मुख में सम्पूर्ण जगत को समुद्र, नदी, वन, पर्वत, देवता, गन्धर्व, मनुष्य को देखकर आश्चर्य चकित हो जाती है।

---

[130] भुशुण्डि रामायण (दक्षिणखण्ड) अध्याय 144/60–44
[131] भुशुण्डि रामायण (दक्षिणखण्ड) अध्याय 144/30

अद्रयः सागरा नद्यो दीपाः ग्रामाः पुराणि च।
नरा देवाश्च गन्धर्वा वनानि भुवनानि च।।
सद्म राममुखेऽपश्यन्माता मंगल्यया सह।
अदृष्टमश्रुतं चैव सर्वाश्चर्यमयं जगत्।।

यहाँ पर राम आलम्बन, विराटरूप उद्‌दीपन, विस्मय स्थायी भाव, स्तंभ अनुभाव, चिन्ता आवेग के संचारी भावों से पुष्ट होकर अद्‌भुत रसगत औचित्य की कुशलता से सृष्टि हुयी है।

9. भुशुण्डि रामायण में शान्त रसगत औचित्य :

शान्त रस में (जिसमें) संसार की क्षण भंगुरता का वर्णन होता है तथा परमात्म चिन्तन से संसारिक भवजाल से मुक्त होने का प्रयास होता है। इसका स्थायी भाव 'निर्वेद' या 'शम' होता है। शम का अर्थ तत्त्व ज्ञान या आत्म ज्ञान द्वारा शान्ति। तत्त्व ज्ञान का तात्पर्य है संसार की क्षण भंगुरता का मर्म समझना। तदुपरान्त परमात्म चिन्तन द्वारा उक्त भावों से निवृत्त होने का प्रयास करना।

भुशुण्डि रामायण में शान्त रस की उचित व्यंजना हुयी है। महाराज दशरथ के द्वारा विभिन्न तीर्थो की यात्रा शान्त रस को प्रकट करती है। सांसारिक भोग विलासों से विरक्त होकर तीर्थ स्थानों के प्रति अभिरुचि निर्वेद भाव की व्यंजक है, महाराज दशरथ संसार की अनित्यता को विचार कर राम से इस प्रकार कहते हैं

अहो रघुकुलश्लाघ्यौ चरित्रैर्गुणवत्तरौ।
युवयोर्वीर्य धनयोर्भुजे न्यस्य धराधुरम्।।
तीर्थयात्राविधिं कर्तुमुद्यतोऽस्मि विशेषतः।
निश्चिन्तोऽहं त्वया राम जगदारामहेतुना।।
पृथिव्यां सप्त द्वीपानि तेषु वर्षाणि भागशः।
तेषु यावन्ति तीर्थानि तानि यास्यामि सादरम्।।
आरभ्य भारतं वर्ष यावन्ति खलु भूतलेः।
वर्षाणीह प्रतिद्वीपं तेषु तीर्थानिः भूरिशः।।
अहं तावत् सुसंगम्य स्नात्वा दत्वा च भक्तितः।
ब्राह्मणेभ्यो गवां कोटीः स्वर्णश्रृंगी पयस्विनीः।।
श्रियं सफलयिष्यामि त्वद्वीर्यबलवृंहिताम्।
भूतानामनुकम्पाश्च कुर्वन्नन्नादिदानतः।।
तेषु तेषु सुतीर्थषु विचारिष्यामि पुण्यकृत् ।
सपत्नीकः सानुगश्च इत्थं मे निश्चला मतिः।।[132]

---

[132] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 100/4–11

दशरथ के इस कथन में शान्त रस की अभिव्यक्ति हो रही है। इसी प्रकार अनेक स्थलों पर शान्त रस की निष्पत्ति देखी जा सकती है।

भुशुण्डि रामायण में दशरथ की तीर्थयात्रा का वर्णन अत्यन्त विस्तार से हुआ है। इन वर्णनों में शान्त रस की निष्पत्ति देखने को मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि की तीर्थ यात्रा वर्णन से विशेष रूचि है। यही कारण है कि भुशुण्डि रामायण में एक सौ एक अध्याय से लेकर एक सौ पैतालीस अध्याय पर्यन्त तीर्थ का विशद विवेचन हुआ है। शान्त रस प्रायः वही उचित रूप से निष्पन्न माना जाता है। जहाँ संसार की कल्मषता का वर्णन प्रधान रहता है और उसकी क्षणभंगुरता को देखकर मन परमात्मा का आश्रय ले ले। यहाँ संसार की क्षणभंगुरता आलम्बन विभाव का कार्य करती है। सन्त समागम तीर्थ दर्शन उद्दीपन रोमांच, पश्चाताप एवं ग्लानि अनुभाव होते हैं। हर्ष, स्मरणादि संचारी भाव होते हैं।

शान्त रस में कवि की दृष्टि सीधे अराध्य पर केन्द्रित रहती है। वे उन्हीं की कृपा से सांसारिक प्रपंचो से मुक्ति पाना चाहते है। उनके लिए भक्ति ही साध्य है और साधन है। भुशुण्डि रामायण में इसी मनोभाव का प्रकाशन हुआ है।

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि शृंगार आदि रस औचित्य पूर्वक संयोजित होने पर ही अलौकिक आनन्दाभूति कराते है। रसों के संयोजन में औचित्य के पूर्ण निर्वाह होने पर ही काव्य में चमत्कार उत्पन्न होता है। अन्यथा अनौचित्य के सम्पर्क से वैराग्य का ही जन्म होता है।

भुशुण्डि रामायण में कवि ने रस संयोजन सहजतया की है। कवि को रस में पूर्ण सफलता प्राप्त हुयी है। औचित्य की दृष्टि से कवि रस संयोजन के निर्वाह में पूर्ण सफल रहा है।

अध्याय तृतीय

क्रिया, कारक, लिंग, वचन विशेषण, उपसर्ग, निपात एवं कालगत औचित्य

तृतीय अध्याय

क्रिया, कारक, लिंग, वचन, विशेषण, उपसर्ग, निपात, कालगत औचित्य

(क) क्रियागत औचित्य

भाषा में क्रिया का महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी भी वाक्य की रचना में क्रिया का ही मुख्य आधार होता है। कारको का महत्त्व भी क्रिया ही निर्धारित करती है। वाक्य में कर्त्ता द्वारा किया गया कार्य ही क्रिया कहलाता है और उस क्रिया के द्वारा किये गये कार्य से प्राप्त फल को कर्म कहते हैं। संस्कृत भाषा में तो क्रिया पद के द्वारा कर्त्ता का ज्ञान कर लेते है जैसे पिबामि क्रिया पद के प्रयोग से अहं जलं पिबामि अर्थ सहज में ही समझ लेते हैं।

क्रिया शब्द अपनी उत्पत्ति के आधार पर भी अपने महत्त्व को सिद्ध करता है। क्रिया शब्द की उत्पत्ति 'कृ' धातु से कर्म में याह् प्रत्यय लगने के अनन्तर स्त्री प्रत्यय टाप के लगने से होती है। इसी प्रकार व्याकरण में भी क्रिया के दो रूप सकर्मक एवं अकर्मक देखने को मिलते है। क्रिया के फल के आधार पर भी क्रिया को आत्मनेपद एवं परस्मैपद नामक दो भागों में विभाजित किया गया है।

"जिस प्रथम क्षण से आरम्भ होकर कोई कार्य जिस अन्तिम क्षण में समाप्त होता है, उस समग्र काल को 'वर्तमान काल' कहते है। यथा– आग जलाना, बरतन को चूल्हे पर रख कर पानी गर्म करना, उसे चावल आदि डालकर कलछी से चलाना, चावलों के गले व अधगले का निश्चय करने के लिए बार–बार थोड़ा–थोड़ा निकाल कर अंगुलियों से मसलकर परीक्षा करना तथा सिद्ध हो जाने पर बर्तन को चूल्हे से नीचे उतारना। इत्यादि क्रियाओं के समूह को पचन क्रिया कहते हैं।"[1]

उपर्युक्त तथ्य को आचार्य भर्तहरि स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "क्रमशः उत्पन्न होने वाली गुण भूत भासमान क्रियाओं का ऐसा समूह है जो बुद्धि द्वारा एकाकार होकर अभिन्न सा प्रतीत होता है। क्रिया के नाम से पुकारा जाता है।"[2] क्रिया आख्यात गम्य है,अख्यातार्थो में क्रिया ही प्रधान मानी जाती है। महाभाष्यकार ने **'क्रिया प्रधानमाख्यातं भवति'** कहा है।

---

[1] लघु सिद्धान्त कौमुदी (भैमीव्याख्या भ्वादि प्रकरण) पृ० 7

[2] गुणभूतैरवयवैः समूहः क्रमजन्मनाम्।
बुद्धया प्रकल्पिताऽभेदः क्रियेतिव्यपदिश्यते।। वाक्य प्रदीप 3/8/4

क्रियौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण–

आचार्य क्षेमेन्द्र ने क्रियागत औचित्य को इस प्रकार परिभाषित किया है –

"जिस प्रकार सज्जनों के दया, बुद्धिमत्ता, व्यवहार तथा कुशलता आदि गुण सुशोभित होते है, उसी प्रकार काव्य में गुण, भाषा आदि तभी सुशोभित होगी, जब वह क्रियागत औचित्य से पूर्ण हो।"[3]

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण

क्रियागत औचित्य के संदर्भ में आचार्य ने क्षेमेन्द्र स्वरचित 'नीतिलता' का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है –

यः प्रख्यातजवः सदास्थितिविधौ सप्ताब्धिसंध्यार्चने,
दोर्दर्पेण निनाय दुन्दुभिवपुर्यः कंकालताम् ।
यः पातालमसृजङ्मयं प्रविदधे निश्पिश्प मायाविनं,
सुग्रीवा ग्रयविभूति लुण्ठन पटुर्बाली स किं स्मर्यते।।[4]

शुक एवं सारण रावण से कह रहे हैं– "क्या तुम सुग्रीव की स्त्री, धन आदि हरण करके उसे निर्वासित करने वाले बालि को याद कर रहे हो? जो बलि संध्या अर्चना करने हेतु सातों समुद्र का चक्कर बड़ी आसानी पूर्वक लगा लेता था जिसने अपनी भुजाओं की शक्ति से दुन्दुभि जैसे राक्षस के शरीर को कंकाल बना दिया था तथा जिस बलि ने सम्पूर्ण पाताल को मायावी मानव राक्षस के खून से रक्तमय बना डाला था।"

इस पद्य में क्या सातों समुद्रों के जल से संध्या पूजन करने, अपने वेग से जल प्राप्त करने, दुन्दुभि नामक राक्षस का वध करने तथा पाताल को मायावी नामक राक्षस के खून से लाल कर देने वाले बलि की याद नहीं आ रही?

इसमें 'स्मर्यते' नामक क्रियापद के माध्यम से रावण को शुक एवं सारणादि के द्वारा यह संकेत किया गया हे कि क्या तुम्हें दुपट्टे के कोने में बाँध कर झोली में नहीं डाल दिया था–यह याद कीजिए। यहाँ 'स्मर्यते' नामक क्रियापद के माध्यम से बलि की वीरता की अभिव्यंजना हुई है वह औचित्यपूर्ण है।

प्रत्युदाहरण – क्रियापदगत अनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने श्रीप्रवरसेन का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है –

स्वर्गमपारिजातं कौस्तुलक्ष्मीभ्यां विरहितं मधुमथनस्योरः।
स्मराम्यमृतमथन पुरोप्यबालचन्द्रं हरजटाप्राग्भारम्।।[5]

---

[3] सगुणत्वं सुवृत्तत्वं साधुता च विराजते।
काव्यस्य सुजनस्यैव यद्यौचित्यवतीक्रिया।। औचित्यविचारचर्चा कारिका 19

[4] औचित्यविचारचर्चा पृ0 115

[5] औचित्यविचारचर्चा पृ0 118

'पारिजात जब नहीं था उस समय के स्वर्ग को, कौस्तुभमणि तथा लक्ष्मी से शून्य विष्णु के वक्षःस्थल को तथा अमृत मंथन के पूर्व बालचन्द्र से विहीन शंकर के जटाजूट का मैं स्मरण कर रहा हूँ।'

प्रस्तुत उद्धरण में जाम्बवान ने 'स्वर्गमपारिजातम्' इत्यादि के द्वारा उत्कृष्ट गुणों के प्रकाशन के प्रसंग में 'स्मरामि' इस क्रियापद का जो प्रयोग किया है, उससे उसका शरीर जरा (वृद्धावस्था) से जर्जर हो गया। केवल इतना ही सूचित किया है। इससे उसके किसी अति विशिष्ट पौरूष की सूचना नहीं मिलती। और वस्तुतः वह इसे अपने पौरूष के वर्णन के प्रसंग में ही कह रहा है अतः यहाँ यह क्रियापद औचित्य पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

भुशुण्डि रामायण में क्रियागत औचित्य–

भाषा भाव संप्रेक्षण की सहज साधिका है। भाषा के द्वारा हम अपने हृदयस्थ भाव को दूसरों पर प्रकाशित करते है। इसलिए भारतीय तत्त्व चिन्तक मनीषियों ने भाषा को शब्द ज्योति के नाम से अभिहित किया है। भाषा में शब्द, वाक्य आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वाक्य के द्वारा हम अपने वक्तव्य को व्यक्त करते है। किसी भी वाक्य में कर्त्ता, कर्म क्रिया का प्रयोग होता है। उसमें क्रिया का विशेष महत्त्व होता है। भुशुण्डि रामायण मे रचयिता ने यथा स्थान क्रिया पद का उचित प्रयोग किया है। जो औचित्य के अनुकूल है। यहाँ पर हम कुछ उद्धरणों के माध्यम से क्रियागत औचित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालते हैं–

नूनं राज्यमदाविष्टः सुग्रीवः कपिपुङ्गवा ।
किष्किन्धानगरीभोगसुखासक्तः क्व मां स्मरेत्।।
मातरं पितरं मित्रं भ्रातरं बान्धवानापि ।
विस्मरन्ति मदाविष्टा यदुक्तं पूर्वमात्मना ।।[6]

प्रस्तुत उद्धरण में 'स्मरेत्' क्रियापद का उचित प्रयोग हुआ है। राम लक्ष्मण से कहते है कि वानर राज सुग्रीव विश्वस्थ रूप से राज्य को पाकर राज्य के मद में किष्किन्धा नगरी का भोग करता हुआ क्या मेरा स्मरण होगा। माता को, पिता को, भाई–बहन, मित्र को जिनको पहले अपना मानते थे मद से विष्ट होने पर भूल जाते है।

समर्थोऽसि स्वयं राम सर्वकार्येषु केवलः।
ने तेऽपेक्षा सहायस्याप्रमेयबल शालिनः।।
महाशयो महावीरो महसाप्रतिमश्च सः।
तस्य मैत्रीं भवांल्लब्ध्वा किं किं नो लप्स्यते शुभम्।।[7]

---

[6] भुशुण्डि रामायण दक्षिण खण्ड, अध्याय 194 / 10, 11

[7] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 176 / 4, 30

हनुमान सुग्रीव से कहते है कि राम तो सभी कार्यो में स्वयं ही समर्थ है। उनके अलावा कोई दूसरा शक्तिशाली सहायक नहीं है। अचानक ही कृपा को वर्षाने वाले उनकी मित्रता आप को क्या–क्या नहीं प्रदान करेगी, अर्थात् सब कुछ प्रदान करेगी। यहाँ 'लप्स्यते' क्रिया पद का उचित प्रयोग किया गया है।

गुञ्जन्ति मत्तभ्रमरा गायन्त इव मत्प्रभुम्।
विधयन्ति कामविशिरवैर्विरहे मम मानसम्।।
सुस्वरं पञ्चमालापैः कूजन्ति पिक बल्लभाः।
अरून्तुदा गिरस्तासां दायन्ति मनो मम्।।[8]

सीता कहती है यह अद्‌भुत वन भी मेरे मन को पीड़ित कर रहा है। तात्पर्य कि राम के वियोग में चराचर जगत की कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लग रही है। यहाँ प्रस्तुत गुञ्जन्ति, विधयन्ति, कूजन्ति, दारयन्ति क्रिया पदों के उचित प्रयोग से क्रियागत औचित्य दर्शनीय हो रहा है।

अयोध्यापुरी भ्रातः काः दशां लप्स्यते शुचा।
आबाल वृद्धस्त्रीलोकजन शब्द विवर्जिता।।
पितरौ परिशोचान यौ रूदन्तौ समुज्झितौ।
शीकाब्धिलहरी वृन्दैर्नोद्यमानौ विचेतसौ।।[9]

यहाँ पर 'लप्स्यते' क्रिया पद का उचित प्रयोग किया गया है।

वनात्वयि निवृत्तेऽपि सम्पूर्णाः स्युर्मनोरथः ।
अमी पक्षिरवैर्वृक्षाः कुर्वन्ति करूणः स्वरान्।।
रोरूवन्ति चिरं क्लिष्टां खग वृक्षेष्वरस्थिताः।
सरः सु गुंजभ्रमरा यामिन्यो विरूवन्ति च।।[10]

यहाँ पर कुर्वन्ति, रोरूवन्ति, विरूवन्ति क्रियापद का प्रयोग अत्यन्त ही मार्मिक है जो सहज ही सहृदयों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

सर्वेद्रुमास्तत्र सरद्रुमोपमाः ।
सर्वेः निधानां निवहाइहासुः।।
सर्वे च ते दिव्य समृद्धयोगा।
ये प्रादरासुः कमलानिकेतने।।[11]

यहाँ पर 'प्रादरासु' क्रियापद का उचित प्रयोग किया गया जो औचित्य की परिधि में है।

क्वचित्स्खलन् क्वचिद्गच्छन् क्वचिद्धावन् क्वचिद्भ्रमन्।
क्वचिद्रुदन् क्वचिज्जल्पन् क्वचिन्मौनमु पाश्रयत्।।[12]

---

[8] भुशुण्डि रामायण पश्चिमखण्ड, अध्याय 66 / 524, 526, 527
[9] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 10 / 84
[10] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 10 / 74,75
[11] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 12 / 6
[12] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 160 / 2,4

यहाँ स्खलन्, गच्छन्, धावन्, भ्रमन्, जल्पन् आदि क्रियापदों का उचित प्रयोग हुआ। सीता के वियोग में राम कभी चलते हुए कभी लड़खड़ाने लगते, कभी बातें करने लगते, कभी मौन हो जाते इस प्रकार सभी क्रियाओं का उचित वर्णन किया गया है। जो सीता के वियोग में उनकी स्थिति (दशा) को दर्शा रहे हैं।

वस्तुतः हम कह सकते हैं कि भुशुण्डि रामायण में क्रियापदों के उचित प्रयोग से रचनाकार को पूर्णरूपेण सफलता प्राप्त हुई है।

(ख) कारकौचित्य –

संस्कृत भाषा में कारक का महत्वपूर्ण स्थान है। **"क्रिया जनकत्वं कारकत्वम्"** क्रिया के जनक को कारक कहते हैं संस्कृत व्याकरण में छः कारक माने गये हैं।

"कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादन अधिकरण" षष्ठी और सम्बोधन को कारक नहीं माना गया क्योंकि इनका क्रिया के साथ साक्षात् सम्बन्ध नहीं है।

कर्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च ।
अपादानाधिकरण इत्याहु कारकाणि षट।।

किसी भी काव्य अथवा नाटक में कारकों के समुचित प्रयोग का भी विशेष महत्व होता है। क्योंकि कारक सम्पूर्ण वाक्य रचना को प्रभावित करते हैं।

पदों के योग से निष्पन्न होने वाले वाक्य में तीन बातों की अपेक्षा की जाती है। "आकांक्षा, योग्यता और आसक्ति" इन तीन तत्त्वों में से आकांक्षा नामक तत्व ही कारकों की आसक्ति भित्ति है। आकांक्षा के ही अन्तराल में कारकों का समूचा व्यापार निहित है।

"येन् पदेन् बिना यस्य पदस्यान्वयानुभावत्वं तेन् पदेन् सहतस्याकांक्षा"

जहाँ एक पद को सुनने के पश्चात् दूसरे पद को सुने बिना पूर्ण अर्थ की प्रतीति न हो पर अगले पद को सुनने की जो इच्छा होती है। उसे आकांक्षा कहते हैं। उदाहरणार्थ – कारक के सुनने के बाद क्रिया, क्रिया को सुनने के पश्चात् करण, करण के श्रवणान्तर उसके द्वारा सम्पन्न होने वाले कार्य आदि को जानने की इच्छा स्वाभाविक रूप से होती है। संक्षिप्त रूप में कारक का आधार ही आकांक्षा है।

कारक शब्द से कर्तव्य शक्ति का ज्ञान होता है अतः कारक शब्द का वाच्यार्थ है 'करने वाला' तदनन्तर यह स्वयं निश्चित हो जाता है कि उसे करने वाला किसी न किसी व्यापार अथवा कार्य का द्योतन करता है इस दृष्टि से कारक का सम्बन्ध क्रिया से होता है।

कारकौचित्य के विषय में आ0 क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण –

सान्वयं शोभते वाक्यमुचितैरेव कारकैः।
कुलाभरण मैश्वर्य मौदार्य चरितैरिव।।'[13]

आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार 'उचित कारकों से काव्य उसी प्रकार रम्यता को प्राप्त होता है जिस प्रकार सत्पुरुषों के साधुचरित से कुलीनता एवं ऐश्वर्यता सम्यता को प्राप्त होती है।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'औचित्यविचारचर्चा' में सभी छः कारकों से सम्बन्धित औचित्य के समीचीन एवं उपयुक्त उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। उन उद्धरणों के माध्यम से हम यहां भुशुण्डि रामायण में कारक गत औचित्य का निरूपण कर रहे हैं।

1. **कर्तपदौचित्य** – वाक्य में क्रिया के सम्पादन का कार्य कर्ता द्वारा ही होता है इसका चिह्न है। कर्तपदौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने 'बाणभट्ट' के निम्न उद्धरण के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया है

स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्ति हृदयशोकाग्नेः।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम् ।।'[14]

'हे राजन, तुम्हारी रिपु स्त्रियों का स्तन युगल अश्रु स्नात होकर हृदय की शोकाग्नि के समीप बैठकर और विमुक्ताहार बनकर व्रत का सा आचरण करता है।'स्त्रियों के व्रत करने के स्थान पर स्तन युग को व्रती कहकर कर्ता का विलक्षण प्रयोग किया गया है जो समस्त कथन में औचित्य की सृष्टि कर रहा है।

प्रत्युदाहरण –

कर्तपदगतअनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ औचित्यविचारचर्चा में कवि परिमल का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है –

आहारं न करोति नाम्बु पिबति स्त्रैणं न संसेवते,,
शेते यत्सिकतासु मुक्त विाय चण्डातपं सेवते ।
त्वत्पादाब्जरजः प्रसाद कणिकालो भोन्मुख स्तन्मरौ ,
मन्ये मालवसिंह ! गुर्जरपतिस्तीव्रं तपस्तप्यते।।'[15]

"हे मालव देश के अधीश्वर, (आपसे पराजित होकर) गुर्जराधिपति मरुकानन में प्रवेश कर, ना तो भोजन करता है और न जल ही पीता है वह स्त्रीजनों का भी सेवन नहीं करता है। बालुओं पर तो वह सोता है भोग सामग्री का परित्याग कर प्रचण्ड सूर्य–किरणों का सेवन करता है। इस प्रकार मालूम

---

[13] औचित्यविचारचर्चा (कारिका 20)
[14] औचित्य विचारचर्चा, पृ0 120
[15] औचित्य विचारचर्चा पृ0 122

पड़ता है कि आपके चरण–कमल को धूलि के कृपालेश को प्राप्त करने के लिए वह भीषण तप कर रहा है।

प्रस्तुत उद्धरण में पराजित गुर्जर नरेश मरुस्थल के घोर जंगल में प्रवेश कर गया है, आहार आदि समग्र विषयों का परित्याग कर सूर्य की प्रचण्ड किरणों को सहते हुए तपस्या कर रहा है। इस कथन से कर्तृपद के विशिष्ट अभिप्राय के ऐसा कुछ प्रतीत नहीं होता जिससे उसका (कर्तृपद का) औचित्य हो सके, क्योंकि शत्रु से भयभीत अतः मरुस्थल के जंगल में शरण लिया हुआ, सम्पूर्ण भोगों से वंचित वह बेचारा और कर ही क्या सकता है? पूर्वकथित "स्तनयुगमश्रुस्नातम्" इस पद्य में जैसा चमत्कार स्तन युग के तप से प्रतीत होता है, उस तरह का चमत्कारिक अर्थ यहाँ कुछ प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार इस श्लोक में कृतपद का अनौचित्य स्पष्ट ही परिज्ञात होता है।

2–कर्मपदगत औचित्य – कार्य का प्रतिफल जिस पर पड़ता है उसे कर्म कहते हैं इसका चिह्न को है कर्मपदगत औचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्वरचित 'लावण्यवती' नामक काव्य के निम्न उद्धरण के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

सदा सक्त शैत्यं विमल जलधारा परिचितं,
घनोल्लासः क्ष्माभृत्पृथुकटकपाती वहतियः।
विद्यत्ते शौर्य श्रीश्रवणनवनीलोत्पलरुचिः,
स चित्तं शत्रूणां ज्वलदनलतापं भवदसिः।।[16]

हे राजन! आपकी कृपाण में स्वच्छधार की शीतलता विद्यमान है, यह अधिक क्रान्ति से युक्त विशाल सेना समूह को गिराती हुई प्रवाहित हो रही है। इसके अतिरिक्त यह आश्चर्य है कि यह पराक्रमरूपी लक्ष्मी के कानों में नवीन नीलोत्पल की तरह सुशोभित हो रही है और शत्रु सेना की आग की भाँति धधकती हुई प्रतीत हो रही है।

प्रस्तुत श्लोक में तलवार को स्वच्छ एवं शीतल जल प्रवाहित नदी के समान दिखाया गया है। तदनन्तर उसके दाह की क्रिया कही गयी है अतः शीतल उपादान से आग के होने का अनोखा औचित्य प्रतिपादित किया गया है, इस कारण सहृदयों के हृदय में एक विलक्षण आनन्द का उद्‌भव हो रहा है। यह चमत्कार कर्म पद के औचित्य के कारण ही हो सका है।

प्रत्युदाहरण –

कर्मपदगत अनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्वरचित 'अवसरसार' का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है –

भग्नाहितश्वसित वातविबोध्यमानः,
काष्ठाश्रयेण सहसैव विवृद्धिमाप्त।

---

[16] औचित्य विचारचर्चा, पृ0 123

तापं तनोति निहतारिविलासिनीनां,
वह्निद्युतिर्भुवननाथ ! भवत्प्रतापः।।[17]

हे महाराज, भागे हुए शत्रुओं के निःश्वास वायु से जलाया गया, दिशाओं के आश्रय से झटिति अत्यन्त बढ़ा हुआ, अग्नि की तरह प्रकाशशील, आपका प्रताप (संग्राम में) मारे गये शत्रुओं की सुन्दरियों के ताप को बढ़ा रहा है।'

प्रस्तुत उद्धरण में संग्राम से भागे हुए शत्रुओं के निःश्वास वायु से प्रज्जवलित किया गया, दिशा के आश्रय से प्रौढ़ता को प्राप्त हुआ, यह कार्य अग्नि तुल्य उस प्रताप के अनुकूल ही है, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उसके विपरीत न जलाना ही आश्चर्यजनक होता।

2. **करणौचित्य** – जिसके द्वारा कार्य सम्पन्न किया जाता है उसे करण कहते हैं इसका चिन्ह 'के द्वारा' है। करणौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने गौड कुम्भकार द्वारा रचित निम्न उद्धरण के माध्यम से प्रस्तुत किया है –

लाङ्गूलेन गभस्तिमान्वलयितः प्रोतः शशी मौलिना,
व्याधूता जलदाः सटाभिरुडवो दष्ट्राभिरुत्तम्भिताः।
प्रोत्तीर्णो जलधिर्दृशैव हरिणा स्वैराट्टहासोर्मिभि,
र्लङ्केशस्य च लङ्घितो दिशि दिशि प्राज्यः प्रतापानलः।।[18]

हनुमान की पूँछ की क्रान्ति से सूर्य, शिर की चमक से चन्द्रमा पीठ पर उगे हुए केशों से मेघ दाँतों की चमक से तारे प्रभावित हो रहे हैं। उनको देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानों उन्होंने आँख से ही सागर को पार कर लिया हो। यही नहीं उन्होंने अपनी अट्टहास रूपी तरंगों से लंकापति रावण के दिशाओं में व्याप्त यश को शीघ्र ही शान्त कर दिया।

प्रस्तुत उद्धरण में समुद्र लंघन करते समय हनुमान जी की पूँछ से सूर्य के मस्तक की चमक से मयंक को पीठ के बालों से बादलों को एवं दाँतों से तारों को अप्रतिम करके अपनी भयानक हंसी से रावण की पतापाग्नि को भी धूमिल कर दिया। इस पकार इन विस्मय बोधक करण कारक जन्य पदों से रामचन्द्र के प्रभाव स्वरूप विजय ध्वज की भाँति कार्य करने वाले हनुमान जी के प्रभाव का औचित्य प्रकट किया है।

प्रत्युदाहरण –करणपदगत अनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि वाणभट्ट का निम्न उदाहरण प्रस्तुत किया है।

जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतो बिभित्सया यः क्षणलब्धलक्षया।
दृशैव कोपारुणया रिपोरुरः स्वयं भयादिभन्नमिवास्रपाटलम्।।[19]

---

[17] औचित्य विचारचर्चा, पृ0 125
[18] औचित्य विचारचर्चा, पृ0 127
[19] औचित्य विचार चर्चा पृ0 सं0 128

"भगवान नृसिंह ने हिरण्यकश्यप के वृक्षःस्थल को फाड़ने की इच्छा से उसे अपनी कोपारूण दृष्टि का लक्ष्य बनाया। क्रोध के कारण उनकी लाल दृष्टि से उनका वृक्षःस्थल लाल हो गया उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो भय के कारण स्वयं हट गया हो और रूधिर से लाल हो गया हो।"

इस उदाहरण में क्षण भर में अपने लक्ष पर टिकने वाली, कोप से आरक्त भगवान नृसिंह की आंखों के द्वारा भय वश स्वयं विदीर्ण हिरण्यकश्यप के वृक्षःस्थल को जो यह कहा गया है वह अत्यन्त अनुचित है। इस प्रकार समृद्ध अनौचित्य "दृशैव" इस करण पद के द्वारा ही उपस्थित हुआ है।

4. **सम्प्रदानौचित्य** – जब कोई वस्तु किसी को दी जाती है तो वह सम्पादनकारक होता है इसका चिन्ह 'के लिए' है।

सम्प्रदानौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने आचार्य भट्टप्रभाकर के निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है।

दिङ्मातंगघटाविभक्तचतुरघाटा मही साध्यते,
सिद्धा सापि वदन्त एव हि वयं रोमान्छिताः पश्यत।
विप्राय प्रतिपाद्यते किमपरं रामाय तस्मै नमो,
यस्मादाचिरभूत्कथाद्मुतमिदं यत्रैव चास्तं गतम्।।"[20]

'दिग्गजों तक फैली हुई समस्त भूमि एक छोटी सी वस्तु की भाँति एक–एक ब्राह्मण को दान में दे दी – इस प्रकार कहते हुए हम रोमांचित हो रहे हैं। ऐसे अनोखे परशुराम को नमस्कार है। इनकी इस प्रकार विलक्षण दानविषयक कथा जहाँ उत्पन्न हुई और वहीं पर समाप्त हो गई।' अर्थात् ऐसा दूसरा उद्धरण न मिलने के कारण उन्हीं में विलीन हो गयी।'

प्रस्तुत उद्धरण में दिग्गजों तक पृथ्वी की प्राप्ति असम्भव है। लेकिन वह भी संभव हुयी किन्तु उस भूमि को तुच्छ वस्तु की भाँति किसी विप्र को दान में दे देना सर्वाधिक आश्चर्यजनक है। इस प्रकार इससे अधिक और कोई क्या कर सकता है? ऐसे अपूर्व महामुनि भार्गव को नमस्कार है, इस कथन में जो उत्कर्ष हो रहा है वह एक मात्र 'विप्राय' इस सम्प्रदान कारक बोध पद की ही महिमा है।

प्रत्युदाहरण – सम्प्रदानगत अनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु कवि राजशेखर का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है–

पौलस्त्यः प्रणयेन याचत इति श्रुत्वा मनोमोदते,
देयो नैष हरप्रसादपरशुस्तेनाधिकं ताम्यति ।
तद्वाच्यः स दशाननो मम गिरा दत्ता द्विजेभ्यो मही,
तुभ्यं ब्रूहि रसातलत्रिदिवयोर्निर्जित्य किं दीयताम्।।"[21]

---

[20] औचित्यविचारचर्चा पृ0 130
[21] औचित्यविचारचर्चा पृ0 132

रावण ने परशु (फरसा) माँगने के लिए भगवान् परशुराम के पास अपना दूत भेजा था। रावण की याचना सुनकर परशुराम कह रहे हैं –

"महर्षि पुलस्त्य के पवित्र वंश के उत्पन्न रावण प्रणयपूर्वक मेरा फरसा माँग रहा है – यह सुनकर मेरा मन फूला नहीं समा रहा है। किन्तु भगवान शंकर के प्रसाद रूप में प्राप्त यह फरसा दिया नहीं जा सकता – अतः मेरा मन अत्यन्त खिन्न भी हो रहा है। तो दूत! तुम मेरी ओर से उस पवित्र कुलोत्पन्न रावण से कहना कि मैने समूची पृथ्वी ब्राह्मणों को दान कर दी है। अब बतलाओ स्वर्ग एवं पाताल में से कौन जीत कर तुम्हें अर्पित करूँ।"

इस उद्धरण में रावण के दूत के द्वारा फरसा माँगने पर भगवान परशुराम कह रहे हैं कि "शंकर के प्रसाद से प्राप्त यह फरसा देने योग्य नहीं है। अतः मेरी ओर से उस रावण से कहना – पृथिवी मैने पहले ही कश्यप को दान में दे दी है। स्वर्ग एवं पाताल में से कौन जीतकर तुम्हें दिया जाय – बतलाओ।" जगत् के कल्याण के लिए प्रवृत्त मुनि भार्गव की, त्रिलोकी के लिए काँटे की तरह दुःखदायी राक्षस रावण को, भुवन दान की बात सर्वथा अनुचित है।

5. अपादानौचित्य – किसी व्यक्ति या वस्तु का किसी निश्चित स्थान से च्युत या गिरने में अपादान कारक होता है।

अपादानौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने मालवरुद्र के निम्न उद्धरण के माध्यम से प्रस्तुत किया है–

एतस्माज्जलधेर्मिताम्बुकणिकाः काश्चिद् गृहीत्वा ततः,
पाथोदाः परिपूरयन्ति जगती रुद्धाम्बरा तारिभिः।
भ्राम्यन्मन्दरकूटकोटिघटनामीतिति भ्रमत्तारकां,
प्राप्यैका जलमानुषी त्रिभुवने श्रीमान भूदच्युतः।।[22]

"मेघ इसी समुद्र से थोड़ा जल लेकर वर्षा करके पृथ्वी को जलमग्न कर देते हैं। इसी तरह उसी समुद्र से भगवान विष्णु मथानी बन कर घूमते हुए मन्दराचल के शिखर के अग्रभाग की रगड़ के भय से चञ्चल नेत्र वाली एक जल स्त्री (लक्ष्मी) को पाकर त्रिलोकी में श्रीमान (लक्ष्मीपति) बन बैठे।"

प्रस्तुत उद्धरण में इसी सागर से परिमित जल कणों को लेकर मेघ संसार को पानी से भर देते हैं तथा इसी से लक्ष्मी को प्राप्त कर भगवान विष्णु श्रीमान बन बैठे इस कथन में सागर की महती महत्ता प्रदर्शित हो रही है और इस महत्ता की मूल भित्ति 'एतस्माज्जलधे' यह अपादान कारक बोधक पद ही है अतः यहाँ अपादानौचित्य का चमत्कार दृष्टव्य है।

प्रत्युदाहरण – अपादानगत अनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि भट्ट इन्दुराज का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है–

---

[22] औचित्यविचारचर्चा, पृ० 134

आदाय वारि परितः सरितां मुखेभ्यः
किं नाम साधितमनेन महार्णवेन।
क्षारीकृतं च वडवादहने हुतं च
पातालमूलकुहरे विनिवेशितं च।[23]

अन्यायपूर्वक धन एकत्रित करने वाले किसी अधार्मिक व्यक्ति के प्रति अन्योक्ति रूप से कोई कह रहा है –"सरिताओं के मुखों से (उनके आहार रूप) जल को छीनकर इस महासागर ने क्या किया? सर्वप्रथम इसने उस जल को खारा करके अपेय बना दिया और फिर वाड्वाग्नि के मुख में हवन कर जला दिया और शेष को पाताल में ले जाकर छिपा कर रख दिया, यही न।"

श्लोक का भाव यह है कि अन्यायी व्यक्ति बिना परिश्रम के कमाए धन का, दूसरे से छीने धन का अपव्यय एवं दुरुपयोग ही करते हैं। इसके लिए सागर प्रत्यक्ष उदाहरण है।

इस उद्धरण में महासागर के बहाने से अन्याय से उपार्जित धन का अपव्यय करने वाले, समुचित व्यय से विमुखी किसी व्यक्ति–विशेष के प्रति कहा जा रहा है। सरिताओं के मुखों से (उनके आहार रूप) जल को छीनकर अपात्रों (वडवाग्नि आदि) को प्रदान करना दूषित कार्य है। यहाँ सरिताओं से जल लेकर ऐसा न कहकर सरिताओं के मुख से ऐसा जो कहा गया है उसमें मुख पद के निरर्थक होने के कारण पर्यवसान में अनौचित्य ही हाथ लगता है। इस प्रकार अपादान बोधक पद की निरर्थकता से तद्गत अपादानगत अनौचित्य ही परिलक्षित होता है।

6. अधिकरणौचित्य –

अधिकरणौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने कालिदास द्वारा रचित कुन्तलेश्वरदौत्य का उद्धरण प्रस्तुत किया है।

महाराज कुन्तलेश्वर का दूत सामन्त की राज्यसभा में गया वहाँ उसे समुचित सम्मान और आसन नहीं मिला। अतः भूमि पर ही बैठते हुए वह कह रहा है –

इह निवसति मेरुः शेखरः क्ष्मधराणा,
मिह विनिहितभाराः सागराः सप्तचान्ये।
इदमहिपति भोगस्तम्भविभ्राजमानं,
धरणितल मिहैव स्थानमस्म द्विधानाम्।[24]

"इस भूमि पर ही पर्वतों का राजा सुमेरु निवास करता है। इसी पर अपने समग्र भार के साथ सातों समुद्र है यह पृथिवी शेषनाथ के फण स्तम्भ पर विराजमान है। अतः इस भूतल पर ही मेरे समान व्यक्ति का बैठना उचित है।"

[23] औचित्यविचारचर्चा, पृ0 137
[24] औचित्यविचारचर्चा, पृ0 139

प्रस्तुत उद्धरण में महाराज का इस सामन्त की राज्य–सभा में गौरव के अनुकूल आदरपूर्ण आसन न पाकर कार्यवश भूमि पर ही बैठता है और विद्वतापूर्ण वचन कहता है। उसके कथन में 'इहैव' यह अधिकरण पर विशेष चमत्कार प्रकट कर रहा है।

प्रत्युदाहरण – अधिकरणगत अनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि परिमल का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है–

तत्र स्थितं स्थितिमनां वरदेव! दैवाद्,
मृत्येन ते चकितचित्त मियन्त्यहानि।
उत्कम्पिनि स्तनतते हरिणेक्षणानां
हारान्प्रवर्तयति यत्र भवत्प्रतापः।।[25]

"हे मर्यादाशास्त्रियों में श्रेष्ठ (राजन्) आपका भृत्य में संयोग से इतने दिनों तक आश्चर्य चकित होकर उस प्रदेश में रहा, जहाँ सुन्दरियों के कम्पनशील स्तन–तट पर लटकते हार को आपका प्रताप उलट–पलट रहा है। अर्थात् आपके प्रताप के भय से लोगों का कलेजा बड़ी तेजी से धड़क रहा है।"

प्रस्तुत उद्धरण में आपका सेवक मैं उस देश में रहा जहाँ आपका प्रताप सुन्दरियों के धड़कते कुचप्रान्त पर हार को उछाल रहा है, इस कथन से राजा के प्रताप की सर्वव्यापकता समाप्त हो जाती है, वह थोड़े प्रदेश में सिमट कर रह जाता है। इस कथन से यह प्रकट हो रहा है कि जिस प्रदेश में मैं गया वहाँ तो आपका प्रताप वैसा था किन्तु दूसरी जगह ऐसी बात नहीं थी। यदि एक स्थान पर राजा का प्रताप फैले भी तो इससे उसके बड़प्पन की सूचना नहीं मिलती। इसलिए यहाँ 'तत्र' इस पद में अधिकरण पद गत अनौचित्य स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है।

भुशुण्डि रामायण में कारकौचित्य –

भुशुण्डि रामायण में कारकौचित्य का उचित प्रयोग दृष्टव्य होता है। हम अधोवर्णित कतिपय उद्धरणों के माध्यम से कारकौचित्य का विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं। अधोवर्णित उद्धरणों में कारकौचित्य दर्शनीय है।

चित्रकूटं परिक्रम्य भरते पुरीम्।
सीतानुजाभ्यांसहितः पर्णशालामधिष्ठितः।।[26]

अधिशीङ्स्थासांकर्मइति इस सूत्र से 'पर्णशाला' पद की कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति कर्मकारक का उचित प्रयोग द्रष्टव्य हो रहा है।

अहं कुद्धोऽब्रवीद रामः सौमित्रे धनुरायन।
अहमेकेन् बाणेन् जलधि खलु शोधये।।[27]

---

[25] औचित्यविचारचर्चा, पृ0 142
[26] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 59/11

'साधकतम् करणमिति क्रिया' की सिद्धि में जो कारक सबसे अधिक सहायक होता है उसे करण कहते हैं यहाँ 'कर्तृकरणयोस्तृतीया इति सूत्र' से अनुरक्त कर्म और करण में तृतीया विभक्ति द्रष्टव्य हो रही है। जब बहुत अनुनय विनय करने पर भी समुद्र प्रसन्न नहीं हुआ। तब राम क्रोधित होकर लक्ष्मण का धनुष उठाकर कहते हैं कि मैं एक ही बाण से निश्चय ही इस समुद्र को सुखा दूँगा। यहाँ बाणेन् पद के प्रयोग से करण–कारक का उचित प्रयोग द्रष्टव्य हो रहा है।

संसार में दो प्रकार की भावनाएं ही प्रमुखतया कार्य कर रही हैं। स्वार्थ और निस्वार्थ। स्वार्थ अपने निज कल्याण की भावना से संयुक्त होता है, जबकि निस्वार्थ दूसरों के कल्याण की भावना से। हमारे देश में असंख्य महापुरुष ऐसे हुए जिन्होंने दूसरों के कल्याण के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया।

रामेहि ब्रह्म परमं सच्चिदानन्द विग्रहम्।
अलौकिकं महत्तेजस्तस्य सूर्यादिषु स्थितम्।।
कि जानन्ति स्वरूपं ते ब्रह्मशेष शिवादायः।
भक्तानामनुकम्पार्ये लीलारूपं समाश्रिता।।[28]

राम को महत्त्वा सर्वविदित है कि यह औचित्य बोध हो रहा है। जो भक्तों पर कृपा करने के लिए लीला रूप में आश्रय लेते हैं। यहाँ कारकौचित्य का उचित प्रयोग दर्शनीय है।

वैशाखदयदिने रामः सुवेलं नाम पर्वतम्।
जगाम वानरैः साकं जित्वा लंकाधिपसुधीः।।
हनुमांश्चैव सुग्रीवो नलनीलांगदादयः।
एतैः कपिवरै सार्द्ध सीतालक्ष्मण संयुत।।[29]

'सहयुक्तेप्रधाने' सूत्र से सह, साकम्, सार्धम शब्दों के योग में अप्रधान में तृतीया विभक्ति होकर करण कारक का उचित प्रयोग द्रष्टव्य है।

अहं तात त्वदिगरो सप्रयत्नं सत्यस्यते पालनार्थ क्षणेन्।
शिरोऽपि स्वं वीत शोक सत्यजेयं कि नाम राज्य भुव एतदल्पम्।।[30]

राम कहते है कि हे पिता मैं आपके सत्य वचन के पालन के लिए राज्य तो क्या मैं क्षणभर में अपना सिर भी तोड़ सकता हूँ यहाँ 'पालनार्थ' में सम्प्रदान कारकौचित्य का उचित निर्वाह हुआ है हमारे देश मे असंख्य ऐसे महापुरूष हुए हैं जिन्होने सत्य वचन के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया यहाँ प्रयुक्त राम के कथन में पालनार्थ पद कारक का उचित प्रयोग द्रष्टव्य है।

---

[27] भुशुण्डि रामायण पश्चिमखण्ड, अध्याय 66 / 314
[28] भुशुण्डि रामायण पश्चिमखण्ड, अध्याय 66 / 542
[29] भुशुण्डि रामायण उत्तराखण्ड, अध्याय 66 / 393
[30] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 8 / 52

लक्ष्मीभराः प्रादुरासुस्तथा संपद्भराअपि।
फलिनोमूरूहाआसन रत्न सूश्चवसुन्धरा।।
कालेववर्ष पर्जन्यः फलन्ति स्म लताद्रुमाः।
मूधरा धातुदातारः स्वर्ण रजादिकान् ।।[31]

राम के कोशल देश में निवास करते ही प्रचुर सम्पत्तियों का प्रादुर्भाव हो गया है। वृक्ष फलों को प्रदान करने लगे, वसुन्धरा रत्नों को मेघ वर्षा को और पर्वत धातुओं को प्रदान करने लगे थे। इस कथन में भगवान राम की महती महत्ता का प्रदर्शित हो रही है। यहाँ पर अपादान कारक का उचित निर्वाह दृष्टिगोचर हो रहा सत्य ही है जहाँ परब्रह्म परमात्मा निवास करें। वहाँ सभी कार्य उनके अनुकूल ही होगें।

चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु नवम्यां श्री पनुर्वसौ।
अभिजित नाम योगोऽसौ कौसल्यानन्दनो भवत्।।[32]

चैत्र के शुक्ल पक्ष से समय की गणना की जा रही है अतः शुक्ल पक्ष में सप्तमी विभक्ति होकर अधिकरण कारक का उचित प्रयोग दृष्टव्य है।

मनुष्याणाम् नृपा श्रेष्ठः मृर्त्यलोके सहस्त्रशः।
स्त्रोतसा सागरो राजा नागानां च हिमालयः।।[33]

अधिकरण संज्ञा सूत्र **'यतश्चेति निर्धारणम्'** से सप्तमी विभक्ति होकर अधिकरण कारक का उचित प्रयोग दृष्टव्य हो रहा है। जाति, गुण, क्रिया संज्ञा के द्वारा अर्थात् इनकी विशेषताओं के कारक जहाँ किसी पदार्थ को अपने जिस समुदाय से प्रथक करता है वहाँ षष्ठी विभक्ति एवं सप्तमी विभक्ति होती है।

रामं विना कथं राज्ञो भवेदस्यास्तथाविधः।
एमद्वेदितुमिच्छामि कथं रामोऽत्र संगतः।।[34]

'प्रथग्विनानानामिस्तृतीयान्यतरस्याम्' – पृथक, विना, नाना के योग में विकल्प से तृतीया विभक्ति और पक्ष में पञ्चमी तथा द्वितीया होती है। यहाँ राम पद में द्वितीया विभक्ति होने से अपादान कारक का उचित प्रयोग द्रष्टव्य हो रहा है।

वस्तुतः भुशुण्डि रामायण में जो भी कारक प्रयुक्त हुए ही सभी में औचित्य विद्यमान हैं हमने विस्तार भय के कारण विस्तृत में न जाकर संक्षिप्त रूप में कारकौचित्य को प्रस्तुत किया है।

[31] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 90/2, 3
[32] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 10/1
[33] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 105/80
[34] भुशुण्डि रामायण पश्चिम, अध्याय 66/516

(ग) लिङ्गौचित्य

संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से लिङ्ग शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ **'लीनम् अर्थ गमयति इति लिङ्गम्'** अर्थात् जो छिपे हुए अर्थ को बोध कराये, उसे लिङ्ग कहते हैं। लिङ्ग के माध्यम से हम किसी वस्तु अथवा व्यक्ति की पहचान करते है। लिङ्ग का अर्थ चिह्न से भी होता है। जिस तरह हम चिह्न के संकेत में किसी वस्तु की पहचान कर लेते है, उसी प्रकार भाषा में लिङ्ग के प्रयोग से हम वस्तु या व्यक्ति की श्रेणी या कोटि की पहचान करते है।

संस्कृत भाषा में लिंग तीन प्रकार के होते है। 1. पुल्लिंग 2. स्त्रीलिंग 3. नपुंसकलिंग, पुरूष वाचक संज्ञाओं के लिए पुल्लिंग और स्त्रीवाचक संज्ञाओं के लिए स्त्रीलिंग और दोनों से भिन्न के लिए नपुसंकलिंग आता है। संस्कृत भाषा की अपनी विशेषता है कि अर्थ कुछ और प्रयोग के अनुसार लिंग कुछ; यथा– महिमा, अग्नि शब्द हिन्दी में स्त्रीलिंग हैं परंतु संस्कृत में पुल्लिंग है। 'दारा' शब्द का अर्थ पत्नी हैं जो स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होना चाहिए परंतु इसका प्रयोग सदा पुल्लिंग में और बहुवचन में ही होता है। इसी प्रकार देवता शब्द सदा स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होता है।

भाषा में यदि अनुकूल लिंग का प्रयोग नहीं होता तो भाषा में अनौचित्य तो आ ही जायेगा साथ ही साथ उसकी सुन्दरता एवं शुद्धता भी समाप्त हो जायेगी। अतः एक प्रतिभा सम्पन्न कवि प्रकरण एवं समयानुकूल लिंग का प्रयोग करके अपने काव्य की सुंदरता में वृद्धि करता है।

लिंगौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण–

आचार्य क्षेमेन्द्र का कथन है कि–

उचितेनैव लिङ्गेन काव्यमायाति भव्यताम्।
साम्राज्य सूचकेनेव भारीरं भुभ लक्ष्मणा।।

"स्त्रीलिंग एवं पुल्लिंग के उचित प्रयोग से काव्य साम्राज्य सूचक शुभ लक्षणों से युक्त शरीर की भाँति सुन्दरता को प्राप्त होता है।"[35]

"अपने मत को स्पष्ट करते हुए आचार्य कहते है कि जिस प्रकार राजचिन्हों से शरीर सुशोभित होता है, उसी प्रकार वर्णनीय अर्थ के अनुसार लिंग का प्रयोग करने से काव्य सुशोभित होता है।"[36]

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण

आचार्य क्षेमेन्द्र ने लिंगगत औचित्य के संदर्भ में स्वरचित 'ललितरत्नमाला' का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है–

---

[35] औचित्यविचारचर्चा, कारिका 21

[36] प्रस्तुतार्थोचितेन लिङ्गेन काव्यं भव्यतामुपयाति राजलक्षणेनेव शरीरम्।। औचित्यविचारचर्चा, पृ0 144

निद्रां न स्पृशति त्यजत्यपि धृतिं धत्ते स्थितिं न क्वचिद्,
दीर्घा वेत्ति कथां व्यथां न भजते सर्वात्मना निर्वृतिम्।
तेनाराधयता गुणस्तवजपध्यानेन रत्नावलीं,
निःसङ्गेन पराङ्गनापरिगतं नामापि नो सह्यते।।[37]

"महाराज उदयन रत्नावली के वियोग में अधैर्ययुक्त एवं निन्दा रहित एक जगह पर स्थिर नही है। वे विक्षिप्त की भाँति इधर–उधर भटकते हैं। किसी का लम्बा वार्तालाप उनके लिए कष्टप्रद है, उन्हें कहीं भी शांति नहीं है। वे उसी का जप, स्तवन और ध्यान करते है तथा जन समुदाय से दूर रहते है तथा किसी अन्य स्त्री का नाम भी सुनना पसंद नहीं करते।"

प्रस्तुत उद्धरण में राजा को नींद नहीं आती धैर्य नही, स्थिरता नहीं एवं लम्बे कथानक व्यथा पहुँचाते है। अशान्तियुक्त होकर हर समय उसी की याद में रहते है। एवं अन्य स्त्री का नाम तक नहीं सुनते।

उपर्युक्त कथन में स्थिति, घृति, कथा एवं निवृत्ति आदि स्त्री लिंग परक पदों के प्रयोग से उनमें स्त्रीत्व का आरोप होने से वाक्यावली अत्यधिक औचित्य युक्त हो गयी है। औचित्य का सुंदर निर्वाह लिंग के उचित प्रयोग से ही सम्भव हो सका है।

प्रत्युदाहरण– लिंगगत अनौचित्य को स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्वरचित 'नीतिलता' का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है–

वरूणरणसमर्था स्वर्गभङ्गैः कृतार्था,
यमनियमनशक्ता मारुतोन्माथसक्ता।
धनदनिधन शय्या लज्जते मर्त्ययुद्धे,
दहनदलनचण्डा मण्डली मद्भुजानाम्।।[38]

रावण अपनी भुजमंडली की प्रशंसा में कह रहा है–वरूण के साथ घनघोर युद्ध करने में समर्थ, स्वर्ग को तहस–नहस करके कृतार्थ यमराज को बाँधने के समक्ष वायु को भी भय डालने में समर्थ, कुबेर की मृत्यु शैय्या तुल्य, अग्नि को भी विनष्ट करने में प्रचण्ड मेरी भुजाओं की मण्डली मनुष्य के साथ युद्ध करने में लज्जा का अनुभव करती है।

प्रस्तुत उद्धरण में भुज मण्डली में जो स्त्रीलिंग का निर्देश किया गया है, वह त्रिलोकी के विजय में सक्षम रावण के प्रताप की कठोरता को कम करता हुआ अनौचित्य को प्रकट करता है। अतः यह श्लोक अनौचित्य का यथार्थ उदाहरण है।

---

37 औचित्यविचारचर्चा, पृ0 145
38 औचित्यविचारचर्चा, पृ0 148

भुशुण्डि रामायण में लिंगगत औचित्य

जब हम लिंगौचित्य पर विचार करते हैं तो रचना की दृष्टि से समान लिंगीय शब्द विशेष रूप से आकर्षण बन जाते है। आकर्षण और औचित्य में अंतर होता है संभव है जो शब्द आकर्षण हो वे औचित्य की सीमा का उल्लंघन कर रहे हो। रचना में औचित्य का महत्त्व तभी है जब शब्दों का प्रयोगशैली तथा भाव धारा दोनों के अनुकूल हो। शैलीगत औचित्य अभिव्यक्ति को सशक्त बनाता है भावधारा का औचित्य मन में अनुकूल या प्रतिकूल स्थिति को उत्पन्न कर सकेगा। जब वह शैली और भाव दोनों के अनुकूल हो। भुशुण्डि रामायण में लिंगौचित्य का यथा स्थान उचित प्रयोग किया गया है। हम प्रस्तुत उद्धरण के माध्यम से लिंगौचित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालते हैं।

शान्तिस्त्वं तुष्टिरेवापि पुष्टिस्त्वं नात्र संशयः।
मेघा प्रज्ञा प्रभा च त्वं विदया त्वं धीर्घृतिः स्मृतिः।।
बुद्धि र्विदयाप्यविदया च सर्व विदयेश्वरी च सा।
सर्वशक्तिमयी देवी सर्वमन्त्रेश्वरी च सा।।[39]

शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, मेघा, प्रज्ञा, प्रभा, स्मृति आदि प्रस्तुत उद्धरण में स्त्रीलिंग परक पदों का उचित प्रयोग होने से वाक्यावली अत्यधिक औचित्य युक्त हो गयी है। अतएव औचित्य का सुन्दर निर्वाह लिंग के उचित प्रयोग से ही सम्भव हो सका।

(घ) वचनौचित्य

सामान्यतः वचन का अभिप्राय संख्या से है। संस्कृत साहित्य तथा व्याकरण शास्त्र दोनों में वचन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत में एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन आदि संख्याओं के रूप में वचन का प्रयोग होता है। व्याकरण में प्रायः इसका प्रयोग संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया तथा विशेषण के अनुसार होता है। संख्या शब्द से एकत्व, द्वित्व, बहुत्व का प्रतिपादन किया जाता है, जिसके द्वारा गणना की जाती है, उसे संख्या कहते है।[40]

वचन और संख्या में दो शब्द है, जिनका व्याकरणशास्त्र के पूर्वाचार्यो ने पारिभाषिक रूप में प्रयोग किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से हमें एकवचन और बहुवचन शब्दों का प्रयोग सर्वप्रथम शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त होता है।[41]

वचनौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण

आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार–

उचितैरेव वचनैः काव्यमायाति चारूताम्।
अदैन्यधन्यमानसां वदनं विदूशामिव।।

---

[39] भुशुण्डि रामायण (दक्षिण खण्ड), अध्याय 66/445, 447
[40] संख्यायतेऽनया संख्येति महाभाष्य 1/1/22
[41] शतपथ ब्राह्मण, 13/5/1/8

"जिस प्रकार दैन्य भाव से रहित उदार ह्रदय वाले विद्वान का मुख सुन्दर हो जाता है, उसी प्रकार वचन के औचित्य से काव्य सुन्दरता को प्राप्त होता है।"[42]

अपने इस कथन को स्पष्ट करते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र कहते है – एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन के उचित प्रयोग से काव्य उसी प्रकार चारूता को प्राप्त होता है, जिस प्रकार दीनता से रहित उदार तथा याचना रहित विद्वान का मुख सम्यक वाणी से चारूता को प्राप्त होता है।

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण – वचनौचित्य के संदर्भ में आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्वरचित नीतिलता का निम्न उदाहरण प्रस्तुत किया है।

त्रैलोक्या क्रमणैर्वराह विजयैनिः संख्यरत्नाप्तिभिः,
प्राख्यातः स्वरसस्वयं वर भातैर्युद्धाब्धिमध्ये श्रियः।
सा वर्यैर्बलिबन्धनै च बहुभिर्नित्यं हसत्युस्थितः,
पौलस्त्यः सकृदुद्यश्रमवशाद्वयासक्त निद्रं हरिम्।।

रामचन्द्र जी के समक्ष शुक रावण की महिमा का वर्णन करते हुए कहते है। वे कहते है कि "रावण ने तीनों लोकों पर आक्रमण किये, वाराह को जीत लिया, अनेक रत्नों की प्राप्ति की, युद्ध रूपी सागर में सैकड़ों बार लक्ष्मी का वरण किया। अनेक बलशाली लोगों को बन्धनग्रस्त किया, वे अपने पराक्रमों के कारण विख्यात है। तथा कभी भी थकते नहीं। वे भगवान विष्णु की अपेक्षा स्वरूप कहते है कि इन्होंने तो केवल वामन वेष रखकर एक बार ही तीनों लोकों पर आक्रमण किया। वाराह रूप धारण करके एक बार ही राक्षसों का वध किया। एक बार ही लक्ष्मी जी का वरण किया तथा मात्र कौस्तुभि ही प्राप्ति की तथा एक बार ही बलि को बन्दी बनाया फिर भी परिश्रम से थके हुए आज तक शेषनाग की शैया पर सोये है।"[43]

प्रस्तुत उद्धरण में शुक एवं सारण के द्वारा रामचन्द्र के सामने रावण के पराक्रम के वर्णन के क्रम में जो यह कहा गया कि विष्णु का एक बार उद्योग करने अनन्तर थक कर निद्रा का आश्रय करने वाले विष्णु की हंसी उड़ा रहा है क्योंकि इसके विपरीत रावण स्वयं अनेक बार त्रिलोकी पर आक्रमण कर चुका है। वाराहों को जीत चुका है, सगर–सागर के बीच कई बार लक्ष्मी के द्वारा स्वयंवर किया है। और बलशाली लोगों को बहुत बार बाँधने के कारण त्रिलोकी प्रसिद्ध हो चुका है। किन्तु फिर भी आलस्य और थकान से रहित होकर सदा उद्योग के लिए तत्पर रहता है। यही कारण है कि विष्णु की सदा हँसी उड़ाता है। इस प्रकार यहाँ बहुवचन के प्रयोग से विष्णु की अपेक्षा रावण में अधिक वैलक्षण्य आ जाता है। अतः यहाँ बहुवचन का प्रयोग अत्यन्त उचित है।

---
[42] औचित्यविचारचर्चा (कारिका 22)
[43] औचित्यविचारचर्चा पृ0 150

प्रत्युदाहरण – वचनगत अनौचित्य का आचार्य क्षेमेन्द्र ने मातृगुप्त के निम्न उद्धरण के माध्यम से स्पष्ट किया।

नायं निशामुखसरोरूहराजहंस,
कीरीकपोलतलकान्ततनु भाशाङ्क।
आभाति नाथ! तदिदं दिवि दुग्धसिन्धु,
डिण्डीरपिण्डपरिपाण्ड यशस्त्वदीयम्

"हे राजन! निशारूपी सुन्दरी के मुख–कमल पर रहने वाला राजहंस रूप, शुकी के समान गंडस्थल के समान पाण्डु यह चन्द्र नहीं है। यह तो दुग्ध सागर के फेन–पिण्ड के समान श्वेत आपका यश ही आकाश में चमक रहा है।"[44]

प्रस्तुत उद्धरण में यह चन्द्रमा नहीं है अपितु क्षीरसागर के फेन के समान तुम्हारा धवल यश है। ऐसा जो कहा गया है वह अनुचित है, क्योंकि यश चारों ओर फैला हुआ है। अतः उसके लिए 'यशांसि' ऐसा बहुवचनान्त प्रयोग समुचित है। किन्तु यहाँ तो 'यशः' यह एक वचनान्त प्रयोग किया गया है। इससे यह यश पिण्डमात्र प्रमाणवाले चन्द्र के बिम्बाकार में संकुचित हो गया है। यही कारण कि इस श्लोक को वचनागत अनौचित के रूप में उद्‌धृत किया है।

भुशुण्डि रामायण में वचनगत औचित्य :

काव्य में चारूता उचित वचनों से ही आती है। उचित वचनों से मुख की शोभा की एक बात है जो व्यंजना शक्ति पर आधारित है परन्तु शब्दों का एक वचन या बहुवचन के प्रयोग व्याकरणगत चमत्कार के अन्तर्गत है। यदि वचनगत प्रयोग किसी भाव विशेष की ऐसी अभिव्यक्ति देता है जो सहृदय समाज को चमत्कृत या आह्लादित कर सके तो वह काव्य प्रयोग का भूषण माना जायेगा। भुशुण्डि रामायण में वचनगत औचित्य की यथास्थान सम्यक व्यंजना हुयी है। हम यहाँ भुशुण्डि रामायण में वचनगत औचित्य पर कतिपय उद्धरणों के माध्यम से सूक्ष्म दृष्टि डालते है।

मत्स्यं कूर्म वराहं नृहरिमयहरि वामनं हंसरूपं,
यज्ञं नारायणाख्यं त्रिभुवन ललितं भार्गवं वैहयास्यम्।
प्रद्युम्नं वासुदेवं कलिमलदमन रेवती प्राणनाथ,
बुद्धं कल्कि यदन्त्ये न भवति सकलं ब्रह्म समं नमामि।।[45]

यहाँ भगवान के विभिन्न अवतारों को व्यंजित किया गया है। जिसमें वचनौचित्य की छटा दर्शनीय है।

अयोध्यापुरी भ्रातः कः दशां लप्स्यते शुचा।
आबाल वृद्ध स्त्रीलोकजन शब्द विवर्जिता।।

---

[44] औचित्यविचारचर्चा पृ0 153
[45] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 1/3

पितरौ परिशोचामि यौ रूदन्तौ समुज्झितौ।
शोकाब्धिलहरी वृन्दैर्नोध्यमानो विचेतसौ।।[46]

प्रस्तुत उद्धरण में यौ, पितरौ, रूदन्तौ, समुज्झितौ, विचेतसौ आदि पदों के वर्णन में द्विवचन का प्रयोग किया गया है।

भीषणां भीषणस्त्वं सुन्दराणां च सुन्दर।
सौम्यानां च तथा सौम्या कठोराणां कठोरकः।।
मृदुनां मृदुलश्चासि पृथूनां त्वं प्रभुः प्रभो।
नियत्तृणां नियन्ता च लोकेशो लोक रक्षिणाम्।।[47]

यहाँ पर राम के गुण वैशिष्ट वर्णन में वचनौचित्य की छटा दर्शनीय है।

अथाहनन् दुन्दुभिवादिनों भुवि,
प्रमोदिताः संसदि देवदुन्दुभीन्।
जगुश्च विद्याधर किन्नरीगुणाः,
प्रबन्ध जन्मोत्सव गायनोद्धुराः।।
दिशां प्रसादः सहसा तदाभवद्
सुरोचिषा रोचित उद्गतो रवि
ययुः सुखस्पर्श करा समीरणाः
नभस्तलं दर्पण निर्मल बभौ।।[48]

भगवान राम के जन्मोत्सव का वर्णन है। उनके जन्म के समय सभी देवता दुन्दुभ बजा रहे हैं। विद्याधर और किन्नरियाँ मनोरम गीत गा रही है। देवता कल्पवृक्षों के पुष्पों की वृष्टि कर रहे हैं। शीतल सुखद स्पर्श वायु बहने लगती है, दिशायें प्रसन्न हो रही है। गगन मण्डल दर्पण के सदृश हो जा रहा है। प्रस्तुत उद्धरण में बहुवचन गत औचित्य का पूर्णतः निर्वाह हुआ है।

राजा दशरथ कहते है राम के राज्याभिषेक के समय संसार के सभी लोग हर्षित हो रहे है। सुन्दर वाद्यय यंत्र महल के चारों तरफ बज रहे हैं। अप्सरायें गीत गा रही है, नृतकियाँ नृत्य कर रही है। राम के राज्याभिषेक के समय नगरी के सभी लोग प्रसन्न हो रहे हैं।

वादयन्ति शुभनादानि वाद्यानि परितोगृहे।
गायन्ति चारू गन्धर्वा वीणानिनदमिश्रितम्।।
नृत्यन्ति नर्तकीवृन्दा मुहुर्मङ्गलगीतयः।
मुदिता नगरी सर्वा सहर्षः सर्वतो जनाऽ।।
रामे त्रिभुवनारामे विरामेऽखिलदुर्हताम्।
राज्येऽभिषिच्यमानेऽद्य हर्षितं सकल जगत्।।[49]

---

[46] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 10/84
[47] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 5/32,33
[48] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 12/1, 21

यहाँ पर बहुवचन का उचित प्रयोग दृष्टिगोचर हो रहा है। जो औचित्य पूर्ण है।

वस्तुतः कवि ने समुचित वाक्य विन्यास के द्वारा भावाभिव्यक्त कर सहृदयों का अनुरंजन किया है।

(ङ) विशेषणौचित्य

भाषा में विशेषण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विशेषण के द्वारा ही विशेष्य का उत्कर्ष या गुण आदि निरूपित करते है। विशेषण के उचित प्रयोग से लिंग, वचन, विभक्ति सभी में शुद्धता आ जाती है।

संस्कृत हिन्दी कोश में विशेषण को इस प्रकार परिभाषित किया गया है – "वह शब्द जो किसी दूसरे शब्द की विशेषता प्रकट करे विशेष्य कहलाता है।"[50] काव्य या नाटक में तो विशेषणों का औचित्य पूर्ण निर्वाह का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। उचित विशेषणों के प्रयोग द्वारा कवि अपने वर्ण्य विषय की चारूता का सहजता में प्रयोग करता हैं। यही कारण है कि कभी–कभी काव्य में एक विशेष्य के अनेक विशेषण प्रस्तुत कर दिये जाते हैं। व्याकरण में काव्य प्रयोग में विशेषण न हो तो पद परिचय का क्षेत्र अतिन्यून हो जाता है। इस प्रकार विशेषण केवल नाम पदों या सर्वनाम पदों तक ही सीमित नहीं रहता अपितु क्रिया के साथ सम्बद्ध होने पर क्रिया विशेषण का नाम धारण कर लेता है। क्रिया विशेषण की स्थानगत, कालगत, परिणामगत तथा रीतिगत विशेषता प्रकट करने वाले पद क्रिया विशेषण अव्यय कहलाते है। अलंकारों के क्षेत्र में भी विशेषणों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्लेष में विशेष पद द्वयर्थक होते हैं। विरोधाभास में वही विशेषण पद विरोध को आभासित करते है। सूक्ष्म दृष्टि से विशेषण का वास्तविक अर्थ समझने पर विरोध का परिहार होता हैं समासोक्ति का अभिप्राय भी विशेषणों पर आधारित है। "**समासोयित्तास्तु सा प्रोक्ता साभिप्रायैविशेषणैः**[51] साभिप्राय विशेषणों द्वारा ही प्रकृत से अप्रकृत अर्थ का बोध होता है। चमत्कार पूर्ण विशेषणों की अलंकारता मानकर ही प्राचीन अलंकारियों में परिकर अलंकार की सत्ता स्वीकार की इस प्रकार शब्द शास्त्र, साहित्य शास्त्र, काव्य व्यवहार आदि में विशेषणों का महनीय स्थान है।

विशेषणौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण

आचार्य क्षेमेन्द्र का मत है कि –

विशेषणैः समुचितै विशैष्योऽर्थः प्रकाशते।
गुणाधिकैर्गुणोदारः सुहृदिभरिव सज्जनः।।

---

[49] भुशुण्डि रामायण दक्षिण खण्ड, अध्याय 7/33, 34, 35

[50] संस्कृतहिन्दीकोश

[51] औचित्यविचारचर्चा – आचार्य क्षेमेन्द्र

"जिस प्रकार गुणवान मित्रों के द्वारा गुणी पुरुष सुन्दरता को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार अनुरूप विशेषणों से विशेष्य अर्थ चमत्कृत हो जाता है।"[52]

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण

विशेषणौचित्य के संदर्भ में आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्वरचित 'मुनिमत मीमांसा' का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है।

चैत्रे सूत्रितयौवनान्युपवनान्यामोदिनी पद्मिनी,
ज्योत्स्ना प्रावरणानि रत्नवल भी हर्म्याणि रम्याः स्त्रियः।
सर्वं चारुतरं न कस्य दयितं यस्मिस्तु तद्भुज्जते,
तन्मृन्निर्मितमाममाजमिव क्षिप्रक्षयं जीवितम्।।[53]

"बसन्त ऋतु में यौवन से युक्त वाटिका, मस्त कर देने वाली कमिलनी की सुगन्ध, चाँदनी की चादरों से सुशोभित रत्नों की भाँति छज्जे वाली बड़ी–बड़ी अट्टालिकाएँ एवं स्वभाव से आकर्षक रमणियाँ किसे अच्छी नहीं लगती? परन्तु जिस जीवन में इनका उपभोग किया जाता है, वह कच्ची मिट्टी के घड़े की भाँति सारहीन एवं क्षययुक्त है।"

यहाँ पर जीवन रूपी वैशिष्टता सिद्ध करने के लिए क्षिप्राक्षयादि विशेषण पदों से उत्पन्न सौन्दर्य औचित्य को प्राप्त हो रहे है, जो निर्वेद के अनुरूप अन्ततः वैराग्य का समर्थन करता है।

प्रत्युदाहरण – विशेषणगत अनौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने भट्टलट्टन का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है।

ग्रीष्मं द्विषन्तु जलदागममर्थयन्तां,
ते संकटप्रकृतयो विकटास्तडागाः।
अब्धेस्तु मुग्धशफरीचटुलाचलेन्द्र
निश्कम्पकुक्षिपयसो द्वयमप्यचिन्त्यम्।।[54]

"संकुचित स्वभाव वाले, देखने में विस्तृत (भीषण) लगने वाले वे (सूखे) तालाब ग्रीष्म ऋतु की निन्दा एवं वर्षा की अभ्यर्थना भले ही करें किन्तु भोली–भाली मछली की तरह चलायमान मन्दराचल से भी क्षुभित न होने वाले सागर के लिए तो दोनों ही (ग्रीष्म एवं वर्षा) अकिञ्चित्कार हैं अर्थात सागर के लिए ये दोनों ही ऋतुएं समान है। क्योंकि वह न तो ग्रीष्म में तिल भर सूखता है और न वर्षा में तिलभर बढ़ता ही है।" प्रस्तुत उद्धरण में संकुचित स्वभाव वाले तथा विस्तीर्ण तडाग ग्रीष्म की निन्दा करें अथवा वर्षागम की प्रार्थना करें किन्तु छोटी मछली की प्रतीत होने वाले चलायमान मन्दराचल से भी निश्चल आभ्यान्तारिक जलवाले सागर के लिए तो ग्रीष्म तथा वर्षागम अगणनीय है।

---

[52] औचित्यविचारचर्चा कारिका –23
[53] औचित्यविचारचर्चा पृ0 156
[54] औचित्यविचारचर्चा, पृ0 158

ऐसा जो कहा गया है। उसमें परस्पर विरूद्ध अर्थ वाले तडाग के विशेषण रूप में प्रयुक्त संकट और विकट पद का अनौचित्य स्पष्ट ही प्रतीत हो रहा है, क्योंकि संकट (संकुचित) स्वभाव वाले के लिए विकटता अर्थात (विस्तीर्णता) उपयुक्त नहीं प्रतीत होती। यदि कहा जाये कि उनके स्वभाव में संकुचितता और आकार में विकटता है तो भी ठीक नहीं है। क्योंकि स्वभाव तो चेतन में रहने वाला धर्म है। और तडाग है अचेतन। अतः यह उद्धरण विशेषणानौचित्य की दृष्टि से उचित है।

भुशुण्डि रामायण में विशेषणगत औचित्य

भुशुण्डि रामायण में कवि ने आवश्यकतानुसार विशेषणों का उचित प्रयोग किया है। चाहे वह राम, सीता का सौन्दर्य वर्णन हो अथवा प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन हो सर्वत्र विशेषणौचित्य दर्शनीय होता है। राम के सौन्दर्य वर्णन में विभिन्न प्रकार के विशेषणों का प्रयोग उनकी सुन्दरता के अनुरूप एवं उचित है। रचनाकार ने अपने अराध्य राम के सौन्दर्य पर मुग्ध हो अनगनित विशेषणों का उचित प्रयोग किया है। चाहे ब्रह्म राम हो, बालरूप राम को, जनकपुर में राम स्वयंवर में राम, युद्ध खरात आदि समस्त रूपों में राम के रूप सौन्दर्य और विशेषताओं पर मुग्ध होकर मानो विश्राम ही नहीं लेना चाहती। समस्त विशेषण राम की सुन्दरता और उनके गुणों को प्रकट करते हैं। साथ ही अत्यन्त उचित रूप में भी प्रयुक्त हुए हैं।

सलिलनिधि गम्भीरः सर्वलोकैकवीरः स्थिरतममतिधीरः सूर्यवंशैकहीरः।
सुरभियश उशीर स्वर्णवर्णाच्छचीरः श्रितविपिन कुटीर यातु नो रामवीरः।।[55]

राम के सौन्दर्य वर्णन में विभिन्न प्रकार के विशेषणों का प्रयोग उनकी सुन्दरता के अनुरूप एवं उचित है।

स जातमात्रो निविडाम्बुकृतिः
पीताम्बरः सुस्मित वक्रपंकजः।।
भुजद्वयो वाणवरादि चिह्नितः।
स्ववाम भागे श्रियमुत्तमां दधद्।।[56]

कवि ने राम के सौन्दर्य को श्याम मेघ के समान सुन्दर आकृति युक्त, मुख कमल के समान मुस्कान से सुशोभित, पीले वस्त्र धारण किये हुए रत्नजड़ित आभूषणों आदि से सुशोभित बताया है। प्रस्तुत उद्धरण में कवि राम विशेष्य की श्याम मेघ के समान विशेषता बतायी है। सुस्मित वक्र पंकजः, पीताम्बरः, निविडाम्बुकृति आदि विशेषण पदों का उचित प्रयोग किया है। जिस प्रकार मेघ के समान श्यामल रंग पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता है वह सदैव एक सा रहता है। उसी प्रकार श्री राम का श्यामल रंग उनके अच्युत भाव का द्योतक है। यहाँ कवि ने श्रीराम के लिए प्रयुक्त सभी विशेषणो की उचित रूप में प्रस्तुति की है।

---

[55] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 1/6
[56] भुशुण्डि रामायन पूर्वखण्ड, अध्याय 10/3

रत्नाकल्प मनोज्ञाभिः कान्तपीयूष वृष्टिभिः।
सहस्त्राधिकरामाभिः संसेवित शुभाननाम्।।
कल्याण कारिर्णी दिव्यां दिव्यकेलि विभूषिताम्।
निज वामासंसक्तां सहजानन्दरूपिणीम्।।[57]

कवि ने सीता के लिए सहजानन्दरूपिणी, मनोज्ञाभि, कल्याणकारिणी आदि सभी विभूषण पदों का उचित प्रयोग किया है। जो उनके गुण वैशिष्ट को दर्शा रहा है।

कोटि ब्राह्माण्ड लक्ष्मी नाममंशिनी ब्रम्हरूपिणी।
आद्या श्री र्भविता तस्य तोषणार्थ तु जानकी।।[58]

ब्रह्माण्डलक्ष्मी, नाममंशिनी, ब्रह्मरूपिणी आदि नामों की प्रस्तुति कर कवि ने जानकी के लिए सुन्दर विशेषणों का प्रयोग किया है। जो औचित्य का बोध कर रहा है।

कवि ने ग्रन्थ के पूर्वखण्ड में सीता के लिए घटस्तनी (घड़े के समान स्तन वाली) मञ्जुविग्रहा (सुन्दरआकृतिवाली) मृदुस्मितदयोतविभासितानना, मनोहरापांग विभूषितेक्षणा (सुन्दर तीक्ष्ण नेत्रों से सुशोभित) सुकण्ठकण्ठा (सुन्दर आवाज वाली) चारू कपोल शोभना (सुन्दर कपोल वाली) प्रसून चित्रीकृतचारूवेणिका, अनेक विशेषणों का सुन्दर प्रयोग किया है।[59]

रूक्मिणी कमलाकान्ता कान्ति कमललोचना।
किशोरी रामललना कामुकी कारूणानिधिः।।
सुस्मिता सुस्मितमुखी तारका सुखदेक्षणा।
रक्षणी चित्रकूटस्था वृन्दावन महेश्वरी ।।[60]

कवि ने सीता के लिए रूक्मिणी, सुस्मिता, वृन्दावन महेश्वरी आदि नामगत विशेषणों का उचित प्रयोग किया है। जो उनके सौन्दर्य की श्री वृद्धि तो कर ही रहे हैं साथ ही साथ विशेषणौचित्य के उचित प्रयोग को दर्शा रहे है।

सरयूः प्रेमसरयूः प्रेमानन्द सरोजला।
प्रेमपूर्णा प्रेममयी प्रेमतोया महोदका।।
रामगंगा रामनदी रामप्रेमा महानदी ।
सुधावर्णा चन्द्रवर्णा घनसार रसोदका।।
रसात्मिका रसमयी रसपूर्णा रसोदका।
रसा रसप्रिया रस्या रसारम्या रसावहा।।[61]

---

[57] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 34/5, 6
[58] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 9/ 2
[59] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 27/21, 27
[60] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 27/27, 28
[61] भुशुण्डि रामायण पश्चिमखण्ड, अध्याय 30/10–12

कवि ने सरयू नदी के लिए प्रेमपूर्णा, रामगंगा, सुधावर्णा, चन्द्रवर्णा आदि विशेषणों का उचित प्रयोग किया है। कवि ने भुशुण्डि रामायण के पश्चिमखण्ड के 36वें अध्याय में सरयू नदी के लिए अनेक विशेषणों का प्रयोग किया है। जो कवि के विशेषण पदों के उचित प्रयोग को दर्शा रहा है।

निविडाम्बुधरं श्यामं श्रीमदाजीवलोचनम्।
आकाशनीलवपुषं तुनांनासाविराजितम्।।
केयूरिणं प्रविलसत्कटकं मणिमालिनम्।
माणिक्य रत्नमुकुट स्फुरन्मकरकुण्डलम्।।
करूणाचपलापाङ्ग पीताम्बर विराजितम्।
श्री वत्सवक्षसं भूरिगम्भीरावर्तनाभिकेम्।।

प्रस्तुत उद्धरणों में विशेषण पदों का उचित प्रयोग द्रष्टव्य हो रहा है। जो शीघ्र पाठकों के ह्रदय में एक विशिष्ट चित्र अंकित कर देता है।

इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि कवि ने विशेषणों का यथास्थान उचित प्रयोग किया है। कवि विशषणों के प्रयोग में सिद्धहस्त है। जहाँ पर जिस स्थान पर विशेषणो की आवश्यकता हुयी कवि ने उसे सहज रूप में उपस्थित कर दिया है।

(च) उपसर्गौचित्य

संस्कृत भाषा में उपसर्गो का विशेष महत्त्व है। उपसर्ग के द्वारा धातुओं एवं पदों का अर्थ परिवर्तित हो जाता है। उदाहरण के लिए हृ धातु से निष्पन्न हर शब्द के पूर्व जब प्र उपसर्ग प्रमुख होता है तो वह प्रहार बन जाता है। अ उपसर्ग के प्रयुक्त होने पर आहार, सम उपसर्ग के प्रयुक्त होने पर संहार, वि उपसर्ग प्रयुक्त होने पर विहार, परि उपसर्ग के प्रयुक्त होने पर परिहार, उप उपसर्ग के प्रयुक्त होने पर उपहार, अनु उपसर्ग के प्रयुक्त होने पर अनुहार, अप उपसर्ग के प्रयुक्त होने पर अपहार इत्यादि शब्द निर्मित होते है। भिन्न–भिन्न उपसर्गो के प्रयोग से अनेक अर्थ परिवर्तित हो जाते है। अतएव संस्कृत भाषा में प्रयुक्त उपसर्गो का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये उपसर्ग इस प्रकार हैं– प्र, परा, अप, अ, सम, अनु, अव, निस, निर, दुस, दुर, वि, आङ्, नि, अधि, अति, अपि, सु, उत, अभि, प्रति, परि, तथा उप।[62]

अ इधर के अर्थ में तथा प्र और परा अ के विपरीत अर्थ को, अभि सामुख्य को तथा प्रति इसके विपरीत अर्थ को, अति तथा सु आदर, सम्मान अर्थ में और निर तथा दुर इन दोनों के विपरीत अनादर अर्थ को, नि तथा अव विनिग्रह अर्थवाले तथा उत इस विनिग्रह के विपरीत अर्थ वाले, सम एकत्व को तथा अनु सादृश को, उप उपजन (आधिक्य) को परि चारों ओर होने को, अधि का अर्थ ऊपर होना अर्थ को प्रकट करता है। इस प्रकार उपसर्ग अनेक अर्थो को अच्छी तरह कर सकते है।

[62] संस्कृत हिन्दी कोश पृ0 212

उपसर्गो का संस्कृत के प्राख्यात कवियों ने पद संरचना एवं भाषा सौष्ठव के निमित्त सहज प्रयोग किया है। इन उपसर्गो द्वारा जहाँ एक ओर अर्थ परिवर्तन होता है, वही दूसरी ओर भाषा के सौन्दर्य में श्रीवृद्धि होती है।

उपसगौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण

आचार्य क्षेमेन्द्र का कथन है कि–

योऽयोपसर्ग संसर्गैनिरगल गुणो चिता।
सूक्तिविवर्धते सम्पत्सन्मार्ग गमनैरिव।।

उचित उपसर्गो के प्रयोग से गुण वाली सुक्ति की सुन्दरता उसी प्रकार बढ़ जाती है जिस प्रकार उचित मार्ग पर चलने से सम्पत्ति बढ़ जाती है।[63]

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण

उपसगौचित्य के संदर्भ में आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्वरचित 'मुनिमतमीमांसा' का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है।

आचारं भजते त्यजत्यपि मदं वैराग्य मालम्बते,
कर्तुं वाच्छति संगभंगगलितोत्तुंगाभिमानं तप ।
देवन्यस्त विपर्ययैः सुखशिखाग्रभ्रष्टः प्रणष्टो जनः
प्रायस्तापविलीनलोहसदृशोमायाति कर्मण्यताम्।।[64]

"भाग्यवश जिन्दगी में कुछ उलट–पलट आ जाने के कारण कोई व्यक्ति सुख एवं सम्पत्ति की चरम सीमा पर पहुँच कर फिर नीचे गिरकर चूर–चूर हो जाता है, तब वह दाह से पिघले हुए लोहे की भाँति कर्मण्य बन जाता है। वह सदाचारी हो जाता है, अभिमान रहित होकर वैराग्य की ओर उन्मुख हो जाता है। इस प्रकार तपे हुये लोहे की भाँति उसका स्वभाव भी सरल हो जाता है।"

दुर्योधन का घोष यात्रा के समय में गन्धर्वो द्वारा पराजित हो जाने से उसका गर्व चूर–चूर हो जाता है। यहाँ राज्य को छोड़कर तपस्या करने में लगे हुए दुर्योधन के दुराग्रह का वर्णन किया गया है कि सभी मनुष्य सुख संपत्ति से रहित होने पर सदाचार का आचरण कर घमण्ड का त्याग कर वैराग्य का सहारा लेते है तथा विषय सम्पर्क हीन हो जाने के कारण घमंड चूर होने पर तप करने की कामना करते है। अधिकतर लोग ताप से गलित लौह पिंड की भाति स्वभावतः सरल हो जाते है। इसमें उत् उपसर्ग से युक्त होने के कारण तुगं शब्द का उन्नति रूप दो गुना हो जाता है और इसमें अभिमान रूप अर्थ का औचित्य अत्यन्त बढ़ जाता है।

प्रत्युदाहरण – उपसर्गगत अनौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि कुमारदास के निम्न उद्धरण के माध्यम से स्पष्ट किया है–

[63] औचित्यविचार चर्चा, कारिका – 24-
[64] औचित्यविचार चर्चा, पृ0 161

अयि विजदीह्यिदृढ़ोपगूहनं त्यज नवसंगम भीरू! वल्लभम्,
अरुण करोद्गम एश वर्तते वरतनु !सम्प्रवदन्ति कुक्कुटाः।।[65]

नव यौवना नवागता वधू संगम में विलीन थी। सारी रात प्रमोदों में बीत गई है उसे इसका भान भी नहीं है। उसकी सखी उसे प्रातःकाल होने की सूचना देती हुयी कह रही है–

"अरी सखि, अब गाढ़ालिंगन का त्याग करो। हे नवीन मिलन में भीरू सुन्दरी, प्रियतम को छोड़ो। हे सुकुमार शरीर वाली, यह सूर्य की प्रातः कालीन सुनहरी किरणें आकाश में झाँक रही है। देखो, मुर्गो ने बोलना प्रारम्भ कर दिया है अर्थात् केलि मन्दिर से बाहर निकलो।" प्रस्तुत श्लोक मे प्रियतम को छोड़ो, प्रातः संध्या का अरूणोद्गम होने वाला है और मुर्गो ने भी बोलना शुरू कर दिया है। इसमें 'सम्प्रवदन्ति' का प्रयोग कर 'सम' और 'प्र' रूप उपसर्ग का जो व्यवहार किया गया है उसका कुछ विशेष अर्थ नहीं होता है। यह अर्थ तो उपसर्ग विहीन वदन्ति से भी व्यक्त हो जाता है। अतः 'सम' एवं 'प्र' का निरर्थक प्रयोग होने से यह उद्धरण उपसर्गो के अनौचित्य प्रयोग को दर्शा रहा है।

भुशुण्डि रामायण में उपसर्गौचित्य :

संस्कृत के प्राख्यात कवियों ने पद संरचना एवं भाषा सौष्ठव के निमित्त उपसर्गो का सहज प्रयोग किया है इन उपसर्गो के प्रयोग द्वारा जहाँ एक ओर अर्थ परिवर्तित होता है वहीं दूसरी ओर भाषा के सौन्दर्य में संवृद्धि होती है। भुशुण्डि रामायण में यथास्थान उपसर्गो का उचित प्रयोग दिखाई पड़ता है। कतिपय उद्धरणों के माध्यम से हम भुशुण्डि रामायण में उपसर्गौचित्य का अवलोकन करते हैं। बालक राम के मुखाविन्दु को अवलोकर कर वात्सल्य प्रेम सागर में अकण्ठ निमग्न माता कौशल्या बार–बार पुत्र राम के मुख को चूम कर परमानंद को प्राप्त करती है।

निरीक्ष्यती तद्वदनेन्दुमादराद ।
दृष्टवा तु वात्सल्य रसानुविद्धा।।
मुहुः परिष्वज्य च चुम्बितानना ।
गोपी परमानंद पदं समम्यगात।।[66]

प्रस्तुत उद्धरण में नि, सम, परि, उपसर्ग का प्रयोग दृष्टव्य होता है। ईक्ष देखने के अर्थ में नि उपसर्ग निरीक्ष्यती निरीक्षण करता है। उपसर्ग का उचित प्रयोग हुआ है।

यथा पितु स्वर्गपद निपातो भवेन्न सत्यापित क्रमाद जसन्।
तथा कार्य ननु पुत्रेण लोके विपर्या सश्चेन्न सपुत्रः सुपुत्रः।।[67]

---

[65] औचित्यविचार चर्चा, पृ0 164
[66] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 20/5
[67] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 14/23

प्रस्तुत उद्धरण में सुपुत्र शब्द में सु उपसर्ग का सुन्दर प्रयोग किया है। पुत्र में सु (सुन्दर) उपसर्ग लगाकर सुपुत्र अर्थात सुन्दर पुत्र अर्थ हो गया। निश्चय ही सु उपसर्ग से अर्थ परिवर्तित हो गया।

सुस्मिता सुस्मितमुखी तारका सुख देक्षणा।
रक्षणी चित्रकूटस्था वृन्दावन महेश्वरी ।।
कन्दर्प कोटि जननी कोटिब्रह्माण्ड नायिका।
शरण्या शारदा श्रीश्च शरत्काल विनोदनी।।[68]

सुस्मिता, सुस्मित पदों में सु उपसर्ग का उचित निर्वाह हुआ है। स्मित का अर्थ मुस्कान युक्त सु उपसर्ग लगने से अच्छी मुस्कान वाली इस अर्थ से होता है।

मुक्ताहाराभिरामं मणिमुकुट समाबदघसद्रत्नगुच्छ ।
मन्दस्वच्छामृताब्धि प्रतिमविहसितं चारू बिम्बोष्ठकान्तिम्।।[69]

यहाँ सम, प्रति उपसर्ग का यथा स्थान उचित प्रयोग किया गया है। जो औचित्य पूर्ण है। सम उपसर्ग का प्रयोग भाषा सौष्ठव की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है।

लक्ष्मीभराः प्रादुरासुस्तथा संपद्मराअपि ।
फलिनो भूरूहा आसन् रत्नसूश्च वसुन्धरा।।
काले ववर्ष पर्जन्य फलन्ति स्म लताद्रुमाः।
भूधरा धातु दातारः सुवर्ण रजतादिकान्। ।[70]

प्रस्तुत उद्धरण में प्र, सु, उपसर्ग का यथा स्थान उचित प्रयोग किया गया है।

प्रदयोतिनी विशालाक्षाः विनीताः शुद्धविग्रहः।
सर्व प्रघृष्टयववुषः सर्वविद्या विभूषितः ।।[71]

प्र, वि उपसर्ग का उचित प्रयोग दृष्टिगोचर हो रहा है।

गच्छन्ती प्रवशन्ती च तिष्ठन्ती विहितासनाम् ।
सुप्तां प्रसुप्तां भवती रक्षन्तां देवतागणः ।।[72]

यहाँ पर प्रसुप्तां में प्र उपसर्ग का उचित प्रयोग किया गया है। सुप्ता का अर्थ सोते हुए प्र उपसर्ग जुड़ने पर अर्थ परिवर्तित होकर जागते हुए हो जाता है। यहाँ प्र उपसर्ग का प्रयोग औचित्य पूर्ण है।

ज्वलितं प्रज्वलितकं सुप्रज्वलितकं तथा ।[73]

---

[68] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 14/9–10
[69] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 1/3
[70] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 90/2, 3
[71] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 14/25
[72] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 122/ 19

अति प्रज्वलितं चैव ज्वलिता ज्वलितं तथा।।

यहाँ प्र, सु, उपसर्ग का उचित प्रयोग दृष्टव्य होता है।

सुलीलां सुदतीं सूर्मि सुकपोलां सुहासिनीम ।
सुलापां सुकवित्वाख्यां सुभाग्यां सुमनोहराम्।।[74]

प्रस्तुत उद्धरण में सु उपसर्ग का उचित प्रयोग किया गया है। जो भाषा सौष्ठव की दृष्टि से भी विशेष महत्त्व रखता है।

प्रपदौ पादुके तस्मै भरताम महाभुजः ।
ते गृहीत्वा प्रभोवीरः प्रहर्ष किंचिदाव्रजत् ।।
ततः स रामचन्द्रस्य कृत्वा भक्त्याप्रदक्षिणां।
महानागेन्द्र शिरसि पादुके समरोपयत् ।।[75]

प्र, सम उपसर्ग का यथा स्थान उचित प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार हमे ज्ञात होता है कि भुशुण्डि रामायण में उपसर्गों के प्रयोग में रचनाकार को पूर्ण सफलता प्राप्त हुयी है। कवि उपसर्गों के प्रयोग में सिद्धहस्त है। जहाँ जिस उपसर्ग की आवश्यकता प्रतीत होती है रचयिता ने उसे सहज रूप में उपस्थित कर दिया है। एक विशेष बात यह है कि कवि का उपसर्ग प्रयोग सहज स्वाभाविक एवं नैसर्गिक है कहीं भी कृत्रिमता नहीं दिखलायी पड़ती है। उपसर्ग धातुओं और शब्दों के साथ घुल–मिल कर उसके अंग जैसे प्रतीत हो रहे है।

(छ) निपातौचित्य

संस्कृत भाषा में निपातों का विशेष महत्त्व है। निपात अर्थ को सहज रूप में अभिव्यक्त करने में सहायक होते है। "व्याकरण में कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो व्याकरणगत नियमों के अन्तर्गत निष्पन्न न होते हुए भी शुद्ध कहे जाते हैं। उन्हें निपात कहा जाता है। निपातों की परिगणना भी अव्यय के अन्तर्गत की जाती है। **'स्वरादि निपातव्ययम्'**[76] **'उच्चावचेषु अर्थेषु निपतन्तीति निपाताः'।**"[77] अर्थात अनेक विधि अर्थो में जिनका प्रयोग होता है वे निपात कहे जाते है।

निपात शब्द की निष्पत्ति नि उपसर्ग पूर्वक पत् धातु से हुयी है चूँकि ये निपात विविध अर्थो में प्रयुक्त होते हैं इसलिए इन्हें निपात कहते हैं। सामान्यतया निपात तीन प्रकार के होते हैं। प्रथम वो जो उपमा या सादृश्य अर्थ को कहते हैं। दूसरे वे जो कर्मोपसंग्रह अर्थ वाले होते है। तीसरे वे निपात जिनका कोई अर्थ नहीं होता केवल पद या वाक्य की पूर्ति के लिए ही प्रयुक्त होते है।

---

[73] भुशुण्डि रामायण, उत्तरखण्ड, अध्याय 65 / 11
[74] भुशुण्डि रामायण, उत्तरखण्ड, अध्याय 63 / 33
[75] भुशुण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड, अध्याय 43 / 60, 61
[76] अष्टाध्यायी
[77] निरूक्त (प्रथम अध्याय)

"निपाता उपमार्थे च कर्मोपसंग्रहे च पद पूर्णाश्च भवन्ति।" अर्थात् निपात उपमा अर्थवाले, कर्मोपसंग्रह वाले तथा पद पूर्ति वाले होते है।

1. **उपमार्थक निपात**– जो उपमा या सादृश्य अर्थ को कहते है उपमार्थक निपात कहलाते हैं। ये निपात निम्न हैं–

क. **'इव'** यह निपात भाषा तथा वेद दोनों में उपमा अर्थ को प्रदर्शित करता है। जैसे– अग्नि इव–अग्नि के समान, इन्द्र इव–इन्द्र के समान।

ख. 'न' यह निपात भाषा में निषेध अर्थ वाला है परन्तु वेद में निषेध तथा उपमा दोनों अर्थ वाला है। जैसे न इन्द्र देवम् अमंसत् – इन्द्र को देव नहीं माना। प्रतिषेध अर्थ में 'न' निपात का प्रयोग उसके प्रतिषेध के पहले तथा उपमा अर्थ में उपमान के बाद किया जाता है।

ग. 'चित्' यह निपात अनेक अर्थो को बताता है। पूजा या आदर के अर्थ में, निन्दा अर्थ में इसका प्रयोग होता है। जैसे आचार्यश चिद् इदं ब्रूयात् –केवल आचार्य इस अभिप्राय को बता सकते है। यहाँ पर चिद का प्रयोग आदर अर्थ में हुआ है।

घ. 'नु' यह निपात भी अनेकार्थक है। हेतु को कहने के लिए उपमा अर्थ के लिए, प्रश्न करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। जैसे कथं नु करिष्यति? वह कैसे करेगा? यह प्रश्न करने के लिए नु का प्रयोग हुआ है। इन चार उपमार्थक निपातों के अतिरिक्त कुछ अन्य निपात भी है। जिनका प्रयोग उपमा या सादृश्य अर्थ को बताने के लिए होता है। जैसे वा, यथा आदि। परन्तु यहाँ उपलक्षण के रूप में केवल इन्हीं चार को प्रस्तुत किया गया है।

2. **कर्मोपसंग्रह निपात**– वे निपात जिनके आ जाने से अर्थ प्रथक रूप में तो ज्ञात होता है परन्तु वह साक्षात निर्दिष्ट अर्थ के समान नहीं होता कर्मोपसंग्रह निपात कहे जाते है। ये निपात निम्न है–

'च' समुच्चय अर्थो यस्य स समुच्चयार्थः अर्थात् 'च' का अर्थ है दो या दो से अधिक वस्तुओं को एक साथ प्रस्तुत करना। अपनी इस समुच्चयार्थकता के कारण 'च' को कर्मोपसंग्रहार्थीय निपात माना जाता है। जैसे– अहं च त्वं च वृत्रहन् – हे वृत्रहंता! मैं और तुम दोनों।

इसके अतिरिक्त वा, अह, ह, उ, किल, मा खलु शश्वत आदि निपात है। ये निपात निम्न हैं।

3. **पदपूरणार्थक निपात**– ये निपात जो पद या वाक्य की पूर्ति के लिए प्रयोग किये जाते है और जिनका कोई अर्थ नहीं होता है। वे पद पूरणार्थक निपात कहे जाते है। ये निपात निम्न हैं–

'नूनं'– यह निपात परिग्रह अर्थवाला जैसे नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयद् इन्द्र मधोनी शिक्षा, स्तोतभ्यो माति धग् भगो वृहद् वेदभ विदथे सुवीराः।

'सीम'– यह निपात परिग्रह अर्थ वाला जैसे प्रसीम् आदित्योअसृजत–आदित्य ने नदियों को तेजी से बहाया।

'सीमतः'– सीमतः भी परिग्रहार्थीय या पद पूरणार्थक है। जैसे विसीमतः सुरूचो वेन आवः – आदित्य ने प्रशस्त दीप्ति वाली रश्मियों को सब ओर से मुक्त कर दिया।

निपातौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण

आचार्य क्षेमेन्द्र का कथन है कि–

उचित स्थान विन्यस्तै निपातैरर्थ संगतिः।
उपादेयैर्भवत्येव सचिवैरिव निश्चला ।।

"उचित निपातों के प्रयोग से अर्थ संगति उसी प्रकार निभ्रान्ति हो जाती है जैसे उचित मंत्रियों से राज्य लक्ष्मी स्थिर होती है।"[78]

यहाँ उनका कथन है कि च आदि उपादेय निपातों का उचित पदों से संबंध होने पर काव्यार्थ संगति स्पष्टतर हो जाती है। इस प्रकार निपात अर्थावगति में वास्तविक सहायक होते हैं।

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण – आचार्य क्षेमेन्द्र ने 'औचित्य विचार चर्चा' में निपातौचित्य के संदर्भ में स्वरचित 'मुनिमतमीमांसा' का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है–

सर्वे स्वर्ग सुखार्थिनः ऋतुशतैः प्राज्यैर्यजन्ते जडा,
स्तेषां नाकपुरे पयाति विपुलः कालः क्षणार्ध च तत् ।
क्षीणे पुण्यधने स्थितिर्न तु यथा वे याग्रहे कामिनां
तस्मान्मोक्षसुखं समाश्रयत भोः सत्यं च नित्यं चयत्।।[79]

"स्वर्ग सुख की कामना करने वाले मूर्ख लोग सैकड़ो यज्ञादि करके स्वर्ग को प्राप्त करके वहाँ का सुख भोग करते है, किन्तु जब उनके पुण्य कार्य समाप्त हो जाते है तो वह स्वर्ग से उसी प्रकार खदेड़ दिये जाते हैं जैसे धन रहित व्यक्तियों को वैश्या अपने घर से खदेड़ देती है। इसलिए हे मूर्खो! मोक्ष सुख की इच्छा करो जो सत्य और नित्य है।" यहाँ स्वर्ग सुख को वैश्या के भोग की भाँति नाशवान एवं अस्थायी कहा गया है। तथा उसे त्यागकर अटल मोक्ष सुख पाने की बात कही गयी है। यह बात 'सत्यं च नित्यं च यत्' के माध्यम से कही गयी है। अतः यहाँ पर च निपात का औचित्यपूर्ण प्रयोग सुन्दरता की वृद्धि कर रहा है।

प्रत्युदाहरण – निपातगत अनौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि श्रीचक्र के निम्न उद्धरण के माध्यम से प्रस्तुत किया है–

---

[78] औचित्यविचारचर्चा कारिका 25
[79] औचित्यविचारचर्चा, पृ0 167

देवो जानातिसर्व यदति च तदपि वम हेनीतिनिष्ठ,
सार्द्धसन्धाय जालान्तरधरणि मुजोनिवृतोवान्धवेन ।
क्लेच्छामुच्छिन्धि भिन्धि प्रतिदिनमयशरून्धि विश्वं यशोभिः
सोदन्वन्मेखलायां परिकलय करं किञ्च विश्वम्भरायाम् ।।[80]

किसी राजा के प्रति उसके हितचिन्तक मित्रों का यह कथन है—

"यद्यपि महाराज, आप सब कुछ जानते है, तथापि हम लोग नीति पूर्ण बात आप से कह रहे हैं। बन्धु स्वरूप जालन्धरराज के साथ सन्धि करके निश्चिन्त हो प्रतिदिन म्लेच्छों को पराजित कीजिए, अवकीर्ति को दूर कीजिए, सारे संसार को अपने यश से व्याप्त कीजिए तथा सागर तक फैली हुई पृथ्वी पर कर वसूल कीजिए अर्थात् सम्पूर्ण भूमण्डल पर अपना शासन स्थापित कीजिए।"

प्रस्तुत उद्धरण में राजा की प्रशंसा के प्रसंग में 'देवो जानाति सर्व यदपि च तदपि' ऐसा जो कहा गया है उसमें पूर्व पद 'यदपि' उत्तर पद 'तदपि' में परस्पर सम्बन्ध न होने के कारण समुच्चय के योग्य तो है ही नहीं, ऐसी स्थिति में उन दोनों के बीच में चकार का प्रयोग कैसे सार्थक कहा जा सकता है। अतः यह चकार उसी प्रकार अनौचित्य को फैलाता है जैसे निमन्त्रित जनों की विशाल भोजन पंक्ति में अनिमन्त्रित आकर बैठा हुआ व्यक्ति पहचान लिये जाने पर लज्जा से मलिन मन होकर केवल अनौचित्य को अभिव्यक्ति करता है।

भुशुण्डि रामायण में निपातौचित्य

निपातों के द्वारा जहाँ एक ओर अर्थ प्रकाशन में सहायता मिलती है। वही दूसरी ओर वे काव्य के चारूत्व के साधक भी हो जाते है। कभी–कभी छन्दों की पदपूर्ति के लिए भी इनका प्रयोग होता है। भुशुण्डि रामायण में निपातो का यथावसर प्रयोग किया गया है।

राम लक्ष्मण आपस में वार्ता करते हुए कहते है कि तुम्हारे मेरे बिना अयोध्यावासी दुःखी होगे—

त्वया मायच रहितौ कथं खलु भविष्यत।
जातो नूनमहं पित्रो केवलं दुःख हेतवे।।
तरिर्भरव एवार्ध तर्त शोकोदधि तयोः।
आश्वासनाय शक्तोऽत्रावशेष पुरूषार्थमूः।।[81]

यहाँ पर 'नूनम्' निपात का प्रयोग पद की सुन्दरता के लिए किया गया है।

हा राम हा व्रज वधूरमणैक शील हा पुत्र विरहादायक हा रमेशः ।
हा गोपतेर्दयित हा शरन्दिन्दुवक्त्र हा पद्म लोचन नमोत्यज जातुदीनम्।।[82]

---

[80] औचित्यविचारचर्चा 168
[81] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 10 / 185
[82] भुशुण्डि रामायण दक्षिण, अध्याय 24 / 67

यहाँ 'हा' का प्रयोग अत्यन्त मार्मिक है राम के वियोग में दशरथ के कथन में 'हा' का प्रयोग अत्यन्त मार्मिक व्यंजना कर रहा है। जो सहृदय के हृदय में शीघ्र ही करूणा का संचार कर देता है।

मरणं जीवन चैव वियोग योग एव वा ।
सुख दुःख लाभ हानि जयेऽपि वा पराजयः।।[83]

यहाँ पर 'च' 'वा' निपात का प्रयोग साभिप्राय हुआ है जो भाषों को व्यक्त करने में सहायक है और भाषा सौष्ठव की दृष्टि से भी विशेष महत्त्व रखता है।

हा हन्त क्व नु पश्येय रामं प्रकृति सुन्दरम् ।[84]
को मा जीवयितु शक्तो विना रामं रसालयम्।।

यहाँ पर 'हन्त' निपात का प्रयोग औचित्यपूर्ण है।

तत्रागमच्च मिथिलेन्द्र कुमारिका सा,
सीता स्वयं नमितुमालयमम्बिकाया ।
तां वीक्ष्यभूय उदितस्मरवाणताप,
संभ्रान्त चित्त इव तत्क्षणमास राम।।[85]

यहाँ पर 'इव' निपात का प्रयोग भाषा सौष्ठव की दृष्टि से अधिक महत्त्व रखता है जो औचित्यपूर्ण है।

हा हा हतोऽस्मि पापिष्ठे त्वया कुलकलङ्कया।
तव बुध्यातिकुतिले ममापि भ्रंशिता गुणाः।।
हा हा हतोऽस्मि दग्धोऽस्मि दुषितोऽस्मि त्वया खले।
अह प्राणान् विमोक्ष्यामि मां विनात्वं भविष्यसि।।[86]

राम के वनगमन से दुखी होकर भरत इस प्रकार विलाप करते है। भरत के विलाप में 'हा' पद का प्रयोग भरत के दुःखी हृदय की व्यंजना कर रहा है। जो अनायास ही सहृदय को द्रवित कर देती है। आत्मग्लानि एवं पश्चाताप यहाँ भी मूल्य लक्ष्य है। इस लक्ष्य को स्पष्ट करने हेतु माता के प्रति उपेक्षा से परिपूर्ण कथनों द्वारा अपने आशय को रखना है। यहाँ 'हा' पद का औचित्य पूर्ण प्रयोग किया गया है।

कौशल्या अपने पति दशरथ के वियोग में दुःखी होकर इस प्रकार विलाप करती है।

हा नाराधिप हा मित्र सुखदायक हा निधे।
हा शत्रुनारी वैधव्य दीक्षादान विलक्षण
हा देवनरनागेन्द्र सर्वस्व यशासां निधे।।[87]

---

[83] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 29 / 69
[84] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 24 / 59
[85] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 74 / 4
[86] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 27 / 34, 35

प्रस्तुत उद्धरण में 'हा' पद का प्रयोग ह्रदय की अत्यन्त ही मार्मिक भाव की व्यंजना कर रहा है। यहाँ प्रयुक्त 'हा' निपात कौशल्या आदि रानियों की दशा का सटीक चित्रण प्रस्तुत कर रहा है जिससे प्रस्तुत उद्धरण निपातौचित्य में फलित हो रहा है। जो सहृदय के ह्रदय के शीघ्र ही दुःख का संचार कर देता है।

वस्तुतः इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि भुशुण्डि रामायण मे निपातों के प्रयोग में रचयिता को पूर्ण सफलता प्राप्त हुयी है। कवि निपातों के प्रयोग में सिद्ध हस्त है। निपातों का प्रयोग सहज स्वाभाविक है। जहाँ जिस निपात की आवश्यकता प्रतीत हुयी रचयिता ने उसे सहज रूप में उपस्थित कर दिया।

(ज) कालौचित्य

सामान्य रूप में काल को क्षण, दिन, मास, वर्ष आदि रूपों में विभक्त किया गया है। काल इस संसार का विशिष्ट तत्त्व हैं। काल के द्वारा ही इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय सम्पन्न होते हैं। यह काल एक है, विभु है और नित्य है। लोक–व्यवहार में इसके द्वारा ही भूत, भविष्य, वर्तमान के रूपों की कल्पना की गयी है। तर्क संग्रह में कहा गया है कि भूत, वर्तमान, भविष्य आदि व्यवहार की प्रतीति का असाधारण कारण काल कहलाता है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार भी वस्तुओं के निर्माण में भी काल कारक स्वरूप है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि काल समस्त कार्यों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश का हेतु है। काव्य या नाटक जगत में कालौचित्य का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है।सत्य ही कहा गया है–"कालज्ञा एव सर्वज्ञः यो कालगति न जानाति तस्य श्रमः निरर्थकः।"

कालौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण

आचार्य क्षेमेन्द्र का कथन है कि–

कालौचित्येन यात्येव वाक्यमर्थेन चारूताम्।
जनावर्जनरम्येण वेषेणेव सतावयुः ।।

"जिस प्रकार लोगों को आकृष्ट करने वाले आभूषणों से सज्जनों का शरीर सुशोभित होता है, उसी प्रकार कालगत औचित्य का निर्वाह होने से अर्थोत्कर्ष के द्वारा वाक्य में चारूता आ जाती है।"[88]

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार अवसरोपयुक्त वेषविन्यास से सज्जनों का शरीर सौन्दर्यधायक हो जाता है, उसी प्रकार कालगत औचित्य से अर्थ के कारण वाक्य में चारूता आती है।

---

[87] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 25/28–29
[88] औचित्य विचार चर्चा, कारिका – 26

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण

कालौचित्य के संदर्भ में स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने भट्टभल्लट का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है–

मृत्योरास्यमिवाततं धनुरिदं मूर्च्छद्विशा चेसवः,
शिक्षा सा विजितार्जुना प्रतिलयं सर्वाङ्गलग्ना गतिः।
अन्तः क्रौर्यमहो भाठस्य मधुनो हा हारि गीतं मुखे।
व्याधस्यास्य यथा भविश्यति तथा मन्ये वनं निर्मृगम्।।[89]

"करूणा कृपण इस व्याध के मृत्यु के मुख के समान विस्तृत धनुष, विष में डुबाये गये बाण लक्ष्यभेद में निपुण अभ्यास विनाश की ओर ले जाने वाली अप्रतिहतगति हृदय में क्रूरता एवं मुख में मधु से भी मीठा गाना। ये सभी ऐसे हैं कि मानों जल्दी ही वन मृगहीन हो जायेगा।"

इस पद में व्याध के धनुष वाण, अभ्यास, गति, क्रूरता और गाना ऐसे हैं कि जंगल शीघ्र ही मृगशून्य हो जायेगा। इस पद्य में भविष्यत काल का प्रयोग किया गया है, जिससे प्रस्तुत अर्थ औचित्य पूर्ण है।

प्रत्युदाहरण

कालगत अनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने वारहमिहिर का अधोवर्णित उद्धरण प्रस्तुत किया है–

क्षीण चन्द्रो विशति तरणेर्मण्डलं मासि–मासि,
लव्धवा काञ्चित्पुनरपि कलां दूरदूरानुवर्ती।
सम्पूर्ण भचेल्कथमपि तदा स्पर्द्धयोदेति मानो–
र्नो दौर्जन्या द्विरमति जडोन्मपि दैन्याद्वयरंसति।[90]

"कलाओं से विहीन चन्द्रमा प्रतिमास (प्रत्येक अमावस्या) सूर्य के मण्डल में प्रवेश करता है। और वहाँ से कुछ कला को प्राप्त कर पुनः क्रमशः दूर होता चला जाता है। यदि वह किसी प्रकार (पूर्णिमा) पूरा हो भी जाता है। तो सूर्य की स्पर्धा में अर्थात् सूर्य के अमाने–सामने उदित होता है। जड़ व्यक्ति न तो दुर्जनता का परित्याग करता है और न दीनता से ही विरह होता है।

प्रस्तुत उद्धरण में विरमति तथा व्यरंसीत् परस्पर विरूद्ध दो कालों के वोधक दो पदों का प्रयोग किया गया है। ये दोनों पद क्रमशः चन्द्रमा के उन दोनों गुणो (दुर्जनता अथ च दीनता) के लिए प्रयुक्त किये गए है जो कि चन्द्रमा के विषय में सर्वदा घटित होते रहते है। इस अवस्था में 'विरमति' की भाँति यदि 'व्यरंसीत्' के स्थान में वर्तमान काल की क्रिया का प्रयोग किया गया होता तो

---

[89] औचित्यविचारचर्चा, पृ0 174
[90] औचित्यविचारचर्चा पृ0 177

उचित होता, ऐसा न करके एक प्रयोग भूतकालिक करके अत्यन्त अनुचित प्रयोग को दर्शा रहा है।

भुशुण्डि रामायण में कालगत औचित्य –

किन्ही घटनाओं या क्रियाओं के मध्यावकाश को काल कहा जाता है। काल इस जगत् का श्रेष्ठ तत्व है। इस काल से ही जगत की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय सम्पन्न होते है। काल का प्रभाव मन तथा शरीर दोनों पर पड़ता है। यदि कवि को इसकी पहचान हो तो वह जो कुछ लिखेगा वह औचित्य से मंडित होगा। भुशुण्डि रामायण में सूक्ष्म अभिज्ञा शक्ति के कारण, काल का उचित वर्णन प्राप्त होता है।

प्रस्तुत अधोवर्णित उद्धरणों में काल गत औचित्य दर्शनीय है।

लक्ष्मण के द्वारा राजपुत्री सीता की रक्षा के लिए वनदेवियों, वनदेवताओं, वनस्पतियों आदि से जो निवेदन किया गया है वह वर्तमानकालीन विशिष्टभाव का द्योतक है। लक्ष्मण निवेदन करते हैं–

हे वनस्पतयो देवाः फलदाः पुष्पमण्डिताः।
यूयं सर्वतरूश्रेष्ठाः श्रृणुवेदं वचोमम ।।
प्रजावती मे जनकेन्द्रपुत्री वीरेन्द्रजाया जननी त्रिलोक्याः।
युष्मासु भाग्यैरधितिष्ठतीयं संरक्षणीया नितरां भवद्भिः।।
हे देवि सर्वसत्वौघरक्षित्रि वनदेवते ।
इमां रक्षतमां शश्वन्मम भ्रातृवधूं सतीम् ।।
आर्यो रघुकुलाधीशो युष्माकं क्षेमकारकः।
मंस्यते ह्युपकारं वः सर्वदैवतसंश्रयः।।[91]

प्रस्तुत उद्धरण वर्तमान कालौचित्य का बोध करा रहा है।

सीता के वियोग में राम की जो स्थिति हो रही है वह अनेक वियोग में अत्यन्त दुःख का अनुभव करते है। उनके वर्तमान कथन में भूतकालीन स्थिति का बोध हो रहा है। वे सीता का सुखद संयोग का स्मरण करते है और वर्तमानकालीन संताप का भी अनुभव करते है। राम दुःखी होकर लक्ष्मण से कहते है–

सर्व सहामि सौमित्रे सोऽहं कठिनमानसः।
कथं भविष्यति पुनर्वैदेही विरहात्सदा ।।
अये कमल पत्राणि शिरीषसमुकोमले।
अभूत पूर्व विरहं वैदेहि सहसे कथम्।।
राम कठोर हृदय ईदृशी विरहापदम् ।

---

[91] भुशुण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड, अध्याय 154/31, 32, 37, 38

सहतां सुदति स्थाने तव सम्प्रति का दशा।।
हा देवि धीरा भवितुमर्हासि जनकात्मजे ।
अहो अधीर ह्रदयो रामः किं नु करोत्वयम्।।
मद्दशां को नु कथयेद्वैदेहि तव संनिधौ ।
हा हा जनकपुत्रि त्वं कथं नु ज्ञास्यसे प्रभो।।
आत्मनो जीवितेनैव त्वं जीवसि कथं च न ।
इति मेऽनुमितं देवि किं तु कास्विददशा तव।।[92]

इस प्रकार दुःख को व्यक्त करते हुए राम कहते हैं कि हे मारूतसखे तुम वहाँ जाओ जहाँ मेरी सीता है। उनकी दशा कैसी है। मुझे बताओ हे मित्र उनकी दशा जानने के लिए मेरा निवेदन स्वीकार करो। तुम्हारा यह उपकार कभी भी नहीं भूलूँगा।[93]

अधोलिखित श्लोक में राम सीता की जो स्तुति की गयी है। वह भूतकालिक वृत्त के वैशिष्टय को आश्रित कर रहा है –

नमः श्री नन्दनाख्याय गोपराजाय धीमते।
नमस्तथा श्री राजिन्यै याम्यां त्वं नित्य लालिता।।
दशरथ कौशल्याभ्यां सुखित श्री मांगल्यकाभ्यां।
त्रिभुवन सौराज्यपदप्रभाविताभ्यां नमो नित्यम्।।[94]

सुमंत्र के कथन में वर्तमानकालीन वैशिष्ट्य का बोध हो रहा है।

न तस्य विपने कष्टं परमानन्द वारिधे।
नापितं सेवमानस्य लक्ष्मणस्य महामते।।
जानकी मुदितात्यर्थं वत्तते स्वामिनसह।
प्रसादेष्विव खेलन्ती रमते काननेवपि।।
ययो स्मरणमात्रेण लोके भवति मंगलम्।
क्व तयो र्विपदो मात कानने वा गृहेषु वा।।[95]

सुमंत्र राजा दशरथ से कहते है कि राम को वन में किसी प्रकार का कष्ट नहीं है और न उनके सेवक (भाई) लक्ष्मण को, सीता अपने स्वामी के साथ

---

[92] भुशुण्डि रामायण दक्षिण खण्ड, अध्याय 191 / 25, 26, 27, 28, 29, 30
[93] भुशुण्डि रामायण दक्षिण खण्ड, अध्याय 191 / 31, 32
[94] भुशुण्डि रामायण, पश्चिम खण्ड, अध्याय 46 / 46, 46
[95] भुशुण्डि रामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय 21 / 24, 25, 29

प्रसन्नचित है। जिसके स्मरण मात्र से ही संसार का मंगल होता है। उसको घर अथवा वन में किस प्रकार का कष्ट।

भरत के कथन में कालगत औचित्य दर्शनीय है। भरत राम वनगमन से दुःखी होकर इस प्रकार कहते हैं –

> **अहं वने निवत्स्यामि तस्यार्यस्य प्रतिज्ञया।**
> **तमहं स्थापयिष्यामि पितृपैतामहासने।।**
> **राज्यासनस्थः सततं रामो राजीवलोचनः।**
> **पालयानः प्रजाः सर्वा मम प्रीत्यै भविष्यतिं।**[96]

भरत मंत्रियों द्वारा राज्य ग्रहण प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देते हैं। वह कहते है पिता के द्वारा दिये गये वचन की रक्षा करने के लिए मैं स्वयं वन को जाऊँगा। यहाँ वर्तमान कथन में भविष्य में होने वाली घटना का वर्णन है। जो कालगत औचित्य के उचित प्रयोग का बोध करा रहा है।

राम लक्ष्मण की वार्ता में कालगत औचित्य दृष्टिगत है–

> **अद्यायोध्यापुरी भ्रातः कां दशां लप्स्यते शुचा।**
> **आबाल वृद्ध स्त्रीलोकजन शब्द विवर्जिता।।**
> **पितरौ परिशोचामि यौ रूदन्तौ समुज्झितौ।**
> **शोकाब्धि लहरीवृन्दैर्नोद्यमानौ विचेतसो।।**
> **त्वया मया रहितौ कथं खलु भविष्यतः।**
> **जातो नूनमहं पित्रोः केवलं दुःख हेतवे।।**[97]

यहाँ भूतकालीन घटना का जो वर्णन है वह वर्तमानकालीन घटना को प्रभावित कर रही है। राम लक्ष्मण से कहते हैं कि भाई (लक्ष्मण) अयोध्यापुरी के लोगों की क्या दशा होगी? तुम्हारे और मेरे द्वारा रहित वे कैसे होंगे? यहाँ भूतकालीन घटना वर्तमान कालीन घटना को प्रभावित कर रही इसमें कालौचित्य दर्शनीय है। जो सीता के कथन में कालगत औचित्य दर्शनीय है–

> **द्रक्ष्यामि भूरितपसस्त्यक्लोकसुखादरात्।**
> **मुनीनां योगिनां दारान् पर्यटन्ती शुभाश्रमान्।।**
> **द्रक्ष्यामि पुण्यतीर्थानि स्नांती पुण्यतमाः स्थलीः।**
> **प्राणप्रियेण संयुक्ता सुखं मे किमतः परम्।।**[98]

सीता राम से कहती है कि निश्चय ही मुझे वन में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। वन में ऋषियों, मुनियों की तपस्या से युक्त पृथ्वी और संसार को सुख देने वाले दृश्यों को देखूँगी। पवित्र तीर्थ स्थलों को देखूँगी और उन पुण्य देने वाले स्थलों में स्नान करूँगी। प्राणो से भी प्रिय राम के साथ के अलावा

---

[96] भुशुण्डि रामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय 31/57
[97] भुशुण्डि रामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय 10/84, 85, 86
[98] भुशुण्डि रामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय 9/108, 109

दूसरा सुख और कहाँ है। यहाँ वर्तमान कथन में भविष्य कालीन घटना का बोध हो रहा है। प्रस्तुत वाक्यार्थ औचित्य पूर्ण है।

ब्रह्मा के कथन में कालगत औचित्य दर्शनीय है। ब्रह्म राम से कहते है।

त्वं भक्ति लभ्योऽसि हरे जनानां ,न ज्ञानयोगादितपोभिरूग्रैः।
कथं तवेदृक प्रसादोऽपि लभ्यः ,कुतस्तरां सन्निधौ दर्शन ते।।

त्वं राम चन्द्रो नृपतेः कुमारो, नित्यं विलासो सरयूतीर वासी।
तवांश एषः श्रीकृष्णो यशोदाः, गर्भे भविष्यति वै द्वापरान्तो।।[illegible]

ब्रह्मा जी के इस कथन में वर्तमानकाल के साथ–साथ भविष्यत में होने वाली घटना का वर्णन किया है। जो हमें कालौचित्य के उचित प्रयोग को दर्शा रही है। वस्तुतः हमें ज्ञात होता है कि भुशुण्डि रामायण में यथास्थान कालौचित्य का उचित वर्णन प्राप्त होता है।

[illegible] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 7/9, 10

अध्याय चतुर्थ

देश, कुल, व्रत, सत्त्व, तत्त्व, अभिप्राय, स्वभाव एवं सारसंग्रहगत औचित्य

चतुर्थ अध्याय

देश, कुल, सत्व, तत्त्व, अभिप्राय, स्वभाव, सार संग्रहगत औचित्य

क– देशौचित्य

किसी भी काव्य में देश–विशेष का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। प्रत्येक देश की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति, भाषा एवं परम्परा होती है। प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व, नदी, पर्वत, वन, उद्यान, जीव, जन्तु आदि उस देश के भावों को मौन रूप से व्यक्त करते है। यदि कोई कवि उस देश की भौगोलिक स्थितियों, वहाँ की प्राकृतिक सम्पदाओं का उचित रूप से वर्णन करता है तो उस कवि का काव्य देशगत औचित्य से परिपूर्ण होगा। वस्तुतः हर देश की भौगोलिक स्थिति, लोगों के आचार–विचार, जीवन–दर्शन आदि में कुछ विशेषताएँ होती है। वहाँ के साहित्य के रूपाधान में इनका न्यूनाधिक प्रभाव देखा जा सका है।

साहित्य का कोई सिद्धान्त आकाश से छनकर नहीं आता अपितु वह साहित्य एवं कला के विशिष्ट रूपों एवं प्रवृत्तियों के अनुशीलन का परिणाम होता है। किन्तु अन्ततः उनका सम्बंध देश की विचार शैली अथवा जीवन दर्शन से होता है। किसी भी देश के साहित्य में वहाँ की विचार शैली, जीवन–दर्शन की भाषा ही रूपायित होती है।

देशौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण

"देशौचित्य से काव्यार्थ उसी प्रकार सुशोभित होता है जैसे परिचय बढ़ाने वाला सज्जनों का व्यवहार"[1]

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण

आचार्य क्षेमेन्द्र ने देशौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु भट्ट भवभूति द्वारा रचित निम्न उदाहरण प्रस्तुत किया है–

> पुरा यत्र स्त्रोतः पुलिन मधुना तत्र सरितां।
> विपयसि यातो धनविरल भावः क्षितिरुहाम्।
> बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं
> निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धि द्रढयति।।[2]

---

[1] देशौचित्येन काव्यार्थ : ससंवादेन शोभते।
पर परिचयाशंसी व्यवहारः सतामिव।। औचित्यविचारचर्चा, कारिका 27)

[2] औचित्यविचारचर्चा (पृ0सं0 180)

"पहले जहाँ नदियों के प्रवाह थे, वहाँ तटों का निर्माण हो चुका है जहाँ पहले घने वृक्ष थे वहाँ विरलता दृष्टिगोचर हो रही है। लम्बे समय के पश्चात देखने पर यह वन कुछ दूसरा सा प्रतीत हो रहा है पर साथ ही पहाड़ों की यथास्थिति इस बात को निश्चय कर देती है कि यह वही वन है।

अनेक सहस्त्र वर्षों के बीत जाने पर शम्बूक वध के प्रसंग में पूर्व परिचय दण्डकारण्य में पुनः प्रवेश करने वाले राम की यह 'उक्ति जहाँ पहले नदियों का प्रवाह था वहाँ इस समय तट है। जहाँ पहले घने वृक्ष थे अब विरलता आ चुकी है। बहुत दिनों के अनन्तर देखने पर यह वन अपूर्व सा दिखायी देता है। पर पर्वत का सन्निवेश यही धारण निश्चित कराता है कि यह वही वन है नदी प्रवाह आदि के उद्धरण के परिवर्तन और पर्वतों की यथास्थिति का वर्णन होने से वन प्रदेश के स्वाभाविक स्वरूप का प्रकाशन हो रहा है जो औचित्यपूर्ण है।

प्रत्युदाहरण— देशगत अनौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने राजशेखर के निम्न के माध्यम से स्पष्ट किया है—

> **कर्णाटीदशनाकिङ्क्तः सितमहाराष्ट्रीकटाक्षाहतः,**
> **प्रौढान्ध्रीस्तन पीड़ितः प्रणयिनी भ्रूभङ्गवित्रासितः।**
> **लाटी बाहु विवेष्टितश्च मलयस्त्रीतर्जनी नीतर्जितः,**
> **सोऽसं सम्प्रति राजशेखरकविर्वाराणसीं वाञ्छति।।**[3]

"जो पहले कर्नाटक देश की सुन्दरियों के दशनक्षतों से चिन्हित हुआ, पुनः महाराष्ट्र की गौरवर्णा ललनाओं के कटाक्षों से आहत किया गया, फिर आन्ध्रप्रदेश की प्रौढ़ाओं के स्तनों के भार से पीड़ित हुआ, बाद में प्रियतमा की टेढ़ी भ्रकुटि से भयभीत किया गया, पुनः लाट देश की सुन्दरियों की बाहुलताओं से आबद्व हुआ तथा मलय देश की स्त्रियों द्वारा तर्जनी अंगुली से धमकाया गया, वही कवि राजशेखर अब (वृद्धावस्था) में तपस्या के लिए काशी जाने की इच्छा कर रहा है।"

प्रस्तुत उद्धरण में पहले कर्नाटक आदि देशों की ललनाओं के संयोग का भाग्यशाली राजशेखर कवि समय—चक्र के प्रभाव से राग—मोह रहित होकर वृद्धावस्था के कारण अब काशी जाने की इच्छा कर रहा है। इस कथन में श्रंगार रस से सराबोर वारांगनाओं के संभोग के प्रसंग में उन्मुक्त काम के लिए प्रसिद्ध दक्षिणापथ देशों की चर्चा के मध्य प्रणयिनी की वक्र भ्रकुटि से भयभीत है इसे देश विशेष के नाम से रहित केवल 'प्रणयिनी' पद से देशौचित्य अनौचित्य का बोध करा रहा है।

भुशुण्डि रामायण में देशौचित्य

किसी देश की अथवा स्थान की मनमोहक रमणीयता स्पृहरणीय होती है। यदि उसमें ऐसी विशेषता किंवा शक्ति है तो उसे हम देशौचित्य के अन्तर्गत परिगणित करेगें। इससे काव्यार्थ में शोभा की वृद्धि होती है। भुशुण्डि रामायण में

---

[3] औचित्यविचारचर्चा, पृ0 162

अनेक स्थल है जिनकी चित्ताकर्षण, रमणीयता देशौचित्य का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है। भुशुण्डि रामायण में चाहे आश्रमों, पर्वतों, वनों का वर्णन हो अथवा अयोध्या, जनकपुर या लंका का। कवि ने सभी को सर्वत्र उसी स्थल विशेष की विशेषताओं में ही सन्निहित किया है। इसलिए वह औचित्यमय है। भुशुण्डि रामायण में देशौचित्य की विशेषताओं से युक्त कतिपय वर्णन दर्शनीय है।

पर्णकुटी वर्णन

भुशुण्डि रामायण के दक्षिण खण्ड (139वे अध्याय) में पर्णकुटी का सुन्दर एवं विस्तृत वर्णन किया जो देशौचित्य की परिधि को दर्शा रहा है। पंचवटी में निर्मित पर्णशाला में मजबूत बांस के खम्भे लगे थे। चैत्र की शाखाओं की सहायता और साघन पत्तों द्वारा उसे मजबूत किया गया था। यहाँ पर पर्णकुटी का जो वर्णन है उसे सहजता से देखे तो हमें पता चलता है कि कवि ने पर्ण कुटी वर्णन में वन प्रदेश के स्वाभाविक स्वरूप को दर्शाया है।

दृढ़वंशस्तम्भयुते वेत्रशाखासु निर्मिते।
सान्द्रपर्णततिच्छन्ने शाले द्वे इह कल्पय।।[4]
निकृत्य करवालेन वंशस्तम्बान् हरिद्रुचीन्।
रम्या वेत्रलताश्चैव पर्णसंदोहशालिनीः।
अत्रीक्लृपत् सावकाशां पर्णशालां द्रढीयसीम्।
आर्यस्य दारयुक्तस्य चिरसंवसनोचिताम्।।[5]

ऋषि अगस्त्य आश्रम का प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन

भुशुण्डि रामायण में अगस्त्याश्रम के जिस प्राकृतिक सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन किया गया है, वह हमें वहाँ की प्राकृतिक सुन्दरता का बोध करा रही है। उस समय ऋषि, मुनि एवं धार्मिक जन नदियों एवं सरोवरों के तटों पर निवास करते थे। अगस्त्याश्रम के प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन में देशौचित्य की सुन्दर छटा दर्शनीय हो रही है।

तेऽतीत्य दूरमध्वानं सरसजःपदमकुन्तलाः।
कुम्भोदभवमुने स्थानं प्राप्तवन्तः सुखावहम्।।
स्वच्छपानीयकासारं संफुल्लनलिनी वनम्।
ओंकारनाद संकूजदनेकशुकसारिकम्।।
कुसुमस्तबकाकीर्णलता भूरूह भूषितम्।
मुनिपुत्रमुखोदगीर्णऋग्यजुः सामघोषितम्।।
सायमाहूतिदानार्थ मभ्युद्धतहु ताशनम्।
होमधूमिलिन्दालिमिलदगगन मण्डलम्।।
वनान्तरादुपाय समित्कुशकदम्बकम्।
उपावृत्तैमुनिजनै राकीर्ण सर्वतोदिशम्।।[6]

---

[4] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 139/5
[5] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 139/17, 18
[6] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 135/31–34

आश्रम में स्वच्छ जल से युक्त सरोवर है कमलिनी के पुष्प खिले हुए है। अनेक शुक सारिकाएँ ओकांर की ध्वनि का गूजन कर रही है। अग्निहोत्र के द्वारा भूमण्ड व्याप्त है। मुनिजन वेदमाता गायत्री का पूजन कर रहे है। जो सभी प्रकार से शान्त और हिसंक जन्तुओं से रहित है।

प्रस्तुत उद्धरण में सरोवर, पुष्पों, पक्षियों के सौन्दर्य वर्णन मे मन को आकर्षित कर लेने की अद्भुत शक्ति है। उनका दर्शन ही सुख कारक है। कहना अतिशयोक्ति न होगा कि उक्त स्थान अपनी प्राकृतिक रमणीयता एवं विशेषताओं के कारण अत्यन्त प्रशंसनीय और मुग्धकारी है। दूसरे शब्दों में यह देशगत विशेषता मुनियों के निवास के कारण है।

चित्रकूट में सीता का श्रृंगार वर्णन

चित्रकूट प्रवास के समय राम अपनी प्रियतमा सीता के उत्तमांगो का वन्य पुष्पों, रामरज आदि धातुओं से बने रंगो द्वारा निर्मित पत्र रचना से श्रृंगार करते हैं।

चिरं विहृत्य वैदेह्या भगवान् रतिवर्द्धनः।
अशोभत शिलापृष्ठे पौलोम्यैव पुरंदरः।।
अथ श्रृंगारयामास प्रियां विस्त्रस्त भूषणां।
चम्पकै र्गुम्फयामास वेणीमलकशालिनीम्।।
अलकेषुबबंधास्याः केशरस्थ सुमान्यलं।
चक्रे कमलपत्रैश्च कंचुकी कुचकुंभयोः।।
सनालैः पंकजैश्चक्रे वाहयो केयूरयुग्मकं।
विचित्र पष्पस्तवकैर्भूषः कल्पितवान् पृथक्।
पंचवर्ण प्रसूनाढयां स्त्रजं कमलशालिनीम्।
वक्षसि न्यस्तवान् रामो रमण्याः स वंशवदः।।
हरितालरसैर्मिश्रां सिन्दूराक्तां मनः शिलां।
संघृष्य रमणोऽगुल्यां भालेतिलकमातनोत्।।
विभूष्य स्वामिनीमेष स्वयं चाभूषितस्तया।
रेजाते तावुभौ तत्र शोभमानौ परस्परम्।।[7]

भुशुण्डि रामायण के दक्षिणखण्ड में राम के द्वारा सीता का वन प्रदेश में पायी जाने वाली जिन प्राकृतिक वस्तुओं पुष्पों, आदि से श्रंगार किये जाने का वर्णन है। वे हमे वन प्रदेश में पाये जानी वाली विभिन्न वस्तुओं का बोध कराती है। कवि के द्वारा इनका स्वाभाविक वर्णन देशौचित्य को ही दर्शा रहा है।

हमारे देश की प्राकृतिक सुन्दरता सर्वविदित है। प्रकृति स्वाभाविक रूप में विविध प्रकार के अलंकार से अलंकृत है। कवि ने अपनी अभिधा शक्ति के द्वारा प्रकृति में पायी जाने वाली विभिन्न वस्तुओं एवं पुष्पों द्वारा सीता को अलंकृत करने में जिस प्राकृतिक सौन्दर्य साधनों का वर्णन किया है। वह देशौचित्य की परिधि में ही रहकर किया है।

---

[7] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 17/41–48

किष्किन्धा नगरी का सौन्दर्य वर्णन

किष्किन्धा नगरी में बड़े–बड़े भव प्रकोष्ठ अट्टालक, उद्यानों का वर्णन प्राप्त होता है। किष्किन्धा नगरी विशाल परिधावलय से समवेष्टित है और दृढ़ प्रकार से सुसम्यद्ध है। अनेक बड़े–बड़े महलों पर वैजयन्ती सुशोभित हो रही है।

विशालयरिखान्तः स्थदृढ़प्राकारसंवृताम्।
महाप्रासादमौलिस्थवैजयन्ती विभूषिताम्।।
अलंकृतैः सदा हृष्टैर्नरनारी गवैर्वृताम्।
राजद्वारसदावाद्यद्दीर्घ दुन्दुभिनादिताम्।।[8]

लंका नगरी का सौन्दर्य वर्णन –

लंकानगरी वैभव को देखे तो हमे भवनों के निर्माण के बारे में ज्ञात होता है कि उस समय देश में नगरों के निर्माण में शिल्प, सौन्दर्य और सुरक्षा के विषय में विशेष ध्यान रखा जाता था। नगरों की स्थापना प्राकृतिक रूप से सुरक्षित स्थानों पर की जाती थी। जिससे कि उन्हे बाहरी आक्रमणों से बचाया जा सके।

विशालहेम प्राकारां परिखाप्राप्तवारिधिम्।
प्राकारकूट विषमामग्नियन्त्रसमाकुलाम्।।
स्थाने स्थाने महाघोरै राक्षसैरावृतां पृथक्।
विशालकनकाट्टालविन्यस्तध्वजलाञ्छिताम्।।
हेमप्रसादा बहुलां हठ्ठापथविराजिताम्।
प्रतिहट्टपथं रूढैश्चन्दनद्रुप्रममण्डपैः।।
शोभितां परिजातेश्च मन्दारैः कल्पभूरूहैः।
हरिचन्दनसुच्छाय समाश्रित पुरीजनाम्।।
स्वर्गांगकमला रण्यशोभितद्गृहदीर्धिकाम्।
दशाननगृहोपान्तन्यस्तकैलाससानुनि।।[9]

भुशुण्डि रामायण के पूर्वखण्ड में दशरथ की तीर्थ यात्रा वर्णन को कवि ने सर्वत्र देशौचित्य की परिधि में रहकर अपनी काव्य प्रतिभा के द्वारा चमत्कारिता प्रदान की है। तीर्थयात्रा में पड़ने वाले विभिन्न स्थलों काशी, मार्कण्डेय, प्रयाग, बद्रीनाथ, केदारनाथ, द्वारिका पुरी, रेणुकातीर्थ आदि के वर्णन में सर्वत्र देशौचित्य की छटा दर्शनीय हो रही है। विभिन्न स्थलों का वर्णन नेत्रों के समक्ष एक चित्र उपस्थित कर देता है।

चित्रकूट की प्राकृतिक शोभा वर्णन

कवि ने चित्रकूट की प्राकृतिक शोभा का वर्णन देशौचित्य की परिधि में ही रहकर किया है। अधोवर्णित उद्धरण में देशौचित्य दर्शनीय है। राम सीता से कहते है कि हे वैदेही देखो यह वन विविध फलों और फूलों से युक्त है तथा जहाँ पर

---

[8] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 195 / 18, 19
[9] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 200 / 18–22

अनेक प्रकार के पक्षियों का कलरव सुनायी पड़ रहा है। यह तुम्हारे अनुकूल सुख प्रदान कर रहा है।[10]

यश्यास्य गिरिराजस्य धातुमन्ति वृहन्ति च
 शृङ्गानिरवमिव व्याप्त स्थितानि जनकात्मजे।।
केचित्कर्पूर धवलाः केचिद्वालातपारूणाः।
 केचिन्नवतृणाभासाः केचित् काञ्चनसन्निभाः।।
पुष्परागोपमाः केचित् केचित्पद्मनदलप्रभाः।
 केचिन्नवदलाभासाः केचिच्चित्रैर्विचित्रिताः।।
पश्येमां हरिणी स्निगधां मृगेनानुगतां वने।
 शृङ्गकण्डूयनोद्भूतस्पर्श सौरव्य निमीलिताम्।।
पश्येमां मल्लिका पुण्ये पिबन्ती मधुनिर्भरम्।
 अलिनीमलिना सार्द्ध झंकार कलगायिनीम्।।
पश्येमास्तरूभिः सार्द्ध मिलिता ललिता लताः।
 पुण्यमन्दस्मितोद्गाराः प्रोक्तुङ्गस्तबकस्तनीः।।
आम्रैमलितिकाः श्लिष्टाः कलयन्ति परांमुदम्।
 आम्रातकैश्चमाधुर्यः परिरम्भ सुनिर्वृताः।।
नानाजातिलताः श्लिष्टाः फलपुष्पोपसेविताः।
 अङ्कुरोद्भिन्नवपुषः कलयन्ति कुतुहलम्।।
लतावितानच्छन्नानि वनानि विविधैर्द्रुमैः।
 निरातयमनोज्ञानि कुर्वन्ति महतीमुदम्।।[11]

प्रमोद वन का सौन्दर्य वर्णन

कवि ने प्रमोदवन को राम का बैकुण्ठ धाम बताया है। जहाँ पर स्वयं राम सीता सहित निवास करते हैं। उसकी सुन्दरता को कवि ने बहुत ही सुन्दर रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

सर्वर्तुसंफुल्ल सत्कुसुमामोदकाननम्।
 आमोदमत्त भ्रमर राजीगुञ्जित मञ्जुलम्।।
नवपल्लवशोभाढय विटपारूटकोकिलम्।
 हरिन्मणिमयाकाररामणीयकपत्रकम्।।
मकरन्दामृतस्त्राविप्रसून भरसंकुलैः।
 सपल्लवोत्तुङ्गशाखावलम्बिबहुवल्लिभिः।।
पीयूष पाक मधुरैः फलैरानमुमूर्तिभिः।
 वृक्षर्वहुविधैरछन्नं बहुकुञ्जमनोहरम्।।
नृत्यन्मयूरनिवहं तापिच्छतरूशोभितम्।
 लवंगलतिकाकाच्छन्नकुञ्जव्यापिमहीरूहम्।।

---

[10] भुशुण्डि रामायण उत्तरखण्ड, अध्याय 42/11, 11, 13, 14

[11] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 16/6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 18, 23

फुल्लत्कमलिनी वृन्दजुष्टानेकसरोजलम्।
कमलोत्पल संसर्गिसौरभाञ्चितमारूतम्।।[12]

कवि ने प्रमोद वन की सुन्दरता का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। वन में सब जगह कोमल पुष्प खिले हुए है, भौरें मस्त होकर गुञ्जार कर रहे है, नये पल्लव वृक्षों की शोभा बढ़ा रहे हैं, वृक्षों में अमृत के समान मीठे फल आ गये हैं, मोर, निर्भय होकर नृत्य कर रहे है, तालाब में अनेक कमल खिले हुए है। इस प्रकार कवि ने प्रमोद वन की सुन्दरता को पाठक के नेत्रों के समक्ष प्रस्तुत किया है। वह निश्चय ही हमें उस समय की प्राकृतिक सुन्दरता का बोध कराती है। सत्य ही है। जहाँ स्वयं भगवान राम ने सीता के साथ निवास किया हो वहाँ की सुन्दरता अद्भुत ही होगी। मानो प्रकृति ने अपने को भगवान राम के समझ प्रस्तुत कर दिया हो। निश्चय ही प्रमोद वन की सुन्दरता का वर्णन हमारे देश की प्राकृतिक सुन्दरता का बोध कराती है। जो देशौचित्य को दर्शा रहा है।

प्रस्तुत उद्धरण में प्राकृतिक जीवन दर्शन का वर्णन है। जिसको कि रचनाकार ने अपनी अभिज्ञा शक्ति के कारण अत्यन्त स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त किया है। यह सत्य है कि मैदानी क्षेत्रों की अपेक्षा पर्वतीय स्थलों पर वृक्ष अधिक होते हैं तथा घने होने के कारण अनेक प्रकार के पशुपक्षी वनों में अधिकाशतः परिलक्षित किये जा सकते है।

वनो की भाँति–भाँति के पुष्प, कन्दमूल फल एवं फलों की अधिकता होने के कारण भ्रमरों की गुंजार, मयूरों का नृत्य, चातक की मधुर आवाज किसका मन आकृष्ट नहीं कर लेती। वन रमणीय और आकर्षक इसलिए हो गया है। जहाँ पर परम ब्रह्म राम एवं उनकी आदि शक्ति सीता तथा शेषावतार लक्ष्मण निवास करते हो वहाँ चेतन तो प्रसन्नता को प्राप्त होगे ही, अचेतन भी चेतना को प्राप्त कर लेगें।

---

[12] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 30/5, 8, 9, 10, 12, 16

ख– कुलौचित्य

सामान्य रूप से 'कुल' शब्द का अभिप्राय वंश से होता है। 'मानस हिन्दी शब्द कोश में' एक ही मूल पुरूष से उत्पन्न सभी वंशज एवं उनकी पीढ़ियों के समूह को कुल की संज्ञा दी गयी है।[13] समाज के प्रत्येक व्यक्ति की रूचियाँ अलग–अलग है। अतएव सभी में अलग–अलग प्रकार के विचार या दुर्व्यवहार दृष्टिगोचर होते है। जिस परिवार या वंश के लोग अपने विशेष गुणों एवं कार्यो के लिए प्रसिद्ध होते है। वह कुल या वंश लोक जीवन में प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है। जैसे राम के इक्ष्वाकुवंश की परम्परा थी अपने कर्त्तव्य एवं वचन का पालन करना। मर्यादा पुरूषोत्तम राम ने अपनी वंश परम्परा की मर्यादा का पालन करने के लिए सीता का परित्याग कर दिया उन्होने इतनी बड़ी पीड़ा को अपने हृदय में ही रखा। इस प्रकार जब कवि अपने काव्य में कुल में पायी जाने वाली लोकमंगलकारी परम्पराओं को काव्य में चित्रित करता है तो वह काव्य में सुन्दरता तो लाता ही है साथ ही साथ उसका औचित्य भी इसी सौन्दर्य से मण्डित होकर लोक कल्याणकारी भावों से सुसज्जित होता है।

कुलौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण

कुलौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने 'औचित्य विचार चर्चा' में इस प्रकार व्यक्त किया है–

"काव्य में कुलीन औचित्य काव्य रसिकों अर्थात् सहृदयों को उसी तरह रूचिकर या प्रिय लगता है, जिस प्रकार मनुष्य की कुल परम्परा में उचित समृद्धि एक विशेष औचित्य का कारण होती है।"[14]

अपने कथन को अत्यधिक स्पष्ट करते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र कहते है कि "पुरूष की भाँति काव्य में कुलौचित्य की विशेष सुन्दरता होती है, जो सहृदयों को प्रिय भी लगती है।"[15]

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण

आचार्य क्षेमेन्द्र ने कुलौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु 'महाकवि कालिदास' द्वारा रचित निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है–

अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे।
नृपतिककुदं दत्वा यूने सितातपवारणम्।
मुनिवनतरूच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये,
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम्।।[16]

---

[13] मानस हिन्दी शब्दकोश, रामचन्द्र वर्मा, पृ0 659

[14] कुलोपचितमौचित्यं विशेषोत्कर्षकारणम्।
काव्यस्य पुरुषस्येव प्रियं प्रायः सचेतसाम्।। औचित्यविचारचर्चा (कारिका 28)

[15] औचित्यविचारचर्चा, पृ0 165

[16] औचित्य विचार चर्चा, पृ0 166

"इसके बाद राजा ने सभी विषयों से विमुख होकर राज्य को विधिपूर्वक अपने पुत्र को दिया तथा स्वयं पत्नी सहित मुनियों की भाँति वानप्रस्थ लेकर वन को चले गये। इसका कारण यह है कि इक्ष्वाकुवंश के राजा वृद्धावस्था में इसी नियम का पालन करते हैं।"

प्रस्तुत उदाहरण में राजा दिलीप वृद्धावस्था को प्राप्त कर अपने युवा पुत्र को राज्य सौंपकर स्वयं कुल परम्परा का पालन करते हुए पत्नी सहित वन को चले जाते है। इस कथन से तीनों काल में इक्ष्वाकुवंशियों की समृद्ध कुलौचित्य परम्परा दृष्टिगत होती है।

प्रत्युदाहरण – कुलगत अनौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि यशोवर्मदेव के निम्न उद्धरण के माध्यम से स्पष्ट किया है–

उत्पत्तिर्भण्डकुले यदभीष्टं समाक्रान्तम्।
भोगास्तथापि दैवात्सकृदपि भोक्तं न लभ्यन्ते।।[17]

"भाँड़–कुल में मेरा जन्म हुआ है। फिर भी मैं जिसे चाहता था उस पद की प्राप्ति मुझे हुई। सारे भोगों की प्राप्ति होने पर भी मै दैवदुर्विपाक से एक बार भी उनका भोग न कर सका।"

मेरी उत्पत्ति भाँड कुल में हुई इस कथन से जनसाधारण में अप्रसिद्ध जिस भण्डकुल की चर्चा की गई है। वह केवल कथन करने वाले नर को ही विदित है। फिर भी उसकी विशिष्टता सिद्ध करने के लिए उसमें कोई विशेषण भी नहीं लगाया गया है। एक मात्र नाम लेकर ही उसका निर्देश कर दिया गया है; जो निरर्थक सा ही है और अनौचित्य को ही प्रदर्शित करता है।

भुशुण्डि रामायण में कुलगत औचित्य –

भुशुण्डि रामायण में अनेक स्थलों पर प्रसिद्ध वंश तथा कुलों का उल्लेख प्राप्त होता है। जिसमें कवि ने उन कुलो की विशेषता मर्यादा, परम्परा तथा व्यवहार आदि को विशेष कौशल के साथ अभिषिक्त किया है।

रामायण में परिवार के लिए कुल शब्द का प्रयोग है। राजा दशरथ इक्ष्वाकु कुल के अतिवीर थे। राजा दशरथ ने अपने इक्ष्वाकु वंश के कुल का निर्वाह करते हुए विवाह के पश्चात राम को युवराज पद पर अभिषिक्त करने की इच्छा प्रकट की और स्वयं तीर्थयात्रा पर जाने की इच्छा प्रकट करते है। उस समय प्रजा का पालन राजा का परम कर्त्तव्य होता था। महाराज दशरथ ने प्रजा के कल्यार्थ राम को युवराज पद पर अभिषिक्त करने की इक्ष्वाकु कुलवंश परम्परा के अनुसार ही है।

---

[17] औचित्य विचार चर्चा, पृ0 167

यौवराज्य स्थिते रामे गुणैर्नन्दयतिप्रजाः।
लक्ष्मणे च महावीरे वहति स्वगतांधुरम्।।
राजादशरथो न्यस्य पुत्रयोरखिलांपुरीम्।
स्वयं जगाम तीर्थानां यात्रायै धर्ममृद्धरः।।
राममाहूय नृपति र्जगाद जगदीश्वरम्।
लक्ष्मणं च सुसत्कृत्य तीर्थयात्रार्थ मुघतेः।।[18]

दशरथ के कुल में संयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित थी। सभी अपने से बड़ों का सम्मान करते थे। समाज में उन्हीं को आदर मिलता था जो अपने से बड़ों का सम्मान करते थे। उनके वंश परम्परा में कुल की मर्यादा सर्वोपरि थी।

राजा दशरथ अपने वचन का निर्वाह करते हुए पुत्र राम के वियोग में कुलव्रत धर्म का पालन करते हुए अपने प्राणों का परित्याग कर देते हैं राम अपने पिता के वचनों की रक्षा के लिए राज्य का परित्याग कर वन को प्रस्थान करते हैं। भरत भी अपने भ्रातप्रेम के लिए राज्य का परित्याग कर राम की शरण में पहुँचते हैं। वह राम को वापस अयोध्या चलने के लिए कहते हैं। परन्तु राम उन्हें पिता के वचन पालन करने को कहते हैं।

राम एक आदर्श नायक की तरह अपने कुल के गौरव की रक्षा के अपनी प्राणो से प्रिय सीता को निर्दोष जानते हुए भी प्रजा की भावना को आदर देते हैं और कुल के गौरव की रक्षा के लिए सीता का परित्याग कर देते हैं।

भरत जब राम को वापस अयोध्या चलने के लिए कहते हैं। तब राम उन्हे समझाते हैं और भरत को कुल की मर्यादा और पिता के वचनों की रक्षा के लिए अपने कर्त्तव्य का पालन करने को कहते है। राम के द्वारा भरत को दिया गया उपदेश कुल व्रत धर्म से परिपूर्ण है।[19]

किमर्थ कुरूते भ्रातर्भवान् प्रायोपवेशनम्।
ब्राह्मणस्यैव धर्मोऽयं न राजन्यस्य सुव्रत।।
उत्थाय पुरूषश्रेष्ठ राज्यं समनुपालय।
पित्रा दत्तं कुलप्राप्तं न भवांस्त्यक्तुसर्हति।।
ततः पौरा जनापदाः प्रजाः प्रकृतयोऽखिलाः।
ऊचिरे भरतं सम्यग्वीक्ष्य रामस्य तद्व्रतम्।।
एष सत्यघरो रामः करिष्यति पितुर्वचः।
न निवर्त्सर्यति धर्मात्मा तवोपायशतैरपि।।
को हि व्यावर्तयेदेनं सत्यसन्धं महाव्रतम्।
अथरामोऽब्रवीद्वाक्यं सर्वेषामनुश्रृण्वताम्।।[20]

---

[18] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 101 / 1, 2, 3
[19] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 66 / 150, 151
[20] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 43 / 11–12

जब सीता कुलव्रत धर्म के पालन के लिए वन जाने को निश्चय करती है तब राम सीता को समझाते हुए कहते है तुम महल में रहो वन में मत चलो क्योंकि वन में तुम्हे, अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा –

त्व गृहे तिष्ठनैवासि वनवासोचिताप्रिये।
साक्षाद्वि देहाराजस्य तनया सुखमाजनम्।
शिरिषि सुकुमारांगी पद्भ्यां पद्नदलोपमा।।
क्व सा महत्यरण्यानी दर्मगर्मक्षमातता।
क्व ते वपुः सौकुमार्य तस्मात्वं तिष्ठवेश्मनि।
त्वं भीरू पद्नपत्राक्षि स्वभावदेव भामिनि ।
क्व तद्वनं भयंकर सिंह व्याघ्रादिभिर्वृतम।।[21]

राम के इस प्रकार समझाने पर सीता कहती है कि वह अपने पति व्रत धर्म का निर्वाह कर रही है जो रघुकुल की मर्यादा है वह उसी कर्तव्य का पालन कर रही है। वह राम के साथ वन जाने का निश्चय करती है। राम उनके सामने वनवास की विभिन्न कठिनाइयों को बताते हैं परन्तु वह अपने धर्म से विचलित नही होती हैं वह श्रीराम से कहती है कि ऐसी दूसरी ही स्त्रियों होती हैं जो स्वयं तो भवन में रहे और उनके पति वन में सत्य की प्रतिष्ठा के लिए मुनियों के समान जीवन व्यतीत करें। पति वनवासी की तरह वल्कल वस्त्रों को धारण करें और वे सुन्दर वस्त्रों को धारण करें ऐसी दूसरी ही स्त्रियाँ होती हैं। पति वन के दुर्गम स्थल पर रहे और वह भवन में रहे। पति शान्त भाव से रास्ते में सूर्य की गर्मी को सहन करें और स्वयं छाया के बीच में निवास करें। पति कष्ट पूर्वक मिट्टी के युक्त पदार्थों का भोग करें और वे ऐश्वर्य का भोग करें, ऐसी दूसरी ही स्त्रियाँ होती है। पति वन में भयंकर जीवों के क्रूर शब्दों कों सुनें और वे स्वयं वीणा की ध्वनि सुनें ऐसी दूसरी ही स्त्रियों होती है।[22]

सीता कहती है कि मैं जनक पुत्री हूँ मेरे लिए सुःख दुःख एक समान है।

अहम् वैदेहराजस्य तनया युक्त चेतसः।
समान सुख दुःख तुल्यानिन्दास्तुतेर्मुने।।[23]

सीता के कथन में उनका पतिव्रत धर्म द्रष्टव्य होता है। जो उनके कुल की मर्यादा है। यदि वह इसके विपरीत आचरण की प्रस्तुत करती तो यह उनकी कुलधर्म की मर्यादा के विपरीत होता और काव्य में कुलगत अनौचित्य की प्रस्तुति होती। उनका जीवन आदर्श सभी स्त्रियों के लिए प्रत्येक परिस्थिति में पथ प्रदर्शक है। सीता के चरित्र में असाधारण पातिव्रत, त्यागशील, निर्भयता, शान्ति, क्षमा, सहनशीलना, धर्मपरायणता, संयम, सदाचार, साहस, शौर्य सभी गुण विद्यमान हैं ।

---

[21] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 42 / 13–17
[22] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 9 / 78, 81, 82
[23] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 9 / 94, 95, 97, 98, 100, 101, 102

लक्ष्मण भी अपने कुल की मर्यादा का पालन करते हैं। वे कुलव्रत धर्म का पालन करते हुए राम का अनुगमन करते हैं। और राज्य सुख का परित्याग कर अपने भाई राम की सेवा के लिए वन को जाते है।

भरत का चरित्र भी कुलव्रत धर्म से परिपूर्ण है। उन्होंने अयोध्या के राज्य को अस्वीकार कर, राज्य मे रहकर भी तपस्वी की भाँति जीवन यापन किया यह भ्रातप्रेम का सर्वश्रेष्ठ उद्धरण है।

भरत कहते हैं–

अहम् वने निवत्स्यामि तस्यार्यस्य प्रतिज्ञया।
तमहं स्थापयिष्यामि पितृ पैतामहासने।।
राज्यासनस्थः सततं रामो राजीवलोचनः।
पालयानः प्रजा सर्वामम प्रीत्यै भविष्यति।।[24]

भरत के प्रेम को देखकर निषाद राज कहता है

धन्योऽसि त्वं महाबाहो रघुणांकुल भूषणः।।[25]

विश्व में शायद ही किसी महाकाव्य में रामायण की तरह कुटुम्ब की मर्यादा स्थापित होगी। यदि भरत को राजसिंहासन में बैठा दिखाया जाता तो यह कुटुम्ब की मर्यादा के सर्वथा विपरीत होता और इससे भरत के चरित्र का घोर पतन भी होता। शत्रुघन भी अपने भाई भरत का अनुगमन करते है। निश्चय ही जिस कुटुम्ब में पत्नी का पति के प्रति, भाई का भाई के प्रति, गुरू का शिष्य के प्रति, राजा का प्रजा के प्रति, शिष्य का गुरू के प्रति मर्यादा स्थापित हो। वह श्रेष्ठ कुलौचित्य का सुन्दर उद्धरण है। निष्कर्ष रूप में हमे ज्ञात होता है कि भुशुण्डि रामायण के सभी सात्त्विक पात्रों में कुल की मर्यादा स्पष्ट दर्शनीय होती है। यदि सभी पात्र इसके विपरीत अनुगमन करते हो तो निश्चय ही काव्य कुलगत अनौचित्य से युक्त होता।

अतएव श्रेष्ठ कुल की विशेषता इसमें है कि व्यक्तियों में काम, क्रोध, लोभ, स्वार्थ साधन नहीं होना चाहिए। पारस्परिक द्वेष भावना के कारण रावण के कुल का विनाश हुआ। समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा उसके कुल पर ही निर्भर करती है। अच्छे कुल के लिए कुल के लोगों में तप, यज्ञ, दान, सदाचार आदि का होना परमावश्यक है। वस्तुतः जिस कुटुम्ब मे छोटे–बड़े की मर्यादा स्थापित हो, एकता स्थापित हो इससे सुन्दर कुलौचित्य और क्या हो सकता है?

---

[24] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 31/57
[25] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 32/68

ग– व्रतौचित्य

मानव द्वारा लोक व्यवहार में जिस किसी कार्य की पूर्णता के लिए दृढ़ निश्चय एवं संकल्प लिया जाता है, वह व्रत कहलाता है। मानव कभी–कभी परहित की सुन्दर भावना से प्ररित होकर अथवा अपने हित के लिए भी व्रत धारण करता है, जो कभी–कभी अत्यधिक ही मंगलकारी एवं सुखद सिद्ध होता है। व्यक्ति के द्वारा जब किसी प्रकार दृढ़ निश्चय किया जाता है, चाहे वह हमारे समाज से जुड़ा हो अथवा धार्मिक आस्था से अथवा राजनीति से जिसमें सभी प्राणियों के कल्याण की भावना निहित हो, तो हम उस दृढ़ भावना या निश्चय को व्रत की संज्ञा देते है। हमारे समाज व्रत के द्वारा दूसरा रूप भी द्रष्टव्य होता है। हमारे भारतीय समाज में लोगों को विभिन्न प्रकार के व्रत धारण करते हुए देखा जाता है। इनमें प्रमुख रूप से एकादशी का व्रत, तथा सोम, मंगल आदि विभिन्न प्रकार के व्रत है। ये व्रत मानव की विभिन्न आस्थाओं से सम्बन्धित होते हैं। कुछ व्रत लम्बे भी होते है। जैसे चातुर्मास्य का व्रत। इन व्रतो के अलावा तापस व्रत अर्थात तपस्वियों द्वारा सम्पादित व्रत। इसके अलावा अन्य व्रत भी व्रत के अन्तर्गत आते है। हमारी भारतीय संस्कृति में पतिव्रत धर्म, एक पत्नीव्रत तथा पुत्रव्रत धर्म आदि अनेक ऐसे व्रत है जिनका बहुत ही गौरवपूर्ण इतिहास है।

व्रतौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण

व्रतौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र ने 'औचित्यविचारचर्चा' में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है–

काव्यार्थः साधुवादहः सदव्रतौचित्यगौरवात्।

सन्तोषनिर्भरं भक्त्या करोति जनमानसम्।। [26]

"व्रत का सुन्दर विधान औचित्य से गौरवान्वित होकर काव्यार्थ के रूप में प्रस्तुत होने पर सहृदयों के मानस पटल को सन्तोष से आपूरित करके आनन्दित कर देता है।"

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण

आचार्य क्षेमेन्द्र ने व्रतौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु 'मुक्तावली' का उद्धरण प्रस्तुत किया है–

अत्र वल्कलजुषः पलाशिनः पुष्परेणु भरमस्म भूषिताः।
लोलभृङ्गवलयाक्षमालिकास्तापसा इव विमान्ति पादपा।।[27]

"इस वन प्रदेश के वृक्ष बल्कलधारी होने के कारण तपस्वियों की भाँति प्रतीत हो रहे है। वृक्ष एवं तपस्वी दोनों की पलाश तथा पुष्प धारण करते है। एक (वृक्ष) पर भ्रमरों की कतारे मँड़राती हैं तो दूसरा अक्षों की माला से विभूषित है।"

---

[26] औचित्यविचारचर्चा कारिका– 29
[27] औचित्यविचारचर्चा, पृ0 190

प्रस्तुत उद्धरण के तपस्वियों के अनुरूप व्रत को प्रदर्शित करने वाले बल्कल भस्म तथा अक्षसूत्र सुशोभित वृक्षों में शान्तिकालिक स्वच्छ चित्त्वृत्ति का जो प्रदर्शन किया गया वह सर्वथा वृतौचित्य का आभास कराता है।

प्रत्युदाहरण – व्रतगत अनौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि दीपक द्वारा रचित निम्न उद्धरण के माध्यम से स्पष्ट किया है–

पुण्ये ग्रामे वने वा महति सितपटच्छन्न पालीकपाली
मादाय न्यायगर्भ द्विजहुतहुतभुग्घूमोपकण्ठम्।
द्वारं द्वारं प्रवृत्तों वरमुदरदरी पुरणाय क्षुधार्तो–
मानी प्राणी सनाथो न पुनरनुदिनं तुल्यकुल्येषुदीन।[28]

"भूख से पीड़ित होकर किसी पवित्र ग्राम में अथवा घोर जंगल में श्वेत वस्त्र से आच्छादित भिक्षा–पात्र को लेकर पेट रुपी कन्दरा को भरने के लिए धार्मिक अन्तःकरण वाले ब्राह्मणों के द्वारा हवन की गई अग्नियों के धूम से धूमिल समीप प्रान्त वाले द्वार–द्वार पर याचना करने वाला स्वाभिमानी प्राणी श्रेष्ठ है पर अपने स्वजनो से ही माँग–माँग कर संतुष्ट रहने वाले दीन व्यक्ति को कभी भी श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता।

यहाँ वैराग्य के उचित मर्यादा से विहीन वर्णन के प्रसंग में सांसारिक बन्धन में डालने वाले अभिमान का जो उपन्यास हुआ है वह एक वैरागी के लिए उचित नहीं है। प्रस्तुत उद्धरणों में अनौचित्य दर्शनीय है।

भुशुण्डि रामायण में व्रतगत औचित्य

व्यक्ति के द्वारा साधारण जीवन से विरत होकर तपोधनों के योग्य व्रत ग्रहण करना व्रतौचित्य कहलाता है। दूसरे अर्थ में किसी श्रेष्ठ लक्ष्य अथवा उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्रत लेना व्रतौचित्य के अर्न्तगत माना जाता है। भुशुण्डि रामायण में ऐसे व्रत का अभाव नही है। श्री राम का सम्पूर्ण जीवन ही व्रतौचित्य का उदाहरण है। वन पथ पर जाते हुए श्री राम और लक्ष्मण, मुनियों की ही तरह ही रुप धारण करते है।

राम का तापसी जीवन अलौकिक था वनवासी जीवन के लिए उन्होने जो व्रत लिए उनका उन्होने पूर्ण निष्ठा के साथ पालन किया। वनगमन करते समय उन्होने सभी राजसी सुख का परित्याग कर दिया। राम का तप अलौकिक था। त्याग उनका प्रधान गुण था। राम ने राज्य का त्याग और वनवास का वरण एक साथ किया। उनके ऐसे अलौकिक व्रत से प्रजा को यही प्ररेणा मिलती है कि सुख दुःख तथा सम्पत्ति विपत्ति में भी एक समान ही रहना चाहिए। राम ने वनवास को ग्रहण कर अयोध्या के राज परिवार में होने वाली महान कलह को रोक लिया। राम ने अपने तप और त्याग द्वारा प्रेरणा प्रदान की। वस्तुतः राम का यदि इसके विपरीत आचरण दिखाया जाता तो वह व्रतगत अनौचित्य से युक्त होता और इससे

[28] औचित्यविचारचर्चा पृ0 191

राम के चरित्र का घोर पतन हो जाता। किन्तु यहाँ पर रचयिता ने राम के वनवासी जीवन का वर्णन किया। वह अत्यन्त ही उचित है। भरत का सम्पूर्ण जीवन एक तपी अथवा व्रती की ही तरह वर्णित है। उन्होंने राज्य सुख का कभी अनुभव ही नहीं किया। राम वनगमन के उपरान्त वे स्वयं राज सिंहासन पर आरूढ़ होना पसंद नहीं करते उनका समस्त जीवन व्रत ही औचित्यमय है। वे श्रीराम को अयोध्या वापस लाने के लिए चल पड़ते है। अनुनय विनय करने पर जब श्रीराम अयोध्या वापस नहीं आते है। तब भरत उनकी चरण पादुका लेकर अयोध्या वापस आकर उसको राज्य सिंहासन पर आरूढ़ करके धर्म पूर्वक नंदिग्राम में पर्णकुटी बनाकर जीवन यापन करने लगे उनका जीवन एक व्रती के समान था। भरत ने भी राम के वियोग में एक वनवासी का जीवन व्यतीत किया। वे पृथ्वी पर शयन करते है। मन से ब्रह्मचर्य व्रत में तत्पर जटाधारी भस्म का लेप किये हुए वीर को धारण करने वाले कुश पर लेटते है। और वल्कल वस्त्र धारण करते हुए रचयिता ने एक व्रती की भाँति उनके जीवन का चित्रण किया है।

भूशायिनं ब्रह्मचर्यव्रत तत्परमानसम्।
जटाधरं भस्मलेपं चीवराजिनवाससम्।।
कुशास्तरणमास्तीर्य तिष्ठन्तं वल्कलावृतम्।
नन्दिग्राम कृतारासं व्रजवासिजनै सह।।[29]

प्रस्तुत उद्धरण में भरत के तपस्वी जीवन पर प्रकाश डाला गया है। राम के तपस्वी जीवन का अनुकरण करते हुए भरत ने स्वयं एक तपस्वी की भाँति जीवन व्यतीत किया है। सिर पर जटा, जूट, मुनियों के समान वल्कलवस्त्र धारण कर तथा कुश की आसनी बिछाकर भरत ने ऋषियों के समान व्रत और नियम का आचरण किया है। वस्तुतः यदि भरत को राज सिंहासन पर बैठाकर उनके सिर पर स्वर्ण मुकुट आदि दिखाया जाता तो भरत के चरित्र का घोर पतन हो जाता, किन्तु यहाँ पर रचयिता ने भरत के जिस तपस्वी त्यागी एवं व्रती जीवन का उल्लेख किया वह अत्यन्त ही उचित है।

भारतीय संस्कृति के अनुरूप सीता पतिव्रत धर्म का पालन करती है। वे राम के साथ वन जाने का निश्चय करती है। क्योंकि हमारी संस्कृति में एक स्त्री का कर्त्तव्य पतिव्रत धर्म का पालन करना है। सीता ऊर्मिला से कहती है–

यथाऽऽज्ञापयते साध्वि पतिस्ते विदितव्रतः।
तदेव कर्तुं योग्यासि स्त्रियो हि पतिदेवताः।।
मया त्ववश्यं गन्तव्यं पत्या साकं वनं प्रति।
अहमेवाभविष्यं च महिषी राज्य सम्पदि।
अहमेव भविष्यामि वनेऽपि सहचारिणी।।
पत्या सहस्त्री नियतं भाजनं सुखदुःखयोः।
मा विषीदोर्मिले नित्यं श्वश्रूं परिचरिष्यसि।।[30]

---

[29] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 49/10, 11, 12
[30] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 50/124, 125, 126

श्री राम के द्वारा वन में नाना प्रकार के क्लेशों को सुनकर भी सीता जी अपने निश्चय से विचलित नहीं होती है। अन्त में सीता जी के प्रेम की विजय हुई राम ने प्रेमपूर्वक उन्हें साथ ले चलना स्वीकार कर लिया। पति सेवा में सदा प्रसन्न रहने वाली सीता वन में जाकर समस्त भौतिक सुखों को भूल जाती है। वे निरन्तर राम की सेवा कर पतिव्रत धर्म का पालन करती है। सीता के चरित्र में पारिवारिक व्रत का पालन भी दर्शनीय है। राम के स्वर्ण हिरण के पीछे चले जाने पर रावण एक भिक्षुक रूप बनाकर सीता के पास आकर भिक्षा की याचना करता है। सीता पारिवारिक व्रत का पालन करते हुए भिक्षा प्रदान करती है। रावण सीता से भिक्षा की याचना करते हुए कहता है कि–

हे देवि भवती भिक्षां ददातु सततव्रता।
मह्यं दीनाय विप्राय द्वार प्राप्ताय सक्षुधे।।
सा श्रुत्वा वचन भिक्षोर्दीनं करूणमानसा।
आदाय फलशाकान्नमाजगाम बर्हिर्गृहात्।।
चञ्चलेव तनुदयोतैमसियन्त्याखिला दिशः।
मुखेन्दु चन्द्रिकावृन्दं विकिरन्ती पुरः पुरः।।
अथात्मना विनिर्गत्यं लीलाकारणमानुषी।
आवसथ्याग्निमविशत् सर्वज्ञा सर्वकारणा।
भिक्षादानोन्मुखीमेतां मायाभिक्षुरवोचत्।
नाहं प्रचलितुं शक्तः क्षुधा व्याकुलमानसः।।
इहेवागत्य मे देहि हे देवि नियतव्रते।
अभिगम्योत्तमं दानं यत आहुर्मनीषिणः।।
अथ सा किल सौमित्रकुण्डली कृतदेशतः।
बहिर्जगाम सर्वज्ञा भिक्षादानार्थमुदयत्।।[31]

इस प्रकार रावण के भिक्षा याचना पर सीता उनको भिक्षा प्रदान करती है। सीता से द्वारा रावण को दिया गया दान पारिवारिक व्रत के अनुकूल है। क्योंकि हमारी संस्कृति में पतिव्रत धर्म, पत्नीव्रत धर्म, पारिवारिक व्रत धर्म भी व्रत के अन्तर्गत ही माने जाते है। यदि सीता इसके विपरीत आचरण करती तो वह उनके पारिवारिक व्रत के विपरीत होता और उनके चरित्र का घोर पतन होता। यहाँ पर कवि ने सीता के चरित्र में पारिवारिक व्रत की तरह व्रती जीवन का उल्लेख किया है। वह अत्यन्त ही उचित है। वस्तुतः हमें ज्ञात होता है कि भुशुण्डि रामायण में सर्वथा वृतौचित्य का आभास प्राप्त होता है।

[31] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 155/8–14

घ– सत्त्वौचित्य

मानव शरीर में विद्यमान सत् का अंश उसके व्यवहार तथा उसके आचरण द्वारा ज्ञात होता है। सभी अच्छे आचरणो के द्वारा व्यक्ति में जिस सात्त्विक तेज का संचय होता है, वह सत्त्व कहलाता है। कोई भी व्यक्ति तेजस्वी, पराक्रमी हो सकता है, किन्तु सत्त्ववान पुरूष के सत्त्व का प्रदर्शन दीनरक्षण, मर्यादा पालन एवं मानवता के रक्षण में होता है। यदि कोई कवि अपने काव्य में इस प्रकार के सत्त्व से सम्पन्न चरित्र का समावेश करता है, तो उसके सत्त्व से न केवल वह काव्य महान बनता है, अपितु उसके अध्ययन से पाठक भी अपने हृदय में सत्त्वोद्रेक का अनुभव करने लगता है तथा संकुचित परिधि से निकलकर मानवता के व्यापक धरातल पर विचार करने के लिए बाध्य होता है।

सत्त्वौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण

सत्त्वौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'औचित्य विचार चर्चा' में इस प्रकार परिभाषित किया है–

चमत्कारं करोत्येव वचःसत्त्वोचितं कवेः।
विचाररुचिरोदार चरितं सुमतेरिव ।।[32]

"सत्त्व के अनुरूप वर्णन से कवि की सूक्ति उसी तरह अपूर्व आनन्द प्रदान करती है जैसे–विचार करने पर सद् व्यवित्त का चरित्र सुशोभित होता है।"

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण

आचार्य क्षेमेन्द्र ने सत्त्वौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु स्वरचित 'चित्रभारत नाटक' का निम्न उदाहरण प्रस्तुत किया है–

नदीवृन्दोद्दाम प्रसरसलिला पूरिततनुः
स्फुरत्स्फीतज्वाला निबिडवडाग्निक्षतजलः।
न दर्प नो दैन्यं स्पृशति बहुसत्वः पतिरपाम्
अवस्थानां भेदाद्भवति विकृतिर्नैव महताम्।।[33]

"महान व्यक्तियों के हृदय में परिवर्तन से विकार नहीं आता अर्थात वह सुख दुख में एक समान रहते है। जिस प्रकार समुद्र न तो अगणित नदियों के जल पर गर्व करता है और न ही बड़वानल द्वारा जलाने पर दीनता प्रकट करता है। यह कथन सिद्ध करता है कि महान लोगों पर समय अथवा अवस्था के विषय होने पर भी प्रभाव नहीं पड़ता है।"

इस कथन से कि 'समुद्र असंख्य नदियों का जल ग्रहण करने पर एवं बड़वानल द्वारा दाह क्रिया करने पर भी गर्व या दीनता प्रकट नहीं करता।' यह सिद्ध होता है कि महान पुरुष किसी भी सम या विषय विकार का अपने ऊपर

---

[32] औचित्यविचारचर्चा कारिका –31
[33] औचित्यविचारचर्चा पृ0 198

प्रभाव नहीं पड़ने देते है। इस कथन से महापुरूषों के धैर्य एवं गाम्भीर्य का जो गुण प्रकट हुआ है वह सर्वथा औचित्य युक्त है।

प्रत्युदाहरण – सत्त्वगत अनौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने भट्टइन्दुराज के निम्न उद्धरण के द्वारा स्पष्ट किया है–

आश्चर्य वडवानलः स भगवनाश्चर्यमम्भोनिधि
र्यत्कर्मातिशयं विचिन्त्य मनसः कम्प समुत्पद्यते।
एकास्याशघस्मरस्य पिबतस्तृप्तिर्न जाता जलै,
रन्यस्यापि महान्मनो न वपुषि स्वल्पोऽपि जातः श्रमः।।[34]

"अत्यधिक समर्थ बड़वानल एवं समुद्र दोनो ही आश्चर्यजनक है। इनके श्रेष्ठ कर्म के चिन्ता मात्र से ह्रदय में कम्पन आ जाता है। इनमें एक (वडवानल) शोषण करते हुए अधिक से अधिक जल पी लेने पर भी तृप्त नहीं हो रहा है। दूसरा महासत्त्वशाली समुद्र इतना संताप सहकर भी अपने शरीर पर स्वल्प भी क्लेश का अनुभव नहीं करता है।"

यहाँ पर वडवानल एवं समुद्र के सत्त्वाधिक्य के वर्णन के संदर्भ में अति विपुल जलाशय न होने के कारण जल पीते हुए एक (वडवानल) की जल से तृप्ति न हुई और दूसरे (समुद्र) को जो इस वडवानल का आश्रय है, इससे थोड़ा सा भी कष्ट नहीं हुआ, अतः दोनों ही आश्चर्य के विषय है। इस कथन में निरन्तर असन्तोष के कारण बड़वाग्नि पर किसे शर्म नहीं आती। दूसरी ओर सागर में एक याचक को भी इच्छा पूर्ण करने की शक्ति नहीं है। इस प्रकार असत्त्व में सत्त्व को बतलाकर प्रशंसा करना अनौचित्य को प्रकाशित कर रहा है।

भुशुण्डि रामायण में सत्त्वगत औचित्य

कवि का सत्त्वौचित्य वचन उसी प्रकार चमत्कार की सृष्टि करता है, जिस प्रकार बुद्धिमान व्यक्ति का विचार के साथ प्रस्तुत किया गया उदार चरित। सत्त्व से तात्पर्य अर्न्तबल या मनोबल से है। भुशुण्डि रामायण में अनेक पात्रों में सत्त्वौचित्य दर्शनीय है।

भुशुण्डि रामायण में निरूपित राम ब्रह्म स्वरूप है। भरत, लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव, विभीषण जो भी उनका आश्रय करते है वे सभी परमपद के भागी बनते है। उनमें सत्त्व गुण विद्यमान है अतः उनकी प्रवृत्ति सात्त्विक है। इसके विपरीत रावण में तमोगुण की प्रधानता है। अतः उनकी प्रवृत्ति तामसिक है जो उसके विनाश का कारण है।

सर्वप्रथम राम के चरित पर एक दृष्टि डाले तो हमें दृष्टव्य होता है कि राम को राज्य का लोभ नहीं और भरत के प्रति उनका अत्यधिक ही स्नेह है। यदि भरत के प्रति ईर्ष्या प्रकट होती तो अनौचित्य का दोष आ जाता है। किन्तु सत्त्व का उचित प्रयोग होने से सत्त्वौचित्य दर्शनीय होता है। श्रीराम तो सत्त्व का ही

---

[34] औचित्यविचारचर्चा पृ० 200

प्रति रूप है। उनका अवतरण ही सत्त्व को प्रतिष्ठित करने तथा तामसिक वृत्तियों के विनाश के लिए हुआ।

वन प्रस्थान करते समय राम को बिल्कुल भी कष्ट नहीं होता है। अपितु वह पिता दशरथ को समझाते हुए कहते है कि मेरे लिए घर अथवा वन एक समान ही हैं। इसलिए आप दुखी मत हो। मै आपके सत्य वचन के पालन के लिए वन जाऊँगा। मुझे राज्य प्राप्ति की इच्छा नहीं है।

अपि तात कियत्कार्य मयि राज्याभिषेचनम्।
भवान् यस्यानुरोधेन सत्यमप्यति वर्तते।।
न में यस्ये स्पृहा राजन् नाहं तुष्यामि भोगतः।
कानने वा गृहे वापि समानं ममवर्त्तनम्।
दीयतां भरते राज्यं पाल्यतां सत्यभाषितम्।।[35]

राम इस कथन में धैर्य एवं गाम्भीर्य का जो गुण प्रकट करते है वह उनके चरित्र सत्त्वौचित्य को दर्शा रहा है। राम कहते है कि राजन सत्य को छोड़कर क्या मैं राज्य सुख का भोग करूँ। वन में मुझे घर के समान सुख प्राप्त होगा। राम दशरथ को इस प्रकार समझाकर सीता लक्ष्मण के साथ वन को प्राप्त करते है। राम सत्य के लिए राज्य सुख का भी परित्याग कर देते है। यदि कवि अपने काव्य में नायक का इसके विरुद्ध आचरण को दिखाता तो निश्चय ही काव्य में अनौचित्य आ जाता जो सहृदय को मान्य नहीं होता।[36]

महाराज दशरथ के चरित्र में भी सत्त्व दर्शनीय है। महाराज दशरथ को राम प्राणों से भी प्रिय है परन्तु वे सत्य का पालन करते है। हृदय से न चाहते हुए भी राम को वनवास प्राप्त होता है। यह महाराज दशरथ की सत्य निष्ठा है, अन्यथा वे सर्वाधिकार सम्पन्न थे। राम को वन न भेजते। परन्तु वे असत्य मार्ग पर नहीं चलते है और इस प्रकार पुत्र प्रेम में अपने प्राण देकर सत्य की रक्षा करते है।

केवल राम का चरित्र ही नहीं बल्कि भरत, लक्ष्मण आदि में भी सत्त्व का प्रतिपादन अनेक अवसरों पर हुआ है। भरत में भी सत्त्वौचित्य दर्शनीय होता है। वह राम को अयोध्या वापस लौटने और राज्यपद ग्रहण करने का अनुरोध करते है। राम को तृण शैय्या के अवशेषों पर देखकर उनके नेत्रों में आसूँ भर आते है।

भरत कहते है कि मैं भाई राम को सेना सहित अयोध्या वापस कर दूँगा और स्वयं वन जाऊँगा, क्योंकि न्याय के विचार से राज्य का अधिकारी ज्येष्ठ पुत्र ही होता है। भरत को राज्य का मोह नहीं उनके व्यक्तित्त्व में सत्त्वौचित्य की छटा विद्यमान है। यदि वह राज्य का लोभ करते तो यह अनुचित ही होता। भाई भरत से मिलकर राम विह्वल हो जाते हैं। और वे भरत से अनुरोध करते है कि वे उनकी आज्ञानुसार गुरू वशिष्ठ और वृद्ध मंत्रियों के निर्देश से राज्य करें। भरत राज्य की रक्षा करने के लिए भगवान राम की चरण पादुका लेकर उन्हें राज्य

---

[35] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 81 / 48, 49
[36] भुशुण्डि रामायण पश्चिमखण्ड, अध्याय 66 / 180, 181

सिंहासन पर रखकर उनकी सेवा करते हुए राज्य का भार संभालते है। भगवान राम के वापस लौटने पर उन्हें राज्य वापस सौपने का वचन देते है। इन्हीं गुणो के फलस्वरूप भरत के चरित्र में सत्त्वौचित्य दृष्टिगोचर होता है। वे राम वनगमन से बहुत ही ग्लानि का अनुभव करते हुए इस प्रकार कहते है–

अहो शत्रुघ्न पश्येदं कैकेय्या दुश्चरित्रकम्।
यथा मे नाशिता कीर्तिरार्यदास्यसमुद्भवा।।
किं करोमि क्व गच्छामि दुःखपारं न दृश्यते।
इत्युक्त्वा विललापोच्चैर्भरतौ भूरि दुःखितः।।[37]
ब्रह्म हत्या महाघोरा तस्यलिम्पतु विग्रहम्।
रामस्य यो वने वासं स्वस्थोऽपि विचिन्तयेत।
हत्वा मित्रं गुरू विप्रं तत्स्त्रियोऽप्यमिपद्यताम्।
रामस्य यो वने वास स्वस्थोऽपि विचिन्तयेत्।
तस्य श्रेयस्करी बुद्धिः कदापि समुदेतु मा।।[38]

सीता के चरित्र में भी सत्त्वौचित्य दर्शनीय है। सीता पति परायण है। वे प्रत्येक स्थिति में राम का अनुगमन करती है। उन्होंने हमारे स्त्री समाज के लिए एक आदर्श मार्ग का अनुकरण किया है। जीवन में कठोर परीक्षाएँ देकर यह सिद्ध कर दिखाया है कि जो स्त्री आपत्ति काल में भी धर्म का अनुगमन करेगी। उसकी कीर्ति सदा के लिए संसार में अमर हो जायेगी। सीता की पति भक्ति, साधुओं के प्रति सेवाभाव सबका सम्मान करने की चेष्ठा, सबके साथ यथा योग्य प्रेम का वर्ताव ऋषियों की सेवा सभी गुण पूर्ण रूपेण अनुकरणीय है। संसार में कोई भी नारी प्रमोद, मोह, आसक्ति छोड़कर सत्त्वरूपी धर्म का पालन करेगी। उसकी कीर्ति युगों–युगों तक अमर रहेगी। लंका में भी उनके सात्त्विक गुणों की प्रशंसा होती है।

वस्तुतः हमें ज्ञात होता है कि भुशुण्डि रामायण में सर्वत्र सत्त्वौचित्य की छठा विद्यमान है। रावण को असत् की मूर्ति तथा राम को सत् का स्वरूप माना गया है। असत् सदैव जगत का विध्वंसक है। असत् रूपी बल चाहे रावण में हो अथवा कंस में सदैव असत् के कारण विनाश को प्राप्त होता है। रावण लोक पीड़ित था। उसका बल रक्षा का नहीं विध्वंस का कारण बना। इसके विपरीत राम का सात्त्विक गुण लोक संरक्षण प्रदान कर सका। रावण के वध से समस्त मुनियों और देवताओं को प्रसन्नता प्राप्त हुई।

---

[37] भुशुण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड, अध्याय 30/6, 7
[38] भुशुण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड, अध्याय 26/51, 52, 54

ङ– तत्त्वौचित्य

तत्त्व का अर्थ 'सार' है। तत्त्व का वर्णन विद्वानों ने विविध प्रकार से किया है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपनी कृति 'औचित्यविचारचर्चा' में तत्त्व औचित्य एवं सार औचित्य दोनों के बारे में अलग–अलग विचार प्रस्तुत किये है, किन्तु ये दोनों विचार इतने घनिष्ठ है कि उनमें अन्तर स्थापित करना कठिन है। इसलिए हम यहाँ केवल तत्त्वौचित्य के विषय में ही विवेचन करेंगे। सर्वप्रथम कतिपय भारतीय दार्शनिक विद्वानों का तत्त्व के विषय में उनके विचारों का उल्लेख कर रहे हैं–

प्रकृत र्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पंचम्य पंच भूतानि।।

सांख्य शास्त्र में पुरूष, प्रकृति, महत्त्वत्व एवं अहंकार आदि पच्चीस तत्त्वों को स्वीकार किया गया है।[39]

वेदान्त के मतानुसार "इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय जिसमें होता है वह ब्रह्म है अर्थात ब्रह्म ही एकमात्र परमार्थ तत्त्व है।"[40]

बौद्ध दर्शन ने शून्य अथवा अभाव को तत्त्व कहा है। जैन दर्शन आकाश, जीव, आदि को तत्त्व मानते है।[41]

चार्वाक दर्शन के मतानुसार पृथ्वी, जल, वायु एवं अग्नि ही तत्त्व है।[42]

इन विभिन्न मतों के अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि ये विभिन्न तत्त्व संसार के मूल कारण के रूप में निरूपित है।

तत्त्वौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण

आचार्य क्षेमेन्द्र ने तत्त्वौचित्य को अपने ग्रन्थ 'औचित्य विचार चर्चा' में इस प्रकार परिभाषित किया है–

काव्यं हृदयसंवादि सत्य प्रत्ययनिश्चयात्।
तत्त्वोचितामिमानेन यात्युपादेयतां कवेः।।

"हृदयसंवादी कवि का काव्य सत्यज्ञान के निर्णय से तथा तत्त्वौचित्य कथन के कारण ग्रहणीय बन जाता है।"[43]

"तत्त्वौचित्य कथन के कारण कवि की सूक्ति सत्यज्ञान की स्थिरता के कारण हृदय संवादी होकर गृहणीयता की श्रेणी में आ जाती है।"[44]

---

[39] सांख्य कारिका–ईश्वरकृष्ण, कारिका, 22
[40] जन्माद्यस्य यतः। ब्रह्मसूत्र शंकर भाष्य 1/1/22
[41] बौद्धदर्शनम्, पृ0सं0 61, 62 उमाशंकर शर्मा ऋषि, चौखम्बासंस्कृत सीरीज, वाराणसी
[42] चार्वाक दर्शनम् पृ0सं0 4 उमाशंकर शर्मा ऋषि, चौखम्बासंस्कृत सीरीज, वाराणसी
[43] औचित्यविचारचर्चा, कारिका 30
[44] तत्त्वोचिताख्यानेन कवेः सूक्तं सत्यप्रत्ययस्थैर्यात्संवादि गृह्यतां याति। औचित्यविचारचर्चा, पृ0 194

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण

तत्त्वौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्वरचित 'बौद्धावदानलतिका' का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है–

दिवि भुवि फणिलोके शैशवे यौवने वा,
जरसि निधनकाले गर्भशय्याश्रये वा।
सहगमनसहिष्णोः सर्वथा देहभाजां,
नहि भवति विनाशः कर्मणः प्राक्तनस्य।।[45]

"पूर्वोपार्जित कर्म का स्वर्ग में, पाताल में, गर्भ में, बचपन में, वृद्धावस्था में अथवा मरणासन्न अवस्था में सभी प्रकार से मनुष्य के साथ जाने पर कभी भी विनाश नहीं होता।"

"यहाँ पूर्व जन्म कृत कर्मो का तीनों लोकों में तथा शैशव, यौवन एवं वृद्धावस्था में प्राणियो के साथ गमन करने में समर्थ होने पर विनाश नहीं होता है। निश्चय ही समस्त लोगों के हृदय संवादी होने के कारण यह कथन तत्त्वगतौचित्य को प्रदर्शित करता है।"

प्रत्युदाहरण– तत्त्वगत अनौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि माघ द्वारा रचित निम्न उद्धरण के माध्यम से स्पष्ट किया है।

बुभुक्षितै व्यार्करणं न भुज्यते,
न पीयते काव्यरसः पिपासितैः।
न विद्ययाकेन चिदुद्घतं कुल
हिरण्यमेवार्जय निष्फलाःकलाः।[46]

"भूख से व्याकुल व्यक्ति व्याकरण खाकर अपनी भूख शान्त नहीं करते है। और न तो प्यासे व्यक्ति काव्य–रस से ही अपनी प्यास बुझाते है। किसी ने विद्याध्ययन मात्र से अपने कुल का उद्धार भी नहीं किया है। कलायें निष्फल है, अतः धन कमाने की चिन्ता करो।"

प्रस्तुत कथन में दरिद्रता एवं दीनता के कारण अधैर्य से होने वाली कातरतावश यह सब तत्त्व के विपरीत बात कही है। अतः पूर्णतः अनौचित्य पूर्ण है। वस्तुतः सम्पूर्ण सम्पत्तियों को उत्पन्न करने वाली विद्याओं में ही कुल के उद्धार करने की शक्ति है अन्य किसी में नहीं।

भुशुण्डि रामायण में तत्त्वगत औचित्य

यदि कवि अपनी रचना में किसी मार्मिक सत्य का उचित अभिधान कर उसके प्रति अपनी सहृदयों का बोध निश्चित बना देता है तो वह कृति हृदय

---
[45] औचित्य विचार चर्चा, पृ0 194
[46] औचित्य विचार चर्चा पृ0 195

संवादी एवं ग्राह्य हो जाती है। तात्पर्य यह है कि कवि के द्वारा यदि किसी तात्विक बात की उद्‌भावना होती है तो उसके काव्य की उपयोगिता बहुत अधिक बढ़ जाती है क्योकि ऐसे काव्य में दूसरों का सामान्य सत्य की विशेष प्रतीत कराने की दृढ़ता होती है।

'तत्त्व' के औचित्य का विशेष अभिप्राय वस्तु के अनुरूप कथन से है, वस्तु का ऐसा कथन जो यथार्थ पर आधारित होने के कारण विश्वसनीय एवं मान्य है। तत्त्वौचित्य कहा जाता है।

भुशुण्डि रामायण में स्थान–स्थान पर तात्त्विक औचित्य दर्शनीय है।

भारतीयदर्शन में ईश्वर को परम सत्य माना है। वह सृष्टि को उत्पन्न करने वाला संचालन करने वाला तथा संहार करने वाला है। वह स्वतंत्र है, अन्तर्यामी है, नित्य है तथा अपरिवर्तनशील है। ईश्वर की शक्ति माया है जिसके द्वारा वह विश्व का प्रपंच करता है श्रुतियों के अनुसार ईश्वर ही विश्व का प्रथम कारण है।

ईश्वर तत्त्व के संदर्भ में यदि हम भुशुण्डि रामायण पर दृष्टिपात करें, तो भुशुण्डि रामायण में ईश्वर तत्त्व की चर्चा प्रारम्भ से लेकर अन्त तक हुयी ग्रन्थ में राम के माध्यम से ईश्वर को व्यक्त किया गया है।

रामं लोकाभिरामं रघुवरवनयं कोशलामुक्ति पुर्या,
खेलन्तं कामकेलि सुविमलसरयूतीर कुञ्जे नटन्त्म।।
जानक्या चारुहासच्छविविशदशरच्चन्द्रिकाकान्तिमत्या,
संयुक्तं राज्य (ज?) वेषं ललितरसमयं ब्रह्मपूर्ण नमामि।।[47]

सांख्यदर्शन विषयक तत्त्व वर्णन –

सांख्य दर्शन में निरूपित सत्त्व, रजस, तमस, पुरूष, प्रकृति, बुद्धि अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, आकाश, जल, पृथ्वी (श्रोत, त्वक चक्षु, जिह्वा, प्राण) ये पॉच ज्ञानेन्द्रियों (वाक्, पाणि पाद, पायु, उपस्थ) पॉच कर्मेन्द्रियाँ मन का विधिवत वर्णन भुशुण्डि रामायण में दर्शनीय होता है। भुशुण्डि रामायण के (उत्तरखण्ड) में भगवान श्रीराम के इस कथन में सांख्य दर्शन में वर्णित तत्त्वों का वैसा ही वर्णन दर्शनीय हो रहा है।

सत्वं रजस्तमश्चैव त्रिगुणाः परिकीर्तिताः।
पुरूषः प्रकृतिश्चैव महांश्चाहं कृति स्तथा।।
शब्दस्पर्शौ रूपरसौ गन्धो मायाश्च पंचकाः।
खं वायुर्ज्योतिरापो भूः पंचभूतानि च क्रमात्।।

[47] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 1/1

ज्ञानेन्द्रियाणि पंचैव श्रोत्रत्वग्घ्राण दृगसाः।
पश्च कर्मेन्द्रियाण्येव वाद्गोर्मेढ़ाङ्घ्रिपायवाः।।[48]

श्रीराम के इस कथन में सांख्य दर्शन में निरूपित तत्त्वों का जो वर्णन हुआ है। वह यथार्थ पर आधारित होने के कारण विश्वसनीय एवं मान्य है। रचनाकार ने नायक श्रीराम के माध्यम के मार्मिक सत्य का उचित अभिधान किया है। श्रीराम का कथन है कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, ग्रन्थ, ये सभी मेरे अंश में अधिष्ठित होकर प्रदीप की तरह प्रकाशित हो रहे हैं।

वेदान्त दर्शन विषयक तत्त्व वर्णन

वेदान्त दर्शन में निरूपित मन, बुद्धि, अहंकार, विज्ञान, चित्त, आदि तत्त्वों का भुशुण्डि रामायण में उसी प्रकार निरूपण हुआ है।

संकल्पं च विकल्पं च तदृति निरसेद्ध्रुवम्।
ततो बोद्धव्यरूपं तन्निश्चितं जायतें मनः।।
बोद्धव्यं बुद्धिविज्ञानं ज्ञायते तच्चवै ध्रुवम्।
विज्ञानं हीनविषयं चैतन्यं जायते ततः।।
मनो बुद्धिश्च विज्ञानं चित्तं चाहंकृतिस्तथा।
भवेत् पञ्चात्मकमिदमन्तः करणशब्दितम्।।[49]

भुशुण्डि रामायण में वेदान्त के प्रमुख तत्त्व माया को गुणों के सन्दर्भ में अनेक रूपों में परिभाषित किया है और महत्तत्त्व, बुद्धि, प्राण, प्रकृति और पुरुष इन सभी तत्त्वों को परमात्मा बतलाया है।[50]

भुशुण्डि रामायण के उत्तरखण्ड में वेदान्त दर्शन की ही तरह दुःख के आत्यान्तिक एवं ऐकान्तिक अभाव को मोक्ष कहा गया है।[51]

शास्त्र विषयक तत्त्व वर्णन

भुशुण्डि रामायण के उत्तरखण्ड के 44वें अध्याय में शास्त्रविषयक तत्त्वों का उचित निरूपण हुआ है। भगवान राम के कथन में शास्त्रविषयक तत्त्व के विषय में इस प्रकार वर्णन किया है कि मनीषियों को शास्त्रविरुद्ध कर्मो का परित्याग करना चाहिए और चित्त की शुद्धि के लिए शास्त्रविहित कर्मो को करना चाहिए। स्वाध्याय नित्य एवं नैमित्तिक कर्म अवश्य करने चाहिए।

---

48 भुशुण्डि रामायण, उत्तरखण्ड, अध्याय 19/1–3
49 भुशुण्डि रामायण, उत्तरखण्ड, अध्याय 20/12, 13, 14
50 भुशुण्डि रामायण, उत्तरखण्ड, अध्याय 20
51 "दुःखाभावस्तुमोक्षः स्यात्" भुशुण्डि रामायण उत्तरखण्ड, अध्याय 10/3

विरुद्धान्येव कर्माणि त्यक्तत्यनि मनीषिभिः।
विहितानि तु कर्माणि कुर्याच्चितस्य शुद्धये।।
स्वाध्यायो नित्यमध्येयः कार्य कर्म तदीरितम्।
नित्यं नैमित्तिकं चापि निरपेक्षया मुहुः।।[52]

इसमें निष्काम कर्म की प्रसंशा की गयी है, शास्त्र विषयक कर्म का विधान बताया गया है और कहा गया है जो वेदोक्त कर्म को ज्ञान के द्वारा विनिष्ट करता है। उसका समस्त ज्ञान निरर्थक हो जाता है। इसमें जिस सत्य का उद्घाटन किया गया है। वह तत्त्वगत औचित्य को दर्शा रहा है। तत्त्वज्ञानी पुरुष को आसक्ति रहित होकर पवित्र मन से श्रेष्ठ कार्य में लगना चाहिए संसारिक कार्यो को करते हुए स्त्री, पुरुष को उसमें आशक्त नहीं होना चाहिए।

दार्शनिक तत्त्व वर्णन

भुशुण्डि रामायण के उत्तरखण्ड के द्वितीय अध्याय में दार्शनिक तत्त्वों का उचित निरूपण हुआ है। राम को आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक इन तीनों गुणों मे युक्त बताया है।

राम ही सभी के आदि कारण हैं परब्रह्म परमात्मा है जो भक्तजनों के उद्धार के लिए धरती पर अवतरित होते हैं।

राम ही वह तत्त्व है जो प्रकृति के असमान भूतो को आकर्षित कर उनमें सामंजस्य उत्पन्न करता है। इस प्रकार पारस्परिक आकर्षण द्वारा ही विश्व का अस्तित्त्व और संचालन होता है। राम की भक्ति में स्थित भक्त को शोक, वृद्धावस्था मृत्यु का भय प्राप्त नहीं होता है।[53]

जिस प्रकार एक वृक्ष के स्तम्भ में अनेक शाखायें प्रति शाखायें होती है। अनेक प्रकार के पत्ते, पुष्प, फल होते हैं। सभी के विविध प्रकार के होने पर भी उसका एक ही तरु होता है वृक्ष में कोई भेद नही होता है फिर भी उसके स्तम्भ में भेद होता है। उसी प्रकार यह जगत भी ब्रह्ममय हैं। इसमें किसी प्रकार का संशय नही है। अर्थात् अनेक भिन्न–भिन्न प्राणी उसी एक परब्रह्म में ही स्थित है।

यथा वृक्षो भवेत्स्तम्भः शखाश्च प्रतिशाखिकाः।।
पत्राणि चैव पुष्पाणि फलानि च फलान्तरम्।
वृक्षत्वेन न भेदोऽस्ति स्तम्भत्वादिकृता भिदा।
एवं जगदिदं सर्व ब्रह्मैवेति न संशयः।।[54]

---

[52] भुशुण्डि रामायण, उत्तरखण्ड, अध्याय 44/4, 5
[53] भुशुण्डि रामायण उत्तरखण्ड, अध्याय 8/24–27
[54] भुशुण्डि रामायण उत्तरखण्ड, अध्याय 8/21, 22, 23

इस प्रकार दार्शनिक विचारों की उचित व्यंजना हुयी है।

ग्रन्थ के उत्तर खण्ड में कवि ने समस्त ब्रह्माण्ड को ब्रह्म मय माना है। पंच तंन्मात्राएं, चित्त बुद्धि, मन, अहंकार महत्तत्त्व और प्रकृति ये तत्त्व है ब्रह्म अचल और कूटस्थ है। वाणी के द्वारा उसका वर्णन नही किया जा सकता वह सर्वोच्च स्थान पर स्थित है उसकी विद्या महती है और विद्या के द्वारा ही उसका सहज रूप ज्ञात किया जा सकता है।

पञ्च भूतानिमात्राश्च चित्तं बुद्धिस्तथा मनः।
अहंकृतिर्महत्तत्त्वं प्रकृतिश्च सनातनी।।
प्रत्येक भेदनियतमभिन्नं ब्रह्मसर्वतः।
अचलं चैव कूटस्थं भेदाभेदोपयोगि तत्।।
अवाच्यं सर्वतोऽतीतमुच्चैः स्थानं परं पदम्।
तस्य विद्या च महती विद्या चापि तदात्मिका।।
अविद्यया न जानाति विद्यया वेत्ति तत्परम्।
विद्याविद्ये अतिक्रम्य परमं सुखमश्नुते।।[55]

प्रस्तुत श्लोक में भगवतगीता को दार्शनिक विचार को ही भुशुण्डि रामायण में ज्यों का त्यों वर्णित किया है।

न यत्र शोको न जरा न मृत्युर्न मदादयः।
तन्मदीयं परं स्थानं मद्भक्त संप्रपद्यते।।[56]

योगदर्शन विषयक तत्त्व वर्णन

भुशुण्डि रामायण में योगदर्शन पर विधिवत् प्रकाश डाला गया है। इस रामायण में कर्मयोग, ज्ञानयोग, एवं भक्तियोग त्रिविध योगों का वर्णन किया गया है। ज्ञान से उत्पन्न होने वाला ज्ञान योग कहलाता है। भक्ति से उत्पन्न होने वाला भक्तियोग कहलाता है। इन तीनों प्रकार के योगों में भक्ति योग श्रेष्ठ है क्योंकि भक्तियोग के लिए बहुत अधिक परिश्रम नही करना पड़ता है। यह बहुत प्रकार के फलों को देने वाला है। अराध्यदेव के स्वरूप को प्रदान करने वाला है। इसलिए इस योग की महत्ता स्वयं सिद्ध है। इस प्रसंग में कर्म पर भी बल दिया गया है क्योंकि कर्मो का परित्याग कर कोई भी योगी फल को प्राप्त नही कर सकता।[57]

रचयिता ने भुशुण्डि रामायण के पश्चिम खण्ड के 45वें अध्याय में ज्ञान योग का वर्णन किया है रचयिता ने प्रलय, सृष्टि, ब्रह्म, अविद्या आदि विषयों पर विधिवत प्रकाश डाला है तथा एक ब्रह्म को ही इन सभी का मूल कारण माना है।

---

[55] भुशुण्डि रामायण उत्तरखण्ड, अध्याय 8/24-27
[56] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 44/26
[57] भुशुण्डि रामायण पश्चिमखण्ड, अध्याय 44/130

तत्त्व का व्यवहारिक रूप वर्णन –

भुशुण्डि रामायण में कहीं–कहीं तत्त्व का व्यवहारिक रूप भी दर्शनीय होता है।

राम अपने शोकाकुल पिता दशरथ को समझाते हुए कहते है। पिता जी आप ज्ञान का आश्रय ले। जब तक व्यक्ति को अखण्ड आत्मतत्त्व का ज्ञान नही होता है। तभी तक वह सांसारिक विषयों में रमा रहता है। आत्मतत्त्व के ज्ञान से प्राणी सुखी हो जाता है राम दशरथ को वास्तविक तत्त्व का उपदेश देते हैं और स्वयं वन जाने का निश्चय करते हैं।[58]

राम कहते है कि ईश्वर शुभ, अशुभ कर्मो के अनुसार फल देता है। व्यक्ति जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। ईश्वर की लीला विचित्र है। उसे जानने योग्य जगत में कौन है। राम का यह कथन पूर्णतया सत्य पर आधारित है। जीवन में कभी–कभी हम देखते है कि किसी के अपराध का दण्ड कोई दूसरा भोग रहा है। दशरथ के द्वारा केकैयी को दिए गये दो वर के कारण ही राम को चौदह वर्ष का वनवास भोगना पड़ा। उनके साथ सीता और लक्ष्मण भी चौदह वर्ष तक भटकते रहे। यही नही कैकेयी के अपराध का परिणाम निर्दोष भरत के सिर पर आ पड़ा राम के विरह में व्याकुल भरत तपस्वी के समान जीवन व्यतीत करते रहे। वस्तुतः उस परमब्रह्म के कार्यों को कौन जान सकता है।

यथा कारयते दैवं तथा कुर्वञ्छुभाशुभम्।
लिप्यते स पुनस्तेन नीहारेणव भास्करः।।
दृष्टवा मोहाभिभूतानि भूतान्युच्चावचान्यपि।
प्राज्ञः स्वयं विरज्येत संसृतेर्घोरकर्मणः।।
कैकेयराजतनयानासूयितु मथोचिता।
अन्योहि प्रेरकस्तस्या अन्तरस्थो भवस्य।।
सा त्वं शोक परित्यज्य माव्यर्थ सुबृहत्तमम्।
अजस्रमाशिषाना मां वर्त्तेथा देवमाश्रिता।।[59]

भगवान राम ने जो दिव्य उपदेश दिया वह मानव मात्र का परम धर्म है उनके अनुसार जब विद्या या ज्ञान के द्वारा अज्ञान का विनाश होता है तो हृदय में परम आनन्द स्वरूप परमात्मा प्रकाशित होता है। उन्होने जो तत्त्वोपदेश दिया वह औचित्य पूर्ण है।

वस्तुतः भुशुण्डि रामायण में विभिन्न दर्शनों के तात्विक विचारों का वर्णन हमें दर्शनीय होता है। भारतीय दर्शन की तो यह एक विलक्षणता ही है कि वह समस्त चराचर जगत को एक ही परमात्मतत्त्व से उदभूत एवं अनुस्यूत मानता है

---

[58] भुशुण्डि रामायण उत्तरखण्ड, अध्याय 8/69–89
[59] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 9/2, 10, 11, 12, 13

जो अंत में उसी में विलीन हो जाता है इसका प्रत्येक कण एवं जीव उसी का रूप है। तात्त्विक रूप में वह स्वयं ही है।उससे भिन्न या उसके अतिरिक्त अन्य कोई तत्त्व नही है, परन्तु जगत के साथ ही उत्पन्न अज्ञान के कारण यह जगत रंग बिरंगे, सुख–दुख विभिन्न रूपों में दिखायी पड़ता है। और मूलपरमात्म तत्त्व तिरोहित रहता है।

भुशुण्डि रामायण में कवि ने मार्मिक सत्य का अभिधान कराकर जगत के अज्ञानता के आवरण को हटाने का प्रयास किया है। कवि ने विभिन्न दर्शनो के तात्त्विक विचारों को लगभग उसी स्वरूप में प्रस्तुत किया है तथा शास्त्र विषयक दार्शनिक विचारों को प्रस्तुत कर व्यक्ति को किस प्रकार जीवन जीना चाहिए इसका उपदेश दिया है। कवि ने तत्त्वगत औचित्य के अनेक विचारों को प्रस्तुत किया है जो पाठक को सत्यता का बोध करकर उनको हृदयग्राही बनाते है।

च– अभिप्रायौचित्य

अभिप्राय का भाव है 'आशय' लोक व्यवहार में प्रायः देखा जाता है कि लोग अपने भाव को स्पष्ट रूप से व्यक्त न करते हुए घुमा फिरा कर प्रकट करते है। ऐसी परिस्थिति प्रायः तब विशेष रूप से आती है जब वक्ता किसी कारण वश लज्जा और संकोच का अनुभव कर रहा होता है। इसलिए वह अपने हृदयस्य भाव की अभिव्यक्ति सीधे ढंग से स्पष्ट शब्दों के माध्यम से न कहकर कुछ घुमा–फिरा कर कहता है। सामान्य लोग अपनी बातों को प्रच्छन्न एवं अप्रच्छन्न रूप से दूसरों तक पहुँचाते है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि जब हम अपने भाव को स्पष्ट रूप से उद्घोषित करते है, तब श्रोता उसे सहज में ही समझ लेता है। परन्तु जब हम किसी बात को सीधे न कहकर उस अभिप्राय को शिष्ट एवं प्रछन्न रूप से प्रस्तुत करते है, तो श्रोता पर उस बात का अधिक प्रभाव पड़ता है। प्रछन्न रूप में कही गयी बात अधिक बौद्धिक प्रयास से श्रोता को हृदयगंम हो जाए तो निश्चित रूप से ही वह अधिक प्रभावशाली होगी। अतएव जब यह स्पष्ट हो जाता है तो वह स्वाभाविक रूप से चारूत्व उपस्थित हो जाता है। अतः अभिप्रायौचित्य से तात्पर्य 'व्यजंक उक्ति कथन' से है।

अभिप्रायौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण

अभिप्रायौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ में इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

अकदर्थनया सूक्तमभिप्रायसमर्थकम्।
चित्तमावर्जयत्येव सतां स्वस्थमिवार्जवम्।।

'बिना चेष्टा के अर्थ को अभिव्यक्त करने वाली सूक्ति उसी प्रकार आकृष्ट करती है जिस प्रकार सज्जनों की निष्कपट विनम्रता हृदय को आकृष्ट करती है।'[60]

आचार्य क्षेमेन्द्र का आशय है कि अत्यन्त सरलता से अभिप्राय को व्यक्त करने वाला काव्य हृदय को उसी प्रकार आकृष्ट करता है जैसे सज्जनों का निर्मल व्यवहार।

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण

अभिप्रायौचित्य के आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि दीपक के निम्न उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट किया है।

श्येनाङ्घ्रिग्रहदारितोत्तरकरो ज्याङ्कप्रकोष्ठान्तर
आताम्राधर पाणि पादनयन प्रांताः पृथूरः स्थलः।

---

[60] औचित्यविचारचर्चा कारिका 32

मनयेऽयं द्विजमध्यगो नृपसुतः कोऽप्यम्ब! निशाःम्बलः,
पुत्र्यैवं यदि कोष्ठमेतु सुकृतै प्राप्तो विशेषातिथिः।।[61]

पालित बाज पक्षी के पकड़ने के समय उसके द्वारा काट ली गई अंगुलियों वाला; धनुष की डोरी के घर्षण से युक्त कलाई वाला, अधर, हथेली, पैर तथा नेत्रों के किनारे जिसके किञ्चित रक्त वर्ण के हैं ऐसा विशाल वृक्षस्थल वाला, ब्राह्मणों के मध्य में विराजमान यह कोई राजकुमार प्रतीत हो रहा है। पुत्री के इस अभिप्राय को सुनकर बूढ़ी माँ कहती है कि बेटी अगर ऐसा है तो उसे घर पर ठहराओ, क्योंकि ऐसा विशेष अतिथि तो बहुत ही सौभाग्य से प्राप्त होता है।

प्रस्तुत श्लोक में कोई स्वरचारिणी नायिका, संध्या बेला के समय युवक पथिक को देखकर अपनी माँ से साभिप्राय यह वचन कह रही है यह पथिक राजकुमार सा प्रतीक हो रहा है क्योंकि इसकी अंगुलियों में बाज के नखों के और धनुष की प्रत्यंञ्चा की रगड़ के निशान है। यह सायंकाल की बेला में आश्रय की तलाश में है। ऐसा कहने पर उसकी माता ने भी उसके अभिप्राय के समर्थन में कहा कि बेटी यदि ऐसी बात है तो हमारी कोठरी में प्रवेश कर विश्राम करे, क्योंकि ऐसा विशिष्ट अतिथि आदरणीय होता है। इस कथन में अभिप्रायौचित्य का आकर्षण चमत्कार उपस्थित कर रहा है।

प्रत्युदाहरण– अभिप्रायगत अनौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि दीपक द्वारा रचित निम्न उद्धरण के माध्यम से स्पष्ट किया है–

अयि विरहविचित्ते। भर्तुरथे तथार्ता
सपदि, निपतिता त्वं पादयोश्चडिकायाः।
स्वयमुपहितंधूपस्थालकच्छत्र शृङ्गो–
दलितमपि ललाटं येन नैवाललक्षे।।[62]

"अरी विरह के कारण अपने आपको भी भूल जाने वाली सखी, तुम अपने पतिदेव के लिए इतनी आर्द्र हो गई हो कि शीघ्रतापूर्वक दुर्गाजी के पैरों पर टकराकर इस प्रकार गिरी कि तुम्हें स्वयं पूजा के समय रखे धूपदानी के छत्ते के कोने से क्षत–विक्षत होते हुए ललाट आदि का भी ध्यान न रहा। अर्थात् तुम्हारे चेहरे पर खरोच धूपदानी के धक्के से आ गयी है, यह परमपुरूष के संभोग के समय का दन्तक्षय आदि नहीं।"

प्रस्तुत उद्धरण में चिरकाल के बाद स्वामी के वापस आने पर उनकी व्याभिचारी स्त्री के ललाट पर स्थित परपुरूष के द्वारा नखक्षत को छिपाने के प्रसंग में कहा गया कथन स्वेच्छाचारिणी अथवा उसकी सखी का कोई विशिष्ट अभिप्राय को स्पष्ट नहीं कर रहा है।

---

[61] औचित्यविचारचर्चा, पृ0 203
[62] औचित्यविचारचर्चा, पृ0 205

भुशुण्डि रामायण में अभिप्रायगत औचित्य

भुशुण्डि रामायण में यथास्थान अभिप्रायौचित्य की सम्यक रूप से प्रस्तुति हुयी है। कुछ प्रसंगों के माध्यम से हम भुशुण्डि रामायण में अभिप्रायौचित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालते हैं।

ब्रह्मा के कथन में अभिप्रायौचित्य दर्शनीय है।

सभी देवता जब सर्वप्रथम विश्व पितामह से इस संसार के आश्रय और निमित्त के विषय में पूछते हैं जिस पर ब्रह्मा भगवान राम को इस संसार के आश्रय और आदिकारण के रूप में प्रस्तुत करते हुए इस प्रकार बतलाते हैं–

राम एवास्य जगतश्चाश्रयः सर्वभूतमृत्।
राम एव निमित्त च निजलीलारसात्मकः।।
राम एव परं सारं वेद्यं निगममूर्द्धसु।
ममापि समत (तत्वरं) राम एवं न संशयः।।
ममादौ सर्वजगतो राम एव नियुक्तवान।
रामस्य च स्वभावोऽस्ति वेदानामप्य गोचरः।।
नीलरूपं चिदाकारः सच्चिदानन्द विग्रहः।
प्रतिष्ठा ब्राह्मणोंऽप्येतत् परंब्रम्हा चा तादृशम्।।
सगुणं निगुणं चापि भेदाभेद विवर्जितम्।
एकरूपं सदा ध्येय पूर्ण मायाविवर्जितम्।।[63]

ब्रम्हा के कथन का अभिप्राय राम साक्षात परब्रम्ह परमेश्वर है। राम ही इस जगत के पालन करता है। वह सदैव सगुण और निर्गुण के भेदों से रहित एक ही रूप में स्थित है। राम का अस्तित्व जगत के पहले भी था और जगत है तब भी उनका अस्तित्व विद्यमान है। जब जगत नहीं होगा तब भी विद्यमान होगे। वास्तव में देखा जाए तो भगवान राम साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर है। उनकी अपार शक्ति है तथापि अपने आश्रित जनों के प्रति प्रेम की वृद्धि के लिए उनकी साधारण सेवा को भी बड़े से बड़ा रूप देकर अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। अधोवर्णित प्रसंग में अभिप्रायौचित्य दर्शनीय है। राम वनगमन के समय जब सीता राम के साथ वन जाने का निश्चय करती है। राम, सीता को वन में आने वाली कठिनाइयों को बताते हैं। परन्तु सीता अपने निश्चय से विचलित नहीं होती है। सीता उनसे इस प्रकार कहती हैं– ऐसी दूसरी ही स्त्रियों होती है जो स्वयं तो भवन में रहे और उनके पति वन में सत्य को अंगीकृत कर मुनिव्रत धारण करे और वे स्वयं सुन्दर–सुन्दर वस्त्रों को धारण करें और उनके पति वन में वल्कल वस्त्रों को धारण करें।

[63] भुशुण्डिरामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 3/2, 3, 4, 5, 6

पत्यौ वने विप्रवसत्यङ्गीकृत मुनिव्रते।
स्वयं तिष्ठन्ति भवने ता अन्या एवं योषितः।।
पत्यौ वल्कलचीरादिवनवासोचतव्रते।
स्वयं बिभ्रति चीराणि ता अन्या एव योषितः
पत्यौ वन पर्यटति दर्भगर्भवनिस्थलम्।
स्वयं वसन्ति सौधेसु ता अन्य एव योषिता
पत्यौ मागार्त न श्रान्ते ताम्यति गीष्मभानुना।
छायामध्यास्य तिष्ठन्ति ता अन्या एव योषितः।।
पत्यौ मागार्टन श्रान्ते ताम्यति ग्रीष्मभानुना।
छायामध्यास्त तिष्ठन्ति ता अन्या एव योषितः
पत्यौ मृशं परिक्लिष्टे मृद्यमाने महापदाः।
स्वयं च भुज्जे भोगान् ता अन्या एव योषितः
पत्यौ वेनषु द्रुजीवकूरशब्दान् विश्रृस्यति।
स्वयं वीणा ध्वनिरतास्ता अन्या एव योषिताः।।[64]

पति वन में दुर्गम स्थलों पर भ्रमण करें और वे स्वयं महल में निवास करें ऐसी दूसरी ही स्त्रियाँ होती है। पति मार्ग में पड़ने वाली सूर्य की प्रचण्ड गर्मी को शान्त भाव से सहन करें और वे स्वयं छाया में बैठे ऐसी दूसरी ही स्त्रियाँ होती है। पति वन में कष्ट पूर्वक मिट्टी से युक्त पदार्थो का भोग करे और वे स्वयं ऐश्वर्य का भोग करे ऐसी दूसरी ही स्त्रियाँ होती हैं। पति वन में भयंकर जीवों के कूर शब्दों को सुने और वे स्वयं वीणा की सुन्दर ध्वनि को सुने ऐसी दूसरी ही स्त्रियाँ होती है।

सीता के उपर्युक्त कथन में विशेष अभिप्राय की अभिव्यंजना प्रतीत होती है। सीता के कथन का मुख्य अभिप्राय यही है कि वह राज्य सुख का भोग न करते हुए पति (श्रीराम) के साथ वन को जाना ही स्वीकार करेगी। सीता ने अपने जीवन में कठोर परीक्षाएँ देकर यह सिद्ध कर दिखाया है कि जो स्त्री आपत्ति काल में धर्म का आचरण करेंगी वह सदा के लिए परमानन्द में मग्न रहेगी और उसकी कीर्ति संसार में सदा के लिए अगर हो जायेगी।

वास्तव में देखा जाये तो हमारी संस्कृति में भारतीय नारी के लिए पति परमेश्वर के समान है। वह जिस स्थान में जहाँ भी रहे पत्नी का कर्तव्य है उनका अनुगमन करना। यहाँ सीता के कथन का विशेष अभिप्राय है कि वह एक भारतीय नारी है यह कैसे संभव है कि वह राजकीय सुख का भोग करे जबकि उनका पति वन में रहे।कवि ने सीता के कथन को इस प्रकार प्रस्तुत कर विशेष अभिप्राय की अभिव्यंजना की है कि प्रत्येक नारी को पतिव्रत धर्म का पालन कर उनका सर्वत्र अनुगमन करना चाहिए। अयोध्यावासियों के कथन में विशेष अभिप्राय की व्यंजना दृष्टिगोचर हो रही है।

[64] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 9/94, 96, 97, 98, 99, 100, 101, 102

अहो नो भाग्य सम्पत्ति किमस्माभिः, कियत्तपः।
अकारि येन दृक्ष्यामो रामं राजानमद्य वै।।
कुल क्रमागत राज्य प्राप्य रामो बहन् मुद्रा।
चन्द्रमा इव विद्योतं दृशो न सुखयिस्यति।।
येषां च बतनोऽस्माकं राजासौः जानकीपति।
किमलभ्यतम तेषा पुरूषार्थ चतुष्टये।।
श्रीरामस्य प्रियायोध्या साक्षाल्लक्ष्मी निवासभूः।
आनन्दनगरी चेषा बसतिर्नः पर शुभा।।[65]

अयोध्यावासी कहते है कि अरे हमें अपने भाग्य पर आश्चर्य हो रहा है हमारे द्वारा कौन सा तप किया गया जिससे कि अचानक ही हम राम को राजा के रूप में देखेंगे। जिस प्रकार चन्द्रमा की तरह शीतलता प्रदान करने वाले प्रकाश के समान दूसरा कोई भी प्रकाश हमें सुख प्रदान नहीं करता है। उसी प्रकार कुल परम्परा के अनुसार राम ने राज्य को प्राप्त कर सुख प्रदान किया। यह सूक्ति विशेष अभिप्राय की व्यंजना कर रही है। यदि राम के अलावा कोई दूसरा राजा बनता तो वह हमें सुख प्रदान नहीं करता इस अभिप्राय को अयोध्यावासियों ने व्यक्त कर सूक्ति में विशेष आकर्षण को उपस्थित किया है। जो शीघ्र ही सह्रदयों के ह्रदय में विशेष अभिप्राय की व्यंजना कर रहा है राम के कथन में अभिप्राय की उचित रूप में व्यंजना की गयी है। राम अपने वन गमन के लिए किसी को दोषी नही मानते उनका यह कथन सह्रदयों के ह्रदय में विशेष अभिप्राय की व्यंजना कर रहा है।

यथा कारयते दैव तथा कुर्वञ्छभाशुभम्
लिप्यते स पुनस्तेन नीहारेणेव भास्करः।।[66]

जिस प्रकार कुहरा सूर्य को पुनः पुनः ढक लेता है जैसा देव कराता है वैसा ही शुभ अशुभ होता है। इस कथन में राम का विशेष अभिप्राय यही है कि मेरे वन गमन के लिए भी दोषी नहीं हम सभी भाग्य के आधीन है। उसमें किसी का कोई दोष नहीं है।

प्रस्तुत उद्धरण में यह सूक्ति विशेष अभिप्राय की व्यंजना कर रही है। सूक्ति का अभिप्राय है कि मानव के सभी शुभ–अशुभ कार्यो पर ईश्वर का नियंत्रण होता है। वह स्वेच्छानुसार न तो किसी वस्तु को प्राप्त कर सकते है। और न ही नष्ट कर सकते है। इसलिए इसमें किसी का दोष नहीं है। भरत मेरा प्रिय भाई राज्य का भोग करे मैं पिता के वचन की सत्यता के लिए वन को जाऊँगा। ईश्वर ने किसी विशेष कार्य से ही असुरों से संसार की रक्षा के लिए वन को भेजा। इसमें निश्चय ही उनका कोई कारण अवश्य ही होगा। राम के इसी अभिप्राय को

[65] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 7/3, 4, 5, 7
[66] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 9/10

यह सूक्ति व्यक्त कर रही है जो अभिप्रायौचित्य, के उचित प्रयोग को दर्शा रही है कवि के विशेष अभिप्राय को व्यक्त कर रही है। भरत, राम से कहते हैं कि–

त्वामेव परितो राम काङ्क्षन्ते सर्वदा प्रभो।
चकोरा इव शीतांशु तावेतान् सुखयात्मना।।[87]

भरत के कथन में विशेष अभिप्राय की व्यंजना हो रही है। जिस प्रकार चकोर को चन्द्रमा ही सुख प्रदान करता है कोई दूसरा नहीं। उसी प्रकार हे राम सभी तुम्हारी ही इच्छा करते हैं अर्थात हे राम आप ही सभी को सुख प्रदान कर सकते है। आप वापस अयोध्या लौट चले क्योंकि इस राज्यकुल की रक्षा करने में मैं समर्थ नहीं हूँ। आपके बिना किसी दूसरे के द्वारा राज्य की रक्षा संभव नहीं है। वस्तुतः इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि भुशुण्डि रामायण में अभिप्रायगत औचित्य उचित रूप में परिलक्षित हुआ है।

---

[87] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 43/45

छ— स्वभावौचित्य

जगत की रचना जड़ एवं चेतन के संयोग से मानी जाती है। प्रत्येक वस्तु या व्यक्ति में गुणों के आधार पर भिन्नता पाई जाती है। कुछ गुण तो मनुष्य में स्वाभाविक रूप में होते है तथा कुछ समय के साथ आते जाते हैं। तात्पर्य यह है कि कुछ गुण प्रधान तथा कुछ गुण गौण होते हैं। स्वभाव शब्द का तात्पर्य है कि किसी वस्तु या मनुष्य के प्रधान गुणों में परिवर्तन न होना। उदाहरणार्थ–आग का स्वभाव अथवा गुण गर्म है तो उसके गर्म स्वभाव में कभी कोई बदलाव नहीं आ सकता है। कदाचित किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के इस प्रकार के गुण में परिवर्तन आ जाए तो स्थिति एकदम गम्भीर हो जायेगी। कल्पना करे कि यदि आग अपनी गर्मी छोड़ कर शीतलता धारण कर ले तो क्या होगा? इसी प्रकार स्वभावगत गुण काव्य साहित्य में भी दृष्टिगत होते हैं। कवि अपने काव्य में स्वभावानुकूल पात्र का चित्रण करता है तो उसका काव्य सहृदयों को आनन्दित तो करता ही है साथ ही साथ काव्य जगत में प्रतिष्ठित होकर कवि की प्रतिष्ठा को बढ़ाता है।

स्वभावौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण–

स्वभावौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ औचित्यविचारचर्चा में बहुत ही उत्कृष्ट रूप से इस प्रकार परिभाषित किया है। "जिस प्रकार से प्राकृतिक रूप तथा अत्यन्त लावण्य के कारण किसी नायिका की सुन्दरता निखर जाती है, ठीक उसी प्रकार स्वभावौचित्य से विभूषित कवि की वाणी सुन्दरता को प्राप्त करती है।"[68]

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण–

"आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्वभावौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु स्वरचित 'मुनिमत मीमांसा का निम्न उदाहरण प्रस्तुत किया है–

कर्णोत्तालित कुन्तलान्त निपत्ततोयक्षणा संगिना।
हारेणेव वृतस्तनी पुलकिता शीतेन सीत्कारिणी।
निर्धौताञ्जनशोणनयना स्नानावसानेऽगंना
प्रस्यन्दत्कबरीभरा न कुरुते कस्य स्पृहार्द्र मनः।।[69]

"जिस स्त्री के कान तक घुँघराले बाल एवं स्नान से भीगा शरीर हो, दोनों स्तनों पर गिरती पानी की बूदे हार का भ्रम पैदा कर रही हो, शीत से रोमांचित सीत्कार करती हुई तथा आँख के अंजन के धुल जाने से जिसकी आँखे रक्ताभवर्ण की हो गयी हो, ऐसी स्त्री किसके मन को आकृष्ट नहीं करती है।"[70]

---

[68] स्वभावौचित्यमाभाति सूक्तीनां चारु भूषणम्।
अकृत्रिम सामान्यं लावण्यमिव योषिताम्।। औचित्यविचारचर्चा – 33

[69] औचित्य विचारचर्चा, पृ0 207

[70] औचित्यविचार चर्चा, पृ0 208

यहाँ पर व्यास पुत्र शुक्राचार्य की कामवासनाओं की शून्यता स्वर्ग गंगा में विवस्त्रावस्था में स्नान करती हुई देवताओं की स्त्रियों को देखकर भी ज्यों की त्यों ही रही। उन व्यास पुत्र की कामशून्यता ही विवेच्य है। यहाँ इस सम्बन्ध में कहा गया कि ऐसी आद्र शरीर वाली देवांगनाये किसके मन को आद्र नहीं करती है। यहाँ इस कथन में औचित्य पूर्णतः दृष्टिगोचर हो रहा है।

प्रत्युदाहरण– स्वभावगत अनौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्वरचित 'मुनिमतमीमांसा के निम्न उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट किया है–

भक्तिः कातरतां क्षमा सभयतां पूज्यस्तुतिर्दीनतां,
धैर्य दारुणतां मतिः कुटिलतां विद्याबलं क्षोभताम्।
ध्यानं वञ्चकतां तपः कुहकतां शीलव्रतं षण्ढतां,
पैशुन्य व्रतिनां गिरांकिमिव वा नायाति दोषार्दताम्।।[71]

"जो भक्ति को कायरता, क्षमा को भीरूता, पूज्यों के प्रति की गई स्तुति को दीनता, धैर्य को दारूणता बुद्धितीक्ष्णता को कुटिलता, विद्या को क्षोभकारिता, ध्यान को वञ्चकता, तप को माया एवं सुशीलता को नपुंसकता बतलाने वाली पिशुन खोरो की वाणी में कौन सी बात है जो दोषपूर्ण न हो।"[72]

यहाँ पिशुन के स्वभाव के वर्णन में भक्ति आदि गुणों को विपरीत रूप से वर्णित करने पर चुगलखोरों के वचनों के लिए कौन सी वस्तु दोषपूर्णता को प्राप्त नहीं करती। इस कथन में यह बात विरूद्ध प्रतीत होती है कि जो स्वयं ही अच्छा नहीं वह दूसरों को कैसे दोषयुक्त बताता है।

भुशुण्डि रामायण में स्वभावगत औचित्य–

भुशुण्डि में अनेक स्थलों पर पात्रों में स्वभावगत औचित्य दृष्टिगोचर होता है। चाहे वह राम, सीता का चरित्र हो, भरत का हो अथवा लक्ष्मण आदि पात्रों में स्वभावगत औचित्य सहृदय को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित कर देता है। राम का स्वभाव अत्यन्त हृदयस्पर्शी हैं उनके चरित्र स्वभावौचित्य दर्शनीय है। कैकेयी जब राम को वनवास की याचना करती है तब सभी अयोध्यावासी कैकेयी की निंदा करते हैं।

परन्तु राम उनके प्रति आदर भाव रखते हैं। वह कहते हैं कि सब कुछ ईश्वर के ही आधीन है–

यथा कारयते दैवं तथा कुर्वञ्छुभाशुभम्।
लिप्यते स पुनस्तेन नीहारेणेव भास्करः।।
द्रष्ट्वा मोहाभिभूतानि भूतान्युच्चावचान्यपि।
प्राज्ञः स्वयं विरज्येत संसृतेर्घोरकर्मणः।।

[71] औचित्य विचार चर्चा, पृ0 211
[72] औचित्य विचारचर्चा, पृ0 213

कैकेयराजतनयानासूयितुमयोचिता।
अन्यो हि प्रेरकस्तस्या अन्तरस्थो भवस्य यः।।
देवानां च महत्कार्य वनेऽपि वसता मया।
असुरानीकहननं रक्षा च जगतः स्फुटम्।।
अनेका श्रमवस्तूनां महर्षीणां तपस्विनाम्।
दर्शन स्पर्शनं प्रश्नः पूजा नित्यं च संगति।।
दर्शन पुण्य तीर्थानाम वनानां फलपुष्पिवाम्।
किमऽतोपि परं मातर्ममभूयस्तमं हितम्।।
भ्राता में नीतिनिपुणो भरतो भक्तिसत्तमः।
पोषको ज्ञातिबन्धूनां प्रजानां हित साधकः।।
तस्य चेद् राज्य लाभः स्थान्ममैव हितमुत्तमम्।
कैकेयां त्वयि चात्यन्तं मम भेदो न कर्हिचित्।।[73]

राम कैकेयी के प्रति किसी प्रकार का द्वेष नहीं रखते है। राम का माता कैकेयी के प्रति जो आदर भाव है वहाँ उनके आदर स्वभाव को दर्शा रहा है। वनगमन के लिए उनको दोषी नहीं मानते हैं अपितु जैसा ईश्वर करता है वैसा ही होता है ऐसा मानते है। वे अपने वनगमन को देवताओं और शुभ कार्यो को करने तथा संसार की रक्षा करने हेतु मानते है।

भुशुण्डि रामायण के पश्चिम खण्ड में दशरथ जब राम को राज्याधिकार सौंपने की इच्छा करते है तब राम अपने पिता से निवेदन करते है कि आप ही राज्य की व्यवस्था करे। राम उनके कार्यो में सहयोग करेगें। वह स्वयं को राज्य की व्यवस्था करने के अनुकूल नही समझते है। राम कहते हैं कि– हम सभी राजकुमार का आपकी आज्ञा का पालन करने में ही सुख है। राज्य की देखभाल करने में हम अभी सक्षम नहीं है।

वयं राजकुमाराः स्म भवान् क्षितिम्।
इतोऽधिकं सुखं नास्ति राज्य भारः परं मम।।[74]

माता कैकेयी द्वारा वनवास दिये जाने पर भी राम को किसी प्रकार का दुख नहीं होता। क्योंकि महान पुरूषों का स्वभाव ऐसा ही होता है।

भवन्ति नम्रास्तवः फलागमैर्नवाम्बुमिर्दरविलम्बिनो धना।
अनुद्धताः सत्पुरूषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।।

राम कहते हैं –

अनुजानीहि मां तात गच्छामि मुदितो वनम्।
भवान् सत्यवचा भूपाः कैकेयी सुखमृच्छतु।।
गृहं वनं च मे तुल्यमप्रमादेन वास्तवे।
त्रिवर्ग पालने तुल्ये प्रीर्य धर्मेण केवलम्।।

---

[73] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 9/10, 12, 13, 14, 15, 16, 19, 21
[74] भुशुण्डि रामायण पश्चिमखण्ड, अध्याय 66/158

नीतिरेवमनुस्तुष्टयै न राज्य वहनादमर।
स्वभाव सिद्धमेतन्मे न यशांसि न वा गुणाः।।
मा विर्षाद त तश्चित्ते भरते राज्यमर्पय।
नीति मान् स हि धर्मज्ञः प्रजापालनयत्नवान्।।[75]

उनके इस कथन में धैर्य एवं गाम्भीर्य का जो गुण प्रकट हुआ है। स्वभावगत औचित्य का सुन्दर उदाहरण है।

राम का माता–पिता, गुरू, पुत्र, मित्र, स्त्री, शत्रु, सेवक, प्रजा आदि सभी के प्रति उदार स्वभाव है। राम का यह उदार स्वभाव ही है कि वे युद्ध प्रारम्भ करने से पहले रावण को समझाने के लिए अंगद को भेजते हैं। उनकी शत्रु रावण के प्रति भी उदार दृष्टि है। राम का सभी के प्रति आदर्श एवं संतुलित व्यवहार है। उन्होंने अपने कर्तव्य बोध द्वारा समाज में जो सत्य व्यवहार दिया है। वह आज भी अनुकरणीय है। उनके द्वारा मानव समाज आज भी दिग्निर्देश प्राप्त कर सकता है। उन्होंने शरण में आये विभीषण को आश्रय देकर उसे लंका का राजा बना दिया। राम का उदात्त स्वभाव औचित्य की दृष्टि से खरा उतरता है।

भ्रमवश महारानी कैकेयी अपने पुत्र भरत के लिए जो राज्य सिंहासन मांगती है। उस पर राम का अधिकार है। परन्तु राम अपने उदार स्वभाव के कारण उस राज्य सिंहासन को छोड़ देते हैं और वन के लिए प्रस्थान करते है।[76] यदि वे इसके विपरीत आचरण करते तो उनके उदार स्वभाव के विपरीत अनौचित्य पूर्ण कार्य होता।

राम का यह उदार स्वभाव ही है कि उन्होंने निषादराज और शबरी जैसे सामाजिकजनों द्वारा उपेक्षित व्यक्ति को उन्होंने अपना कर मानों यह बताया कि महात्मा जन पतित से घृणा नहीं करते अपितु उनमें अपनी शक्ति की पावनता को अधिष्ठान कर उन्हें ऊपर उठा देते हैं।

भरत के स्वभाव में भी औचित्य दर्शनीय है। राम के वनगमन को सुनकर भरत शिथिल और स्तब्ध रह जाते हैं उनका सात्त्विक स्वभाव इस कठोर सत्य को सहन नहीं कर सका कि उनकी अपनी माता ही इस प्रकार की कुमति योजना बना बैठी वह यह भी नहीं समझ पायी कि भरत माता कैकेयी द्वारा प्राप्त राज्य का परित्याग कर देते हैं। वह माता कौशल्या के समक्ष अपनी स्थिति स्पष्ट करते हैं और हार्दिक दुख का अनुभव करते हैं। माता कौशल्या से कहते हैं कि राम ही इस राज्य के राजा हैं मैं सिर्फ उनका दास हूँ। राम का ही राज्य पर अधिकार है। राम वन चले जायेगे ऐसा मैने स्वप्न में भी नहीं सोचा था।[77] वे अपनी माता कैकेयी के कार्य की निन्दा करते हैं।

---

[75] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 9/165–168
[76] भुशुण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड, अध्याय 10/38
[77] भुशुण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड, अध्याय 28/44, 45, 46

कैकेया यत्कतं कर्म घोरबुद्धया नृशंसया।
तत्र यस्य भवेत्प्रीतः स वै पततु रौरवे ।।
नित्यं पापानुगा बुद्धिस्तस्यास्तु शुभलोपिनी।
रामस्यो यो वने वासं स्वप्नस्थोऽपि विचिन्तयेत।।
तस्य श्रेयस्करी बुद्धि कदापि समुदेतु मा।
रामस्य यो वने वासं स्वप्नस्थोऽपि विचिन्तयेत्।।[78]

भरत राम के समक्ष अपने प्रस्ताव को प्रस्तुत करते है। उन्हें अपनी माता के व्यवहार से अत्यधिक कष्ट है। वह कहते है कि कुल की परम्परा और रीति के अनुसार राज्य पद पर आपका ही अभिषेक होना चाहिए। आप धर्म पूर्वक अयोध्या का राज्य ग्रहण करे। चित्रकूट में राम रहित सम्पूर्ण समाज मिथिलापति, ऋषि, मुनि, गुरू वशिष्ठ सभी भरत के विवेक, त्याग और समर्पित सेवा भाव से अभिभूत हो जाते है। और उनकी प्रशंसा करते है–

धन्योऽसि भरत श्रीमन् यस्य ते मतितिरीदृशी।
शुभ तव सदा भूयाद् धर्मिष्ठस्य महात्मनः।।
रघुवंशेति विमले जाता जातागुणाधिकाः।
प्रीये तव चरित्रेण रामानुज महामते।।
यथा रामस्तथ्वा वीर भवन्तो भ्रातरस्त्रयः।
येषां शुभवती बुद्धिर्विभर्ति भुवनं सदा।।
मृतोऽपि ते पिता तात जीवत्येव यशस्तनु।
यस्यास्ति त्वादृश, पुत्रो धार्मिकः कुलनन्दनः।।[79]

सीता के चरित्र में स्वभावगत औचित्य का अवलोकन करें तो हमें दृष्टिगत होता है कि सीता का अपने स्वभाव के अनुकूल राजा दशरथ कौशल्या आदि माताओं के प्रति यथाचित समादर भाव है। वे अपने पति श्री राम को कैकेयी द्वारा वनवास दिये जाने पर कुछ नहीं कहती है प्रत्येक क्षेत्र में शान्त भाव से राम का अनुकरण करती है। सीता राम से इस प्रकार कहती है कि–

अहम् वैदेहराजस्य तनया युक्तचेतसः।
समानसुख दुःख तुल्यनिन्दास्तुतेर्मुनेः।।
ममापि तादृशी वृत्तिः पत्युरेवानुरोधतः।
भोग दधामि नियत न तु स्वार्थाय कह्चित्।।
किं मे ग्रहेण किं सौख्यः किं धनेन च बन्धुभि।
यस्मै प्रिय तत्सकल सद् व्रजति काननम्।।

किं मायात्रमिवस्तत्यं भीषणेन विरोधिना।
सर्वथैवाभिगन्तव्यं सार्थ एव न संशयः।।

---

[78] भुशुण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड, अध्याय 28/47, 50, 54
[79] भुशुण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड, अध्याय 45/30, 31, 32, 33

द्रक्ष्यामि पुण्य तीर्थानि स्नान्ती पुण्यतम्।
प्राणप्रियेण संयुक्ता सुखं में किमतः परम्।।
पर्णशालाः शुमास्तास्तरूपपल्लव निर्मिताः।
काननेष्वधितिष्ठन्ती न स्मरिष्यामि मन्दिरम्।।[80]

लक्ष्मण के चरित्र में स्वभावगत औचित्य को देखे तो हमें पता चलता है यद्यपि वे उग्र स्वभाव के हैं किन्तु उनके स्वभाव में जो उग्रता है वह तामस प्रकृति का सूचक न होकर, उनके शील का अंग न होकर, उनके सात्विक प्रकृति की ही सूचक है वे अतिक्रोधी है उनके स्वभाव में उग्रता स्थायी तथा व्यापक नहीं है यह राम प्रेम से उत्पन्न होता है।

भुशुण्डि रामायण में लक्ष्मण में एक तरह उग्रता दिखती है वही दूसरी तरफ उनका कारूणिक स्वभाव भी द्रष्टव्य होता है। लक्ष्मण राम को सीता के वियोग में दुखी देखकर दुखी हो जाते हैं और इस प्रकार विलाप करते हैं।

हा हा हृदयामदयापि शतधा न विदीर्यते।
ईदृशी घोर विषदमासादयपि सुदुस्तराम्।।
क्व हेममृग अगच्छेत् क्व देवी स्पृहयेदमुम्।
क्व भवाननुधावेत क्व चेदं वञ्चनं भवेत्।।
सर्व दैवकृतं दृष्टवा त्वयिदैवनियन्तरि।
मनोनिखलम्बं में शतधेव विशीर्यते।।
यदि प्राणांस्त्यजाम्याशु शोकेन तव राघव।
सापराधोऽपि किं न स्यां सेवालोपविधायकः।।
अथ धिङ्मां तथा देव्या दुरूक्तैर्विद्धमानसम्।
यस्तवाज्ञायतीवर्त्य तां वने त्यक्तवान् रहः।।
सर्व विस्मृत्य वीरेन्द्र त्वामहं गतवान वने।
नाज्ञासिष दैवकृत्य वञ्चनं में मविष्यति।।[81]

उनके इस प्रकार कारूणिक विलाप को सुनकर वन के सभी पशु–पक्षी भी दुःखी हो करूण रूदन करने लगते है इस प्रकार हम देखते है कि लक्ष्मण के चरित्र में स्वगावगत औचित्य औचित्य दृष्टिगोचर हो रहा है। जहाँ एक उनके स्वभाव में उग्रता है वहीं दूसरी ओर उनका राम की दशा देखकर इस प्रकार विलाप करना भी उनके कारूणिक स्वभाव का बोध भरा रहा है।

[80] भुशुण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड, अध्याय 9/103, 104, 105, 106, 109, 111
[81] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 159/3, 4, 8, 9, 22, 25

निष्कर्ष रूप में हमें ज्ञात होता है। कि भुशुण्डि रामायण में राम पक्ष के सभी पात्रों का स्वभाव सात्विक है। उनके स्वभाव में सर्वत्र औचित्य दार्शनीय है इसके विपरीत दूसरी तरफ आसुरी शक्ति का प्रतीक रावण है जो विपरीत स्वभाव वाला है। वह तप उपासना और योग भी कामना के लिए करता है। और अपनी शक्ति का प्रयोग कार्य की सिद्धि के लिए करता है और अपनी शक्ति के द्वारा दैवीय शक्ति को दवाने का कार्य करता है। सात्विक कार्य करने वाले मुनियों के धार्मिक कार्यों में बाधा उत्पन्न करता है। वस्तुतः हमें ज्ञात होता है कि भुशुण्डि रामायण के पात्रों में सर्वत्र स्वभावौचित्य दर्शनीय है। कवि ने उनके स्वभाव के अनुसार ही उचित प्रयोग किया है।

छ– सार संग्रहौचित्य

संसार अनन्त घटनाओं एवं विविध प्रवृत्तियों का एक विलक्षण आधार है। इसमें इतनी अधिक घटनायें होती है कि उनकी पूर्णतया जानकारी मनुष्य को सर्वथा असम्भव है। संसार की अनेक घटनाओं एवं प्रवृत्तियों का स्वरूप एवं प्रवृत्ति भिन्न–भिन्न है। संसार के अनेक पदार्थ ऐसे हैं जो मनुष्य को सुख प्रदान करते हैं। अनेक पदार्थ ऐसे भी हैं जिनसे दुख की प्राप्ति होती है। मनुष्य उन वस्तुओं एवं विचारों को ग्रहण करता है जो उनके जीवन में सुख एवं उन्नति प्राप्त करने में सहायक होते हैं। इस विशाल संसार में अनेक पदार्थो वस्तुओं के वर्णनों में से मनुष्य उपयोगी सार अंश को स्वीकार करता है।

सारसंग्रहौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण

सार संग्रहौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ औचित्य विचार चर्चा में इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

सार संग्रहवाक्येन काव्यार्थः फल निश्चितः।
अदीर्घसूत्रव्यापार इव कस्य न सम्मतः।।[82]

क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उद्धरण – सार संग्रहौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र ने सार संग्रहौचित्य के सन्दर्भ में स्वरचित 'मुनिमत मीमांसा' का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है–

विविध गहन गर्भग्रन्थ सम्भार भारै,
मुनिभिर भिनिविष्टैस्तत्वमुक्तं न किञ्चित।
कृतरुचिर विचारसारमेतन्म हर्षे,
रहमिति भवमूति नहि मित्येव मोक्ष।।[83]

गूढ़ अभिप्रायों से भरे हुए विविध विषयों वाले बहुत से ग्रन्थों के निर्माण से दुराग्रही (वस्तुतः अभिमानी बने हुए) मुनियों ने उन ग्रन्थों में तत्त्व की कोई बात नहीं कही है। किन्तु महर्षि व्यास का यह निश्चित मत है कि अहंकार ही सांसारिक बन्धन का मूल और उसका अभाव ही मोक्ष है। गीता के साररूप के द्वारा भव–भय विनाश का उपदेश प्रस्तुत वक्तव्य में औचित्य का संपुष्ट कर रहा है।

प्रत्युदाहरण –सार संग्रहगत अनौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि परिवाजक द्वारा रचित निम्न उद्धरण के माध्यम से इस प्रकार किया है–

तपो न तप्तं वयमेव तप्ता भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।
जरा न जीर्णावयमेव जीर्णा स्तृष्णा न यातावयमेव याताः।।[84]

---

[82] औचित्य विचारचर्चा कारिका,– 34
[83] औचित्यविचार चर्चा, पृ0 214
[84] औचित्यविचार चर्चा, पृ0 216

"तप नहीं तपा गया किन्तु हम ही तृप्त हो गये। सांसारिक भोगों का भोग नहीं भोगा गया किन्तु हम लोग ही जीर्ण कर दिये गये। तृष्णा विषय भोग की कामना नहीं की गयी किन्तु हम लोग ही समाप्त हो गये।"

प्रस्तुत कथन में फल शून्यता के कारण सार संग्रह के योग्य क्या है। इस पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला गया है। जो अनौचित्य का बोध करा रही है।

भुशुण्डि रामायण में सार संग्रहगत औचित्य

सर्वप्रथम हम प्रस्तुत ग्रन्थ की मनुष्योंपयोगिता पर विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ में अनेक वर्णनों में मनुष्योपयोगी सार अंश का वर्णन सर्वत्र दर्शनीय होता है। हम यहाँ भुशुण्डि रामायण में अनेक स्थलों पर वर्णित कतिपय मनुष्योपयोगी सार अंश का अवलोकन करते है।

ग्रन्थ के उत्तर खण्ड में ब्रह्म भुशुण्डि रामायण की महत्ता को सार रूप में स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि इस रामायण से प्राप्त फल का मेरे द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता है। यह हजारों अश्वमेध और हजारों राजसूय यज्ञ से प्राप्त होने वाले फल प्राप्त कराता है। इस कथा का श्रवण मात्र करने से हजारों गुना पुण्य फल प्राप्त होता है। इसलिए इसको हमेशा मन को पवित्र करने तथा अच्छा आचरण करने हेतु पढ़ना चाहिए। यह विघ्नों को दूर कर भक्ति प्रदान करता है तथा जीवन में रोग आदि दूर कर धन सम्पत्ति को बढ़ाता है। और संकट पड़ने पर हमेशा उसका निवारण करता है।

तस्य पुण्यं फलं चापि वक्तु नो शक्यते मया।
अश्वमेध सहस्त्राणि राजसूय शतानि च।।
लभते भक्तमान् मर्त्यः कथाश्रवणमात्रतः।
असंख्य लभते पुण्यं कीर्तिनाच्च दिने दिने।।
पठनीय सदैवैतत् पवित्रं चित्त शोधनम्।
मंगल विघ्नकोटिहनं सुखद भक्ति वर्द्धनम्।।
आयूष्मारोग्यकरं धनसम्पत्ति वर्द्धनम्।
संकटेषु च कृच्छेषु सर्वापद्विनिवारणम्।।[85]

उपर्युक्त मनुष्योपयोगी सार संग्रह का बोध करा रहा है।

अधोवर्णित उद्धरण में सार संग्रहगत औचित्य दृष्टिगत हो रहा है।

मरणं जीवन चैव वियोगे योग एव वा।
सुःख दुःख लाभ हानि जयोऽपि वा पराजयः।।
सर्व दैवेन नियतं लभते मानुषोऽवशः।
किं तत्र शोक मोहाभ्यामात्मा केवलमात्मना।।[86]

---

[85] भुशुण्डि रामायण, उत्तरखण्ड, अध्याय 53/7, 8
[86] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 9/67–70

प्रस्तुत श्लोक में कवि ने गीता के अर्थ विचार को सारार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। जन्म–मरण, सुख–दुःख, लाभ–हानि मनुष्य के हाथ में न होकर उस विधि के अधिकार में है। धैर्यवान व्यक्ति उसके लिए शोक नहीं करते हैं। कवि ने सुख–दुःख, जय–पराजय सब कुछ दैव के अधीन माना है इस उपयोगी उपदेश को बतलाया है जो औचित्य को संपुष्ट कर रहा है।

अधोवर्णित उद्धरण में मित्रता के सार रूप को कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

कामात् क्रोधाद्भयाल्लोभात्प्रतिष्ठातोऽर्थ गौरवात्।
यद्भवेत पुरूषे यस्मिन न तत्सख्यं न स सखा।।
गुणवानपि लोकेऽस्मिन्न कार्यो दुर्जनः सखा।
दृश्यमाना गुणास्तस्य दोषा एव भवन्ति हि।।
निर्गुणाऽपि भृशं कार्य सज्जनः सततं सखा।
स्वभावो हि गुणस्तस्य किं कार्या अपरेगुणाः।।
दुर्लभ सज्जनों लोके निसंगति सुकृतस्पृहः।
तस्य मैत्री जनो लब्ध्वा सततं सुखमश्नुते।।
एकोऽपि सुजनो मित्रं हरत्येव विपद्‌गणम्।
अनेकोऽपि कुसम्पृदता विज्ञेया दुर्जनामुधा।।[67]

राम कहते हैं कि मित्रता के परम तत्व (रहस्य) को कौन जानता सभी मित्र के समान सुख देते हुए प्रतीत होते है।

भूमेर्जलधरो मित्रमनपेक्षितनिष्कृति।
काले काले सुसंतप्तां यस्तां सिञ्चति वारिभिः।।
जलस्य कतमं मित्रमनपेक्षितनिष्कृतिः।
स्वयं तत्पंकलिप्तोऽपि यस्तं निष्पंकतां नयेत्।।
चकोरस्य शशी मित्रमनपेक्षित निष्कृतिः।
दिनतापं निराकृत्य यस्तं नन्दयते करैः।।
जलस्य च शरमित्रमनपेक्षितनिष्कृतिः।
या वर्षापकङ्कमुद्‌धृत्य निर्मलीकुरूते ह्यदः।।
वस्त्रस्य च जलं मित्रमनपेक्षित निष्कृतिः।
यत्तन्मलं स्वयं धृत्या स्वरूपस्थं करोत्यदः।।
सर्पस्य चन्दनं मित्रमनपेक्षितनिष्कृतिः।
यत्तेनाक्रान्तमप्याशु सुखयत्यमुमात्मना।।[68]

---
[67] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 172/3–7
[68] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 172/11, 13, 21, 26, 27, 30, 33 ,36

भुशुण्डि रामायण के दक्षिणखण्ड के 175वें अध्याय में कवि ने मित्रता के अनेक उद्धरणों को प्रस्तुत किया है तथा सज्जनों एवं दुर्जनों की मित्रता विषयक उपयोगी उपदेशों को बताया है। निश्चय ही सार संग्रहौचित्य को संपुष्ट कर रहा है। सज्जनों और दुर्जनों की संगति जल के समान ही है, जो नाली में पड़ने पर तो गंदा हो जाता है और गंगा जी में पड़ने पर वह पवित्र हो जाता है।

सत्य ही कहा गया है 'पय पानम् भुजंगानाम केवलम् विष वर्धनम्' सर्प को दूध पिलाने से केवल उसका विष ही बढ़ता है। उपर्युक्त श्लोक के समान भुशुण्डि रामायण का यह श्लोक भी मनुष्योपयोगी सार को प्रस्तुत कर रहा है।

ऐसे ही अनेक उद्धरण भुशुण्डि रामायण में सर्वत्र व्याप्त है। जो कवि के गूढ़ भाव एक विशिष्ट सार को प्रस्तुत कर रहे हैं। जो कि औचित्य की परिधि में है। वस्तुतः हमें ज्ञात होता है कि भुशुण्डि रामायण में सर्वत्र सारसंग्रहौचित्य दर्शनीय है।

अध्याय पंचम

प्रतिभा, अवस्था, विचार, नाम एवं आशीर्वादगत औचित्य

पंचम अध्याय

प्रतिभा, अवस्था, विचार, नाम आशीर्वादगत औचित्य

(क) प्रतिभागत औचित्य –

काव्य में 'प्रतिभा' का अद्वितीय स्थान है। 'प्रतिभा' के बिना श्रेष्ठ काव्यों की रचना संभव नहीं है। 'प्रतिभा' को कुछ विद्वान शक्ति के नाम से अभिहित करते हैं। शक्ति अथवा प्रतिभा के बिना कोई भी कवि 'काव्य' रचना करने में सक्षम नहीं हो सकता है। यह दो प्रकार की होती है। नैसर्गिक और यत्नज, नैसर्गिक प्रतिभा ईश्वर प्रदत्त होती है यह मनुष्य में स्वतः उद्‌भूत होती है। इसके विपरीत यत्नज प्रतिभा प्रयत्न साध्य होती है विविध प्रकार के प्रयत्नों से व्यक्ति विविध क्रियाकलापों को सम्पन्न करता है। यद्यपि इन दोनों वृत्तियों का महत्वपूर्ण स्थान है तथापि नैसर्गिक प्रतिभा ईश्वर द्वारा प्रदत्त व्यक्ति के लिए विशेष उपहार के स्वरूप है। विविध क्षेत्रों में प्रतिभा के बिना काव्य उतना सफल नहीं हो सकता है। प्रतिभा के सन्दर्भ में विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने मत व्यक्त किये हैं। आचार्य मम्मट ने शक्ति, निपुणता और अभ्यास तीनों के संयोजन को काव्य रचना के लिए आवश्यक माना है।[1] आचार्य कुन्तक ने पूर्व तथा इस जन्म के संस्कारों से परिपक्व बनी हुयी अनोखी दिव्य शक्ति को 'प्रतिभा' कहा है।[2]

आचार्य रुद्रट का कथन है कि जिस विशेष के द्वारा सुन्दर काव्य वृत्ति स्फुरित होती है वह शक्ति ही 'प्रतिभा' है।[3]

प्रतिभागत औचित्य के द्वारा काव्य में चारुत्व का उन्मेष स्वाभाविक रूप से होता है प्रतिभा सम्पन्न कवि ही काव्य में औचित्य संपृक्त सौन्दर्य राशि को विकीर्ण करने में सक्षम होता है। अतः काव्य में प्रतिभागत औचित्य का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रतिभौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण –

"जिस प्रकार उदात्त गुणों से मनुष्य के कुल की शोभा की वृद्धि होती है उसी तरह प्रतिभा से सुशोभित कवि का काव्य अलंकृत होता है।"[4]

---

[1] शक्ति निपुणता लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञ शिक्षाभ्यास इति हेतु स्तदुद्भवे।। काव्य प्रकाश (प्रथम उन्मेष)

[2] वक्रोक्ति जीवतम् (आचार्य कुन्तक)

[3] काव्यालंकार 2/15

[4] प्रतिभाभरणं काव्यमुचितं शोभते कवेः।
निर्मलं सुगुणस्येव कुलं भूतिविभूषितम्।। (कारिका –35)

इसका आशय है कि प्रतिभा सम्पन्न कवि का काव्य गुणवान व्यक्तियों के उज्जवल कुल की भाँति सुशोभित होता है।

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण –

आचार्य क्षेमेन्द्र ने प्रतिभौचित्य के संदर्भ हेतु स्वरचित 'लावण्यवती' का निम्न उद्धहरण प्रस्तुत किया है।

अदय! दशसि किं त्वं बिम्बबुद्धयाधरं में।
भव चपल निराशः पक्वजम्बूफललानाम्।
इति दयितमवेत्य द्वारदेशाप्तमन्या,
निगदति शुकमुच्चैः कान्तदन्तक्षतौष्ठी।।[5]

"किसी दन्तक्षय एवं कामुक नायिका ने अपने पति को द्वार पर आया हुआ देता तो वह दन्तक्षय को छिपाने के लिए ऊँचे स्वर में तोते को सम्बोधित करते कहती है कि – हे कठोर! तुम बिम्बफल के लालच में मेरे ओंठ को काट रहे हो। तुम बहुत ही चंचल हो अतः मैं तुम्हें दण्ड स्वरूप जामुन के फल खाने नहीं दूँगी, तुम उन फलों की आशा छोड़ दो।"

इस कथन में पति में किसी अन्य विचार की उत्पत्ति न हो, इसलिए वास्तविकता को छिपाने के उद्देश्य से प्रज्ञा की चातुरता से युक्त वचन अवसर के अनुकूल है।

प्रत्युदाहरण – प्रतिभागत अनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है –

निर्याते दयिते गृहे विशयने निमल्यिमाल्ये कृते,
प्राप्ते प्रातरसह्यरागिणि परे वारावहारेद्रन्यथा।
द्वारालीनविलोचना व्यसनिनी सुप्ताहमेकामिनी –
त्युक्त्वा नीवि विकर्षणैः स चरणाघातैरशोकीकृतः।।[6]

"नये प्रेमी के चले जाने पर, रात्रि में उपयोग में लाई गई पुष्पमाला तथा बिछावन आदि को हटाकर घर के साफ कर दिये जाने पर प्रातःकाल अपने पूर्व प्रेमी को आया देखकर वेश्या कहती है कि – तुम्हें एक दिन के लिए आने से रोककर मैं स्वयं कष्ट में रही। रातभर मैं अकेली जमीन पर लेटी हुई मेरी आँखें तुम्हारी राह में दरवाजे पर ही एक टक लगी रही। वेश्या के इस कथन से पूर्ण प्रभावित होकर नायक उसकी नीविग्रन्थि खोलने लगा। इस पर उसे वेश्या ने पादप्रहार करके उसे प्रफुल्लित कर दिया।"

---

[5] औचित्य विचारचर्चा, पृ0 218
[6] औचित्य विचार चर्चा, पृ0 220

उपर्युक्त उद्धरण में वैश्या ने अपने पूर्वनायक को एक दिन के लिए रोककर नवागत नायक के साथ रात्रि व्यतीत की। परन्तु नायक के आने पर वह कहती है कि मैं सम्पूर्ण रात्रि तुम्हारी ही राह देखती रही। मेरी आँखें दरवाजे की ओर ही लगी रही। इस कथन में वैश्या के दृढ़अनुराग एवं वियोग जन्य दुःख की सत्यता का ही परिचय प्राप्त होता है। विलक्षण प्रतिभा का उसमें लेश मात्र भी लक्षित नहीं होती। अतः यह प्रतिभागत अनौचित्य का उपयुक्त उद्धरण द्रष्टव्य हो रहा है।

भुशुण्डि रामायण में प्रतिभागत औचित्य –

कवि का अवसर के अनुकूल नवीन कल्पना का उन्मेष कर काव्य सौन्दर्य की श्रीवृद्धि करना ही प्रतिभा के उचित प्रयोग को दर्शाता है। नवीन प्रसंगों वर्ण्य विषय के मार्मिक एवं प्रभावपूर्ण चित्रण के लिए मर्मग्राही प्रस्तुत करने में प्रतिभा का महत्व लक्षित होता है। प्रतिभा का उचित प्रयोग न होने से कवि का काव्य उपहास्यपद की श्रेणी में आ जाता है। भुशुण्डि रामायण में कवि ने औचित्यपूर्ण नवीन कल्पना का उन्मेष अनेक स्थलों में किया है। हम यहाँ अधोवर्णित कुछ उद्धरणों के माध्यम से भुशुण्डि रामायण में प्रतिभौचित्य का अवलोकन कर रहे हैं।

सीता के सौन्दर्य वर्णन में कवि की प्रतिभा दर्शनीय है। कवि ने सीता के लिए सौदामिनी (बिजली के समान) रतिकामिनी (आनन्द देने वाली) आदि भिन्न उपमाओं का वर्णन कर उनकी सुन्दरता को अनुपमेय सिद्ध किया है, कवि ने अपनी प्रतिभा के द्वारा उनकी अलौकिक सुन्दरता का वर्णन किया है। जिसे देखकर राम क्षण भर के लिए मन मुग्ध हो जाते हैं।

एषा विमानादवरुह्य याति विद्याधरी चापि सुरी नरी वा।
सौदामिनी वा रतिकामिनी वा शची वा हिमशैलजा वा।।
न मे प्रयात्येव मनोरथान्तर्वधिष्णुभिर्निः प्रतिमैर्महोभिः।
जाने ममानङ्गजताप हारिणी पीयूषधारेय महो भविष्यति।।[7]

कवि ने राम के सहस्त्रनामों को अपनी विशिष्ट प्रतिभा के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

कतिपय नामोल्लेख इस प्रकार है–

रामः श्यामो हरिविष्णुः केशवः केशिनाशनः
नारायणो माधवश्च श्रीधरो मधुसूदनः।।
सीताप्रियो रुक्मिणीश कल्याण गुण सागरः।
भक्तप्रियो दाशरथि कैटमारि कृतोत्सव।।[8]

---

[7] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 74/4–6
[8] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 13/11, 23

इसी प्रकार सीता के सहस्त्रनामों की कवि ने जो प्रस्तुति की है वह उसकी विशिष्ट प्रतिभा का परिचायक है। कतिपय नामोल्लेख इस प्रकार है–

रुक्मिणी कमलाकान्ता कान्ति कमललोचना।
किशोरी रामललना कामुकी करुणानिधि।।
कन्दर्पवर्द्धिनी वीरा वरुणालयवासिनी।
अशोकवनमध्यस्था महाशोक विनाशिनी।।[9]

लक्ष्मण सहस्त्र नाम वर्णन की प्रस्तुति में भी कवि की प्रतिभा दर्शनीय है। कवि ने उनकी विशेषताओं के आधार पर उनके नामों की प्रस्तुति की है।

कतिपय नामोल्लेख इस प्रकार है –

कुमारब्रह्मचारी च रामभक्तः शुचिव्रतः।
निराहारो जिताहारो जितनिद्रो जितासनः।।
महारुद्रो महाक्रोधी इन्द्रजित्प्राणनाशकः।
सीताहित प्रदाता च रामसौख्य प्रदायकः।।[10]

सरयू सहस्त्रनाम वर्णन में भी कवि की विशिष्ट प्रतिभा दर्शनीय है। कतिपय नामोल्लेख इस प्रकार है –

रामकेलिकरी रामा रामचित्तप्रसादिनी।
लोकसंतापहरिणी हनुमत्सेवितोदका।।
कलामयी कलापूर्णा चन्द्रिका रामचन्द्रिका।
वैकुण्ठवाहिनी वर्या वरेण्या वारिदेवता।।[11]

कवि ने अपनी विशिष्ट प्रतिभा एवं कल्पना शक्ति के द्वारा राम, सीता, लक्ष्मण एवं सरयू नदी के एक सहस्त्र नामों की प्रस्तुति की है तथा उनके सहस्त्रनामों की महत्ता को भी दर्शाया है। कवि के कथनानुसार इन सहस्त्रनामों का पाठ करने वालों को कहीं भी किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होता है। यह कवि के विशिष्ट प्रतिभा का ही परिचायक है।

रामस्य सौन्दर्यमनङ्गकोटिभि, र्दुरापमाभीर वधूमनः सुखम्।
विलोक्य रामास्त्रिषु लोकेषु मुग्धा बभूवरुच्चैर्विरहाकुलान्तराः।।[12]

राम के सौन्दर्य वर्णन में कवि की विशिष्ट प्रतिभा दर्शनीय है।

---

[9] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 14/5, 6
[10] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 15/6, 7
[11] भुशुण्डि रामायण पश्चिमखण्ड, अध्याय 36/14, 18
[12] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 23/38

कस्तूरी तिलकविराजिभाल देशो, मुक्तास्त्रङ्गमणिगलचारुकण्ठहारः।
नासाग्रे पृथुगजमौक्तिकं दधानो, बिभ्राणः करकमलेन मञ्जुवेणुम्।।[13]

कवि ने अपनी प्रतिभा के द्वारा भगवान राम के मस्तक को तिलक, गले में मोतियों की माला, हाथ को कमल, सुन्दर वेणी, कंगन आदि से सुशोभित किया है। भगवान राम को विभिन्न अलंकारों से अलंकृत कर कवि की अलंकारिक प्रतिभा दर्शनीय हो रही है।

कवि की भगवान राम के विलक्षण स्वरूप एवं सौन्दर्य की प्रस्तुति में उत्कृष्ट प्रतिभा दर्शनीय हो रही है। कवि को श्री राम एवं जगज्जननी सीता के विलक्षण सौन्दर्य के संयोजन में अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। कवि के एक–एक शब्द सौन्दर्य के उपकारक सिद्ध होते हैं।

ब्रह्मा द्वारा राम की प्रस्तुति वर्णन में कवि की विशिष्ट प्रतिभा दर्शनीय है। कवि ने राम के गुण वैशिष्ट्य अनुप्रास अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है।

दिनकरकुलकेतुः सर्वसौन्दर्य सेतुः त्रिभुवनसुखहेतुर्भूतिकृञ्जम्भजेतुः।
सुरनरनगरामानन्द सन्दोहधामा घृतमणि वरदामा पातु वो राम नामा।।
नतिनुतिलवमन्ता कालमीत्येकहन्ता परमगहनगन्ता सत्यवाक्यानुमन्ता।
कुशलनिधिरनन्तानन्दलीलैकरन्ता जयति जय दुरन्तापत्तिह द्रामचन्द्रः।।
परममधुर शीलः प्रावृषेण्याभ्रनीलः सकल सुखदलीलः कृत्तदृच्छोककीलः।
त्रिभुवनशुभवेशः कोटिकल्याणदेशः कुटिलमसृणकेशः पातुभास्वत्कुलेशः।।
सलिलनिधिगम्भीरः सर्वलोकैकवीरः स्थिरतरमतिधीरः सूर्यवंशैकहीरः।
सुरभियशउशीर स्वर्णवर्णाच्छचीरः श्रितविपिनकुटीरः पातु नो रामवीरः।[14]

कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य में अपनी अनूठी प्रतिमा का सुन्दर परिचय दिया है। कतिपय उद्धरण प्रस्तुत है–

वनानि वल्गुस्फुरितच्छदानि, सफुल्ल पुष्पाणि फलान्वितानि।
गुञ्जत प्रमत्त भ्रमरावलीभि, मुर्द्धः समास्वाद्य मधुस्रवाणि।।[15]

उत्तरखण्ड में प्राकृतिक सौन्दर्य का कवि ने अत्यन्त रमणीय चित्रण किया है।

अनेक वापिकावारि फुल्लेन्दीवरपंकजम्।
गुञ्जद्भ्रमर सन्दोहसम्बद्ध कुसुमाकरन्।।[16]

ग्रन्थ के पूर्वखण्ड में राम वनगमन से दुःखी पशु–पक्षियों की दशा की कवि ने जो प्रस्तुति की है। वह उनकी उत्कृष्ट प्रतिभा की ही परिचायक है।

---

[13] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 19/8
[14] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 1/1, 3, 4, 5, 6
[15] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 70/6
[16] भुशुण्डि रामायण उत्तरखण्ड, अध्याय 35/10

वनात्वयि निवृत्तेऽद्य सम्पूर्णास्युर्मनोरथाः।
अमी पक्षिखैवृक्षाः कुर्वन्ति करुणस्वरान्।।
रोरूवन्ति चिरं क्लिष्टाः खग वृक्षेष्ववस्थिताः।
सरःसु गुजद्भ्रमरा यामिन्यो विरुवन्ति च।।
अर्द्धावलीढद्या सास्याः पशवः कृच्छ्रमासते।
इत्थमापतितं कष्टं त्वयि सम्प्रस्थिति वनम्।।[17]

राम को दुःखी देखकर चराचर जगत व्याकुल हो उठता है। पशु–पक्षी भी करुण क्रन्दन करने लगते हैं। कवि ने अचेतन में चेतन का निर्वाह कर अपनी प्रतिभा का सुन्दर चित्रण किया है। कवि ने पशु–पक्षियों का राम के प्रति जो प्रेम दिखाया है कि वह निश्चय ही उसकी श्रेष्ठ प्रतिभा का ही परिचायक है। कवि ने मनुष्यों की तरह पशु–पक्षियों मे भी संवेदनशीलता को प्रस्तुत किया है। निश्चय ही ज्ञान और चेतना के उदयकाल से ही मानव हृदय प्रकृति के प्रति सजग एवं संवेदनशील रहा है। अपने अनन्त निरीक्षण के पश्चात उसे इस बात की अनुभूति हुयी कि प्रकृति का साथ अत्यन्त ही कोमल, मधुर एवं आनन्दमयी है और प्रकृति में ही मनुष्य के सुकुमार मनोभावों तथा वृत्तियों के परितोष के लिए उचित सामग्री को जानकर उसने अपनी संवेदनशीलता और कल्पनाशक्ति के माध्यम से अपनी भावनाओं को पंख प्रदान किये। यह उद्धरण कवि की विशिष्ट प्रतिभा को दर्शा रहा है।

कवि ने अपनी विशिष्ट प्रतिभा के द्वारा राम के दिव्य प्रभाव को दर्शाया है। राम के कोशल देश में आगमन के समय प्रचुर सम्पत्तियों का प्रादुर्भाव हो गया। उस समय वृक्ष फलों से लद गये। वसुन्धरा रत्नों से परिपूर्ण हो गयी। मेघ समय पर वर्षा करने लगी और लतायें विकसित हो गयी। पर्वत धातुओं को प्रदान करने लगे और देवगण प्रसन्न हो गये।

लक्ष्मीमराः प्रादुरासुस्तथा संपद्भराअपि।
फलिनो मुरुहा आसन् रत्नसूश्च वसुन्धरा।।
काले ववर्ष पर्जन्यः फलन्तिस्म लताद्रुमाः।
भूधरा धातुदातारः सुवर्णरजतादिकान्।।
देवाः प्रसादसमुखाः सुखाराध्या हविर्भुजः।
यज्ञाः सद्यो विधिफलाः शीघ्रफलप्रदाः।।
ब्रह्मक्षत्रविशां चैव शूद्राणां च गृहे गृहे।
सुवर्ण मणिनिष्काढ्या विलसन्त्यङ्गनागणाः।।
सर्वे जनाः कृतानन्दा कृतोत्साहाः सुमंगला।
प्रसन्नमनसश्चासन् राकौतुकदर्शनात्।।[18]

---

[17] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 10/74, 75, 76
[18] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 90/2, 3, 4, 5, 6

विश्वामित्र के यज्ञरक्षा में श्रीराम-लक्ष्मण

राम के आगमन पर समस्त चराचर जगत् का वातावरण परिवर्तित हो जाता है जो कि महापुरुषों के वैशिष्ट्य को प्रकाशित कर रहा है कवि के इस वर्णन में उसकी प्रतिभा का सहज ही आंकलन किया जा सकता है। इस अनन्त काव्य जगत में कवि ही प्रजापति है। यह विश्व उसकी इच्छा के अनुरूप ही परिवर्तित होता है। यदि कवि रसिक है तो समस्त काव्य ही रसमय हो जाता है। यदि वह वीतरागी है। तो जगत नीरस हो जायेगा। वस्तुतः वह कवि ही है जो अपनी प्रतिभा द्वारा काव्य में अचेतन को चेतन और चेतन के अचेतन के सदृश प्रस्तुत कर सकता है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हमें ज्ञात होता है कि चाहे राम, सीता का सौन्दर्य वर्णन हो या शरद ऋतु का वर्णन हो प्रकृति का वर्णन को अथवा पशु–पक्षियों का वर्णन हो, सर्वत्र कवि की अलौकिक प्रतिभा दर्शनीय है।

ख– अवस्थागत औचित्य

'अवस्था' शब्द 'स्था' धातु से 'अव' उपसर्ग के योग से बना है। स्था शब्द का अर्थ है 'स्थित होना' और अवस्था का अर्थ स्थिति से है।

साधारण बोलचाल की भाषा में अवस्था शब्द उम्, दशा अथवा समय विशेष के अर्थ के रूप में प्रयुक्त होता है। हमारे जीवन की चार अवस्थाएं बतायी गयी है। बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था। भारतीयदर्शन में भी अवस्था शब्द के विषय में उल्लेख मिलता है। वेदान्तदर्शन में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त और तुरीय अवस्थाओं का वर्णन किया गया है।[19]

महर्षि यास्क ने अवस्थाओं का उल्लेख निरूक्त में किया है उनके अनुसार, 'जन्म, स्थिति, वृद्धि, परिवर्तन, अपक्षय तथा नाश ये छः प्रकार की अवस्थाएं होती हैं।'[20]

भारतीय काव्य जगत् में भी इन अवस्थाओं का वर्णन किया गया है जिस काव्य में अवस्थाओं का वर्णन उचित रूप से होता है, व उस काव्य की सुन्दरता की वृद्धि ही नहीं करता अपितु उसे काव्य जगत् में प्रशंसनीय बनाता है।

अवस्थौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण –

अवस्थौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ औचित्यविचारचर्चा में इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

अवस्थौचित्यमाधत्ते काव्यं जगति पूज्यताम्।
विचार्यमाणरुचिरं कर्तव्यमिव धीमताम्!।।

"अवस्था औचित्य से काव्य, जगत् में उसी प्रकार प्रशंसित होता है। जिस प्रकार बुद्धिमानों का विचार पूर्वक किया गया कार्य प्रशंसित होता है।"[21]

अर्थात् अवस्था के अनुरूपता से काव्य संसार में उसी तरह प्रशंसनीय बनता है जैसे विचार की कसौटी पर कसने पर बुद्धिमानों का कार्य।

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण – अवस्थौचित्य के सन्दर्भ में आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपनी स्वरचित 'लावण्यती' का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है।

मुक्तः कन्दुल विभ्रमस्तरलता व्यक्तैव बाल्योचिता
मौग्ध्यं निर्धुतमाश्रितागजगतिर्भ्रूलास्यमभ्यस्यते।

---

[19] छन्दोग्योपनिषद (6/8/2)
[20] निरुक्त – आचार्य यास्क
[21] औचित्यविचार चर्चा (कारिका 36)

यन्नमोर्मिषु निर्मितं मृगदृशा वैदग्ध्यदिव्यं वच–
स्तद्विघ्नः सुभगामिमानलट भाभावे निबद्धो भरः।।[22]

"इस बाला की शैशवावस्था समाप्त हो गयी है, क्योंकि इसने अब गेंद से खेलना भी छोड़ दिया है। बचपन की सभी चंचलताओं को त्यागकर दिया है, अर्थात् अब पहले की भाँति भोलापन नहीं रहा है। इसकी चाल भी हाथी की भाँति मस्तानी हो गयी है। भौहें चंचलता को प्राप्त हो रही हैं। कामजन्य वाणी की विदग्धता भी इसमें अब आ गयी है। इसकी इन सभी क्रियाओं को देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि इसने स्वाभाविक सुन्दरता से पूर्ण कन्योचित काम व्यंजनाओं में पूर्णता प्राप्त कर ली है।"

प्रस्तुत उदाहरण में कहा गया है कि इस बाला ने कुन्दक क्रीडा का परित्याग करके बाल सुलभ चंचलता को ग्रहण कर लिया है। गज की चाल का अनुकरण कर लिया, भौहों को नृत्य की शिक्षा दे रही है। परिहास में विद्वता प्राप्त कर ली है। इससे यह ज्ञात होता है, इसने शैशवावस्था का परित्याग करके युवावस्था में पदार्पण किया है। अतः इसने स्वाभाविक सौन्दर्य को परित्याग करके युवावस्था में पदार्पण किया। यहाँ वयःसन्धि के वर्णन में औचित्य रमणीयता को प्राप्त हुआ है।

प्रत्युदाहरण –

अवस्थागत अनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि राज़शेखर का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है –

ज्यायान् धन्वी नवधृत धनुस्ताम्रहस्तोदरेण,
क्षत्रक्षोदव्यतिकर पटुस्ताटकाताड्गकेन।
कर्णाभ्यर्णस्फुरित पलितः क्षीरकण्ठेन सार्ध,
योद्धं, वाञ्छन्न कथमधुना लज्जते जामदग्न्यः।।[23]

"अतिश्रेष्ठ धनुर्धारी, क्षत्रियों के विनाश में प्रवीण तथा जिनके कान के पाश के केश पके हुए प्रतीत हो रहे हैं। ऐसे परशुराम नये धनुष को धारण करने के कारण लाल हथेली वाले, ताड़का स्त्री का वध करने वाले एवं दुधमुँहे राम के साथ लड़ने की इच्छा करते हुए क्यों नहीं लज्जित हो रहे हैं?"

प्रस्तुत उद्धरण में बुढ़ापे की अवस्था के समीप पहुँचे हुए तथा जगत् विदित पराक्रम की कर्कशता से मण्डित प्रसिद्ध धनुर्धर परशुराम, धनुष के अभी थोड़े दिनों से धारण करने के कारण लाल हथेली वाले बालक राम के साथ युद्ध करने की इच्छा हेतु लज्जा का अनुभव नहीं कर रहे हैं। इस कथन में अत्यन्त सुकोमल होने

---

[22] औचित्यविचार चर्चा, पृ0 224
[23] औचित्यविचार चर्चा, पृ0 234

के कारण राम की अवस्था के परशुराम की अवस्था से विपरीत बतलाने के सन्दर्भ में 'ताड़का को मारने वाले के साथ' ऐसा जो कहा गया वह राम की अवस्था के प्रतिकूल प्रतीत होता है। क्योंकि दूध मुँह बालक के द्वारा ताड़का जैसी दुर्दान्त राक्षसी का वध कैसे सम्भव है। यहाँ अवस्थागत अनौचित्य का प्रवेश हो गया है। जिससे पाठकों के चित्त में एक अपूर्व संकोच की अनुभूति होती है।

भुशुण्डि रामायण में अवस्थागत औचित्य

प्रत्येक अवस्था चाले वह बाल्यावस्था हो, युवावस्था हो अथवा वृद्धावस्था हो सभी की अपनी–अपनी विशेषतायें होती हैं। जो मनोवृत्तियाँ, व्यवहार एवं चेष्टायें बाल्यावस्था में दृष्टिगोचर होती हैं, वह यौवन एवं वृद्धावस्था में नहीं मिलती। इसी प्रकार वृद्धावस्था की प्रवृत्तियों का बालक अथवा युवक से मिलना संभव नहीं है।

किसी चरित्र की प्रस्तुति में कवि यदि उसकी अवस्था के अनुरूप क्रियाओं और चेष्टाओं आदि को सम्मिलित नहीं करता, तो न केवल उसका काव्य अनौचित्य से दूषित होता है अपितु सह्रदयों में उपहास का कारण भी बनता है। भुशुण्डि रामायण में कवि ने प्रमुखता तीनों अवस्थाओं बाल, यौवन, वृद्धावस्था के सम्यक चित्र प्रस्तुत किये हैं जो औचित्य की दृष्टि से परिपूर्ण हैं, उचित प्रयोग को दर्शा रहा है।

बाल्यावस्थागत औचित्य –

बाल्यावस्था के स्वरूप के वर्णन में भगवान श्रीराम की बाल्यावस्था का अत्यन्त ही सुन्दर मनोहारी मुग्धकारी वर्णन हुआ है। रचयिता ने राम की बाल्यावस्था का वर्णन कृष्ण की तरह अद्‌भुत चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया है। कवि ने राम के बाल्यावस्था का, विविध रूपों का वर्णन किया है। कहीं उनका चित्रण एवं सामान्य बालक की तरह किया है। तो कहीं उनका विशिष्ट बालक के रूप में चित्रण किया है।

माता कौशल्या के मना करने पर भी राम जब बदरी फल भक्षण कर लेते हैं माता के पूछने पर भी मना कर देते हैं कि हे माता मैने हानिकारक बदरीफल नहीं खाया तुम्हें विश्वास न हो तो मेरा मुख खोलकर देख लो। वत्स राम के मुख में विलक्षण लोकों को देखकर वे आश्चर्य चकित हो जाती हैं।

श्रीमद्‌भागवत में जिस प्रकार माता यशोदा श्री कृष्ण के छोटे मुख मण्डल में विलक्षण लोको को देखकर आश्चर्यचकित हो जाती है उसी प्रकार भुशुण्डि रामायण में राम के मुख में सम्पूर्ण जगत को देखकर आश्चर्यमय हो जाती हैं।

अद्‌यः सागराः नद्यो द्वीपाः ग्रामाः पुराणि च।
नरा देवाश्च गन्धर्वा वनानि भुवनानि च।।

सर्व राममुखेऽपश्यन्माता मांङ्गल्यया सह मांगल्या।
अदृष्टमश्रुतं चैव सर्वाश्चर्यमयं जगत्।।[24]

इस प्रकार बाल्यावस्था में राम अपने विभिन्न आश्चर्यों को दिखाकर सबका मन मोह लेते हैं। भुशुण्डि रामायण में बालस्वरूप राम का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है।

रामायण में श्री राम की बाल्यावस्था के रूप उनके लावण्य तथा अंग प्रत्ययों की सुषमा मनोहर है। वे अपनी बाल सुलभ चेष्टाओं से पिता दशरथ तथा अयोध्यावासियों को मंत्रमुग्ध किये बिना नहीं रहते। वे कभी बाल गोपालों के साथ खेलते तो कभी नृत्य करते वे सभी बालकजनों सम्बन्धित जनों को अतिशय प्रिय लगते हैं तथा उनके कार्य देखने वालों के मन को आनन्दित कर देते हैं।

क्वचिन्मुहुः कूर्दमानाः क्वचिन्नृत्यन्त एव च।
क्वचिद् गोपालबालाभिः खेलन्तश्च परस्परम्।।[25]
ते बालकास्तत्र गवेन्द्रधाम,न्यलङ्कृता हेममयैर्विभूषणैः।
विचेरुरानन्दित बन्धु लोचनाः,स्वरूप सौन्दर्यलसत्प्रतीकाः।।[26]

भुशुण्डि रामायण में गोपिकाओं का भगवान राम के प्रति हार्दिक अनुराग को दर्शाया गया है। गोपिकाएं बालस्वरूप राम के प्रेम रज्जु में बंध जाती है। उन्हें उनका क्षणमात्र वियोग असह्य हो जाता है। वे किसी न किसी बहाने से नटखट राम की चारु चितवन देखने के लिए तरसती है।

स गोकुल वर स्त्रीणां ह्रदयानि प्रमोदयन्।
बालकेलिं चकारोच्चैर्मोहयन गोपकन्यका।।
ता गोपकन्याः स्मरबाणविद्धा ,रामेण विस्त्रंसयता मनांसि।
समयायुः कान्त विलोकनार्थ ,गृहानुपालम्भमिषेण लुब्धाः।।[27]

भुशुण्डि रामायण में राम का बालचरित कृष्णचरित जैसा वर्णित है भगवान राम की बाल्यक्रीड़ा अत्यन्त ही मोहक है। कहीं वे वंशी बजाते हुए गाते हुए कूदते हुए नृत्य करते हैं और कहीं वे गोपाल बालाओं के साथ क्रीड़ा करते हुए खेलते हैं। कवि ने राम की बाल्यावस्था का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है।

गोपिकायें भगवान राम के नटखट कार्यों को बतलाकर कौशल्या को उपालम्भ देती हुयी कहती है कि रानी कौशल्या, तुम्हारे चारों पुत्रों में राम बहुत ही नटखट हैं यह हमारा माखन चुरा लेता है। देख लेने पर भाग जाता है और फिर पुनः आकर गाली देता है।

---

[24] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 19/23, 24
[25] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 21/15
[26] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 17/24
[27] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 18/7, 11

कृत्वा बहु नवनीतस्तेयं भोजयति कपीन् शिशुंश्च शश्वत्।
दृष्टः सपदि पलायति बालैः पुनरायाति च गालीं दत्ते।।[28]

यहाँ राम के बालचपलताओं का जो उपालभ्य वर्णन है, यह उनके नटखट स्वरूप को दर्शा रहा है। गोपिकाओं के उपालम्भ में भी उनका राम के प्रति अतिशय प्रेम ही दृष्टिगोचर हो रहा है।

किशोरावस्थागत औचित्य

भुशुण्डि रामायण में राम की बाल्यावस्था के साथ ही उनके यौवन अवस्था का सुन्दर वर्णन सहज ही स्वीकार्य है। भुशुण्डि रामायण के पूर्वखण्ड के 25वें अध्याय में भगवान राम की यौवन अवस्था की अलौकिक सुन्दरता का वर्णन किया गया है। भगवान राम को प्राप्त कर वे सभी गोपिकाऐं कामतत्व के द्वारा उनके साथ रमण करती हैं उसी समय सहजानन्द रूप का काम आर्विभाव भाव होता है जो सहजा नन्दिनी रूपिणी सीता को प्रकम्पिक कर देता है। राम के काम बाणों से प्रकम्पित सीता, राम को विश्रुब्ध कर देती है। काम बाण से संक्षुब्ध राम उनका आलिंगमन करना चाहते हैं।

रामतत्त्वमनुप्राप्यः मुमुहुःकामभाविताः।
अन्याश्च दिव्यललना दिव्यरूपसमन्विताः।।
कृत्वा तपो वरं लब्धवा दिव्यमापुर्मनोरपम्।
ततो निजवरं सत्यं कर्त्तुं रामो महामनाः।।
कामतत्वेन ताः सर्वा रमयामास गोपिकाः।
अथ प्रादुरभूत कामः सहजानन्द लक्षणः।।
जानकी वेपयामास सहजानन्दरुपिणीम्।
सा वेपिता कामशरैः प्रादुर्भूय रघूद्वहात्।।
दिव्यवेशधरा भूत्वा क्षोभयामास राघवम्।
संक्षुब्धः कामबाणेन् तामालिंङ्गितुमीयिवान्।[29]

श्री राम की यौवन अवस्था की आलौकिक लावण्य तथा अंग प्रत्ययों का वर्णन किशोरावस्था के अनुरूप ही है जो औचित्य की दृष्टि से उचित एवं शोभायुक्त है।

वृद्धावस्थागत औचित्य

राजा दशरथ अपनी अवस्था के अनुरूप वृद्धावस्था को प्राप्त होते हैं। वृद्धावस्था में राजा का कर्त्तव्य होता है कि राज्य कार्य को सुचारु रूप से चलाने

[28] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 18/13
[29] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 26/5–9

के लिए वह उस राज्य का शासन श्रेष्ठ पुत्रों को सौंपे। महाराज दशरथ राम को योग्य समझकर प्रसन्नचित्त उन्हें युवराज पद पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं।

कालस्थायिनियन्ता यः पुरुषः प्रकटेः परः।
स एव रामदेवोऽयं कथं साधारणोभवेत्।।
अनेन न कुलं सौरं विशेषाद्विमतीकृतम्।
तेजसामपि तेजो यत् स रामः पुरुषोत्तमः।।
नायं जनो नापि सुरो न यक्षो नापि लौकिकः
अलौकिकं महः पूर्ण राम शब्देन् कथ्येत्।।[30]

कवि ने राजा दशरथ की वृद्धावस्था का वर्णन कर अवस्थागत औचित्य का पूर्णतः निर्वाह किया है। कोई भी कवि अपने काव्य में किसी भी चरित्र विषय के अवस्था के अनुरूप क्रियाओं और चेष्टाओं आदि को सम्मिलित नहीं करता तो वह काव्य सहृदय में उपहास योग्य ही होता है और वह काव्य अनौचित्य से युक्त होता है।

वस्तुतः भुशुण्डि रामायण में चाहे राम की बाल्यावस्था का वर्णन हो अथवा युवावस्था का अथवा दशरथ की वृद्धावस्था का वर्णन हो, कवि ने सभी की क्रियाओं को अवस्था के अनुरूप प्रस्तुत किया है।

---

[30] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 61/5, 6, 7

ग– विचारगत औचित्य

विधाता की सुन्दर रचना में मानव का अन्य प्राणियों की अपेक्षा महत्त्वपूर्ण स्थान है। मानव की कल्पना शक्ति भी अन्य सभी प्राणियों की अपेक्षा अधिक बलशाली है। मनुष्य की कल्पना शक्ति की क्षमता उसके मस्तिष्क की शक्ति पर निर्भर करती है। विचार शब्द का अभिप्राय है किसी विषय के बारे में मत या अवधारणा। यदि मनुष्य का मस्तिष्क स्वस्थ है तो उसमें सोचने विचारने की क्षमता भी अधिक होती है। बहुधा देखा जाता है कि किसी विषय विशेष पर दिया गया निर्णय अन्य व्यक्तियों द्वारा अनेक प्रकार का होता है। यह आवश्यक नहीं है कि एक विषय पर सभी के विचार समान हों। किन्तु जो विचार अधिक उपयुक्त एवं उपयोगी होते हैं, वे जगत् में अमरत्व को प्राप्त होते हैं तथा यही विचार काव्य जगत् तथा संसार में औचित्यपूर्ण कहे जा सकते हैं।

विचारौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण –

विचारौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र ने 'औचित्यविचारचर्चा' में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है।

"उचित विचारों से सूक्तियाँ उसी प्रकार सुन्दरता को प्राप्त करती है, जिस प्रकार मानव मनीषियों की विद्या ज्ञेयत्व को प्राप्त होने पर भव्यता को प्राप्त करती है।"[31]

प्रस्तुत उदाहरण – विचारौचित्य विषयक दृष्टिकोण का सुन्दर उदाहरण आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपनी स्वरचित 'मुनिगतमीमांसा' से प्रस्तुत किया है ।

अश्वत्थामवधाभिधान समये सत्यव्रतोत्साहिना,
मिथ्या धर्मसुतेन जिह्मवचसा हस्तीति याद् व्याहृतम्।
सा सत्यामृतरश्मिवैरसमं संसूचयन्त्याः सदा,
शंके पंकजसंश्रयेण मलिनारम्भा विजृम्भा श्रियः।।[32]

'सत्यव्रतधारी युधिष्ठिर की मृत्यु की सूचना झूठ बोलकर 'नरोवा कुंजरो वा' कहकर हाथी का नाम लिया है, उसमें इसका दोष नहीं है। बल्कि कमल पर निवास करने वाली लक्ष्मी के कारण ही विचारों में परिवर्तन आ गया। क्योंकि कमल चन्द्रद्वेषी होते हैं। अतः युधिष्ठिर के सत्य वचन मेरे मतानुसार चन्द्रमा के प्रति द्वेष रखने वाली राज्य लक्ष्मी का ही यह बुरा प्रभाव है। अर्थात् उसी का कार्य है।

---

[31] उचितेन विचारेण चारुतां यान्ति सूक्तयः।
वेद्यतत्वावबोधेन विद्या इव मनीषिणाम्।। औचित्यविचारचर्चा (कारिका 37)

[32] औचित्य विचार चर्चा, पृ0 229

यहाँ पर अश्वत्थामा की मृत्यु के समाचार के विषय में झूठ बोलकर हाथी का जो नाम ले लिया है, उसमें सत्यरूप चन्द्र के विरोध स्वरूप कमलवासिनी लक्ष्मी के गलत आचरण का ही हाथ है। अर्थात् यह स्पष्ट घटना के लिए लक्ष्मी ही जिम्मेदार है इस कथन से युधिष्ठिर का दोष सिद्ध न होकर राज्यलक्ष्मी की स्वाभाविकता पंकजन्मता कमल के कारण सिद्ध होती है। यह विचार चारुता से युक्त सहृदय संवेद्य है तथा औचित्य से पूर्ण है।

प्रत्युदाहरण – विचारगत अनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है –

प्राग्लानेचिर कालवृत्तदयिताकेशाम्बराकर्षणे,
क्रूरं राक्षस वैरासं यदि कृतं भीमेन दुःशासने।
तत्कालक्षमिणा कुशाश्यपरुषारण्य प्रवासे चिरं,
किं पीतं तततापमग्नमहिपस्वेदाम्बुपृक्तंपयः।।"[33]

"द्रौपदी के केश और वस्त्र खींचने के बहुत समय पश्चात भी यदि भीम, दुःशासन को पटककर उसकी छाती फाड़कर रक्तपान रूप राक्षसकर्म करना ही था तो फिर उन्होंने तत्काल क्षमा का अवलम्बन करके इतने लम्बे समय तक कुश एवं कंकड़ पत्थरों से भरे हुए अरण्य में निवास करते हुए पसीने से लथपथ, भैंसों के पसीनों से मिश्रित कुस्वादु जल का पान करना ही था तो फिर इतने दिनों तक जंगल में भीषण कष्टों को ही क्यों झेलते रहे?

प्रस्तुत उद्धरण में भीम के चरित्र के सन्दर्भ में कहा गया उसमें कारण के ऊपर विचार न करके केवल निर्मूल उलाहना मात्र ही कवि का लक्ष्य प्रतीत होता है, अतः यह विचारगत अनौचित्य को ही स्पष्ट रूप से उद्भासित कर रहा है।

भुशुण्डि रामायण में विचारगत औचित्य –

विचारौचित्य से तात्पर्य 'सूक्तियों को उचित विचार सूत्रों से सन्निहित कर उनमें चारुत्व का विधान करना' 'विचार', वाणी का वाहन है। बहुधा कविजन अपनी रचना लिखते समय बीच–बीच में सूक्तियों का समावेश रहते हैं और कभी –कभी स्वतंत्र रूप में भी सूक्तियों का वर्णन करते हैं। इन्हीं सूक्तियों की चारुता का रहस्य विचारौचित्य है।

भुशुण्डि रामायण में कवि ने यथास्थान विचारौचित्य का सुन्दर वर्णन किया है। कतिपय उद्धरणों के माध्यम से हम भुशुण्डि रामायण में विचारौचित्य पर एक विहंगम दृष्टि अवलोकित कर रहे हैं।

---

[33] औचित्य विचार चर्चा, पृ0 237

राम के कथन में विचारौचित्य की उचित व्यंजना दर्शनीय हो रही है –

अलं जनन्यो शोकेन किं दैवं कस्य चिद्वशे।
यथा नियुज्यते जन्तु करोत्येष तथा वशः।।
जीवन पश्यति भद्राणि भूरीणि भुवनेजनः।
मृतस्यास्य पुनर्नैव भविष्यति समागमः।।[34]

राम के वन गमन को सुनकर माता कौशल्या अत्यन्त दुःखी हो जाती हैं। राम उनको समझाते हुए इस प्रकार कहते हैं हे माता ईश्वर के कार्य पर शोक कैसा? ईश्वर ने जैसा जीवों के लिए नियुक्त कर दिया है। वह वैसा ही करते हैं। जीवन को देखो लोक में अनेक जीव–जन्तु हैं। उनका मृत्यु के बाद पुनःसमागन नहीं होते हैं। मरना और जीना तो वियोग और योग ही है। सुख–दुःख, लाभ–हानि जय अथवा पराजय सब कुछ ईश्वर के अधीन है और मनुष्य उसके वश में ही आत्मा तो केवल आत्मा है उसके लिए शोक और मोह कैसा अर्थात् उसके लिए दुःख नहीं करना चाहिए।

राम के उपर्युक्त कथन में विचारौचित्य दर्शनीय है कवि ने गीता के अर्थ विचार को सारार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। कवि के अनुसार सुख–दुःख, लाभ–हानि सब कुछ ईश्वर के आधीन है। इस प्रकार विचारों की जो उचित रूप में प्रस्तुति की है वह हमें सत्यता का बोध कर विचारों के उचित प्रयोग को दर्शा रही है। जो औचित्यपूर्ण है।

वशिष्ट के कथन में विचारौचित्य दर्शनीय है –

राजा दशरथ राम वनगमन से दुःखी होकर विलाप करने लगते हैं। तब वशिष्ठ उनसे कहते हैं –

किं शोचसि महीपाल माग्यहि बलवत्तरम्।
पुरुषो देवनियतः पराधीनतमः किल।।
ये भावा भाविनिः पुंसः पूर्वमेव विनिर्मिताः।
न तान् जानाति मनुजो दैवमायावशे स्थितः।।
सुखं दुःख व्ययो लाम जयोऽभिभव एव च।
दैवस्येच्छावशे भावाः कथं तान् शोचसि प्रभो।।[35]

हे राजा भाग्य ही बलवान है उसके लिए शोक कैसा। निश्चय ही व्यक्ति ईश्वर के अधीन है। ये भाव पुरुष के अन्दर पहले से ही बना हुआ होता है। उसे मनुष्य नहीं जानते हैं। ईश्वर की माया के वश में होने से सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय सभी ईश्वर की इच्छा से ही होते हैं। उसके लिए हे प्रभो आप क्यों सोचते हो –

---
[34] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 9/2–3
[35] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय 7/82, 83, 84)

लक्ष्मण के कथन में विचारौचित्य दर्शनीय हो रहा है। लक्ष्मण राम से कहते हैं कि–

अथो यदि न जीवेत् सा किं नु जीवसि त्वं प्रभो।
अहं च किं नु जीवामि ततो जीवति सा ध्रुवम।।
दैवस्य करणीयं तु दैवमेवार्य वेत्ति च।
भवांस्तस्य नियन्ता वा तृतीयो नेह दृश्यते।।[36]

यदि सीता जीवित नहीं होंगी तो हे प्रभो क्या तुम भी जीवित नहीं हो और मैं भी जीवित नहीं हूँ निश्चय ही वह इस पृथ्वी पर जीवित हैं। हे प्रभु आप ही उसके नियंत्रण कर्ता हैं और अपने तीसरे नेत्र से देखते हैं–

यदि हम गम्भीरता से विचार करें तो यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगता है कि मानव के सभी शुभ–अशुभ कार्यों पर नियंत्रण करने तथा स्वेच्छा पर चलाने वाली कोई शक्ति है। वह किसी अनन्त शक्ति के अनुसार ही कार्य करता है वह परवश है। केवल ईश्वर ही स्वतंत्र और स्ववश है। मनुष्य की सर्वप्रिय वस्तुयें जीवन, लाभ और यश हैं। वह इन्हें स्वेच्छानुसार न तो प्राप्त कर सकते हैं और न ही मिटा सकते हैं। कोई अदृश्य शक्ति की सत्ता है जो इनके जन्म स्थिति और विनाश का कारण है। अन्यथा रावण जैसा बलशाली जिसने काल को भी बाँध रखा था। भष्मासुर जिसने शंकर से अमरता का वरदान प्राप्त कर लिया था। अपनी इच्छानुसार जीवित क्यों नहीं बने रहे? आशाओं, आकांक्षाओं का विशाल साम्राज्य क्यों क्षणमात्र में धराशायी हो गया। जो विश्व को क्षणमात्र में संहार करने की शक्ति रखता है जिसने जल, थल और आकाश पर एकाधिकार कर लिया हो उस मानव के जीवन में कभी–कभी ऐसे क्षण आ जाते हैं कि वह किं कर्तव्यविमूढ हो जाता है और किसी शक्ति की ओर ताकने लगता है। आज वैज्ञानिक यदि कहीं पर अपनी पराजय स्वीकार करता है, तो बस यहीं पर। लाभ–हानि मनुष्य के हाथ में न होकर उस विधि के अधिकार की वस्तु है कभी–कभी मनुष्य स्वल्प प्रयास में ही सफलता प्राप्त कर लेता है इसके पीछे ईश्वरीय शक्ति का विधान है।

सुखः–दुःख, यश–अपयश में भी यही बात है व्यक्ति के भाग्य में यश होगा तभी वह यश का भागीदार बनता है। अन्यथा नहीं कैकेयी को अपयश मिलना था तभी तो दासी मंथरा की मृत्यु का कारण बना। भरत को यश मिलना था तभी तो राम वनगमन कैकेयी के वरदान अन्ततोगत्वा भरत के लिए वरदान ही सिद्ध हुए और उन्हें यश मिला।

वस्तुतः हम कह सकते हैं कि भुशुण्डि रामायण में यथास्थान विचारों की उचित सूक्तियों की छटा दर्शनीय होती है। इसप्रकार के विचार भावों की कवि ने यथास्थान उचित प्रस्तुति की है। जो हमें सत्य से अवगत कराते हैं तथा ईश्वर की सत्ता का बोध कराते हैं। काव्य में इस प्रकार के विचारों की उचित प्रस्तुति से

---

[36] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड (159 / 19, 20)

कवि सहृदय को विशेष ज्ञेयत्व एवं उसके विचारों को भव्यता प्रदान कर समाज के लिए उपयोगी बनाता है।

घ. नामगत औचित्य

नाम वह सार्थक शब्द अथवा शब्द समूह है जो हमें किसी सत्ता का संकेत या परिचय देता है। सत्ता किसी व्यक्ति, जाति तथा धर्म की होती है। नाम, नामी तथा प्रयोक्ता के मध्य सम्बन्ध की स्थापना करने का श्रेष्ठ साधन है। यदि नामकरण की प्रक्रिया की अवतारणा संसार से न हुयी होती तो संभवता मानव जीवन में अव्यवस्था रहती। जीवन के विभिन्न प्रसंग नाम पर ही निर्भर करते हैं। इस दृष्टि से नाम सार्वभौमिक तथा सर्वकालिक महत्व रखता है।

नामौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण –

नामौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपना मत अपने ग्रन्थ में इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

"कार्य के अनुरूप नाम से पुरुष के गुणदोषों की अभिव्यक्ति होती है। काव्य की अभिव्यक्ति उसके प्रतिपाद्य विषयानुसार नाम से होती है।"[37]

जैसे मनुष्यों के कर्म के अनुरूप नाम से उनके गुण–दोषों का ज्ञान हो जाता है, उसी तरह काव्यों के गुण–दोषों की अभिव्यक्ति भी उनके प्रतिपाद्य विषय के अनुसार नाम से ही की जाती है।

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण –

नामौचित्य के संदर्भ में आचार्य क्षेमेन्द्र ने कालिदास द्वारा रचित निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है –

इदमसुलभवस्तु प्रार्थना र्निवारः
प्रथममपि मनो में पञ्चबाणः क्षिणोति।
किमुत मलय वातान्दोलितापाण्डुत्रै–
रुपवनसहकारैदर्शितेष्वङ्कुरेषु।।[38]

"यह पंचवाण जिसे दुर्लभ वस्तुओं की प्रार्थना से भी रोका नहीं जा सकता। मेरे हृदय को पहले से ही अत्यन्त घायल कर रक्खा है। मलयानिल से आन्दोलन पीले–पीले पत्तों वाले, उपवन स्थित आम्र वृक्षों के द्वारा निकलती हुई अगणित मञ्जरियों के प्रदर्शन से अब न जाने क्या करने का विचार है?"

---

[37] नाम्ना कर्मानुरूपेण ज्ञायते गुणदोषयोः।
काव्यस्य पुरुषस्येव व्यक्तिः संवादपातिनी।। औचित्यविचारचर्चा कारिका 30

[38] औचित्य विचार चर्चा, पृ0 235

प्रस्तुत उद्धरण में पहले ही मेरे मन को दुर्लभ वस्तु (प्रियतमा) को प्राप्त करने की कामना के कारण दुर्निवार पंचबाण (कामदेव) ने खण्ड–खण्ड कर दिया है, अब मलय वायु के चलने से हिलते हुए सुकुमार पत्तों वाले उद्यान के आम्र वृक्षों के द्वारा नई नई मञ्जरियों को दिखाकर न जाने क्या करना चाहता है? अर्थात् जब इनके पास पाँच बाण ही थे तब तो इसने हमारे मन के टुकड़े–टुकड़े कर डाले थे। इस समय इनके पास तो हजारों बाण हो गये हैं। अब यह हमारी क्या दुर्दशा करेंगे? इस कथन में मदन को जो पंचबाण कहा गया है वह अत्यन्त ही उचित है क्योंकि मन को विद्ध करने के लिए काम का पंचबाण का होना आवश्यक है न कि अनङ्ग मनोभाव आदि। अतः यह नामौचित्य के सुन्दर उद्धरण रूप में प्रस्तुत है।

प्रत्युदाहरण – नामगत अनौचित्य के स्पष्टीकरण के लिए महाकवि कालिदास का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है–

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति ,सावद्गिरःखेमरुतांचरन्ति।
तावत्स बह्निर्भवनेत्रजन्मा ,भस्मावशेषं मदनं चकार।।[39]

"हे प्रभो, क्रोध को रोकिए, क्रोध को रोकिये ऐसी देववाणी जब तक आकाश में व्याप्त हो रही थी तब तक शंकर के तीसरे नेत्र से उत्पन्न उस प्रलयकारी अग्नि ने कामदेव को जलाकर भस्म कर डाला अर्थात् जब तक देव लोग शंकर जी से क्रोध को न करने की प्रार्थना कर रहे थे उससे पूर्व ही शंकर ने कामदेव को जलाकर राख कर दिया।"

प्रस्तुत उद्धरण में भव (शंकर) के तृतीय नेत्र से उत्पन्न अग्नि ने कामदेव को भस्मावशेष का डाला इस कथन में संहार के समय में रुद्र के लिए भव (बनाने वाले) इस नाम का प्रयोग अनौचित्य को ही व्यक्त कर रहा है।

भुशुण्डि रामायण में नामगत औचित्य

काव्य में प्रयुक्त नाम की सार्थकता विचारणीय है। विशेष रूप से व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग करते समय सतर्कता अपेक्षित है। नाम के साथ व्यक्ति का रूप, कार्य, गुण, दोष सभी कुछ सम्प्रक्त होता है। पौराणिक और ऐतिहासिक महापुरुषों तथा देवी देवताओं आदि के अनेक नाम होते हैं। नामों के पीछे उनका इतिहास भी छिपा होता है रस सिद्ध कवि, सन्दर्भ के अनुरूप नाम का चयन करते हैं।

भुशुण्डि रामायण में भी नामों के प्रयोग में भी औचित्य का पूरा–पूरा ध्यान रखा है। सर्वप्रथम इस ग्रन्थ के नामकरण पर दृष्टि डालें तो हमें पता चलता है कि रचयिता ने इस रामायण का नाम भुशुण्डि रामायण ही क्यों रखा। रचयिता ने

---

[39] औचित्य विचार चर्चा, पृ0 238

भुशुण्डि की जिज्ञासा निवृत्ति में निमित्त होने के कारण इस ग्रन्थ का नाम भुशुण्डि रामायण रखा जो कि औचित्य से परिपूर्ण है यद्यपि इसको आदि रामायण, ब्रह्मरामायण के नामों से भी जाना जाता है परन्तु भुशुण्डि रामायण नाम अत्यन्त ही प्रचलित है।

भुशुण्डि रामायण में नामकरण संस्कार को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। गुरु वशिष्ट ने राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघन चारों पुत्रों के नाम लोक और वेदानुसार उनकी अलग–अलग विशेषताओं के अनुसार रखा।[40]

रचयिता ने राम नाम का औचित्य अत्यन्त ही सार गर्भित रूप में प्रस्तुत किया है–

यदेकं परमं सारं तद्वो वक्ष्ये यथामति।
रामेति द्वयक्षरो मंत्रः सर्वकल्याणदायकः।।
वेदानाम् सारभूतोऽसो स्वात्मचैतन्य दीपकः।
उद्गीथः सर्ववेदानां सर्वोपनिषदां निधिः।।
दहनः सर्वपापानां पावकार्चिर्यथैधसाम्।
पावनः सर्वतीर्थानां भावनः शुभकर्मणाम्।।[41]

ग्रन्थ के पश्चिमखण्ड में राम नाम की महत्त्वा प्रदान करते हुए कहा गया है। राम का नाम लेने से यज्ञ, दान, तीर्थ, तपस्या आदि सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। उनके समान न तो कोई तीर्थ है न तो कोई पुण्य न तो कोई कर्म और न तो योग और नही मोक्ष है।

श्री राम नाम्ना सदृशं न तीर्थ, श्री राम नाम्ना सदृशं न पुण्यम्।
श्री राम नाम्ना सदृशं न कर्म, श्री राम नाम्ना सदृशं तपो न ।।
श्री राम नाम्ना सदृशो न योगः, श्री राम नाम्ना सदृशो न भोगः।
श्री राम नाम्ना सदृशो न मोदः, श्री राम नाम्ना सदृशो न मोक्षः।।
श्री राम नाम्ना सदृशी न भक्तिः, श्री राम नाम्ना सदृशी न शक्ति।
श्री राम नाम्ना सदृशी न सेवा, श्री राम नाम्ना सदृशी न चर्चा।।[42]

धर्म सांख्ययोग, वेद, पुराण, ब्रह्मसूक्त, वेदान्त यह सब कुछ राम नाम में ही प्रतिष्ठित है।[43] रकार से विकास होता है और मकार से संकोच इस प्रकार से वेदशास्त्र और पुराण के द्वारा एक तत्त्व राम विनिश्चित है।[44] भुशुण्डि रामायण में राम नाम को वेदों का सार बताया गया है।

---

[40] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 13/11
[41] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 31/16, 17
[42] भुशुण्डि रामायण पश्चिमखण्ड, अध्याय 31/23, 24, 25
[43] भुशुण्डि रामायण पश्चिमखण्ड, अध्याय 31/23, 24, 25
[44] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 9/22

कवि ने **'रामं लोकाभिरामं रघुवरतनयं कोशलामुक्तिपुर्या'** ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही प्रस्तुत कर राम नाम की सार्थकता में औचित्य को दर्शाया है जिसे रचयिता ने अपनी काव्य लेखिनी के साथ अत्यन्त ही कितनी सुन्दरता के साथ प्रस्तुत किया है।

रचयिता के अनुसार राम का नाम ही समस्त विपदाओं को दूर कर देता है और व्यक्ति निर्भय होकर इस संसार में निवास करता है।

सम्प्राप्ते संकटे चापि महाभय उपस्थिते।
संग्रामे विषमे घोरे दुर्गमे जल संगमे।।
राजद्वारे मयंकरे तथैवाध्वनि दुर्गमे।
क्राव्यादद्विपसर्पादौ सद्यौ नाशार्थमुद्यते।।
कान्तारे पिशाचाद्यैर्जृम्भकाद्यैरूपद्रुते।
भूतप्रेत पिशाचाद्यैर्जृम्भकाद्यैरूपद्रुते।।
रामेति तस्य नाम्नैव तरन्ति विपदोऽखिलाः।
जायन्ते निर्भयालोकाः कोऽन्यस्तस्माच्ववीर्यमान्।।[45]

ग्रन्थकार के अनुसार ही श्री रामचरित मानस में भी गोस्वामी तुलसीदास ने राम नाम की महिमा को अद्‌भुत रूप में व्यक्त किया है। उन्होंने इस भगवान, इस परम पुरुष, इस परम ब्रह्म से कहीं अधिक महत्व 'राम' नाम को दिया रामचरित में उन्होंने राम नाम का विविध रूपों में गुणगान किया है।

राम एक तापस तिय तारी।नाम कोटि खल कुमति सुधारी।।[46]

गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी सभी रचनाओं में राम के स्थान पर राम नाम के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। उनके अनुसार जो राम नाम नहीं जपता है। उसके चारों ओर दुःख ही दुःख है। गंगा के किनारे चला जाये तो भी वह प्यासा ही रह जायेगा। कृल्पवृक्ष के नीचे जा आये तब भी उसका दुःख दारिद्रय दूर नहीं होगा। अर्थात् राम नाम सभी संकटों को दूर करता है।

भारत की लगभग सभी भाषाओं में राम कथाएँ लिखी गई हैं। लोकमानस में इसकी प्रसिद्धि के कारण बौद्धों और जैनियों ने भी इसे अपने--अपने ढंग से अपनाया। गुरुग्रंथसाहब में आराध्य के लिए बहुत ही नामों का प्रयोग हुआ है। किन्तु गुरुवाणी का सबसे प्रिय शब्द राम है। यह नाम भी निर्गुण संतों की अवधारणा के अनुरूप है। वह निर्गुण है, निराकार है, सर्वव्यापी सर्वपालक है और घट–घट में समाया हुआ है। पाचवें गुरु अर्जुनदेव ने अपनी रचना 'सुखमनी' में

---

[45] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड, अध्याय 43/60–63
[46] रामचरित मानस – गोस्वामी तुलसीदास

कहा है। "उसके उपदेश से ही संसार को जीवन की दिशा मिलती है, जो राम नाम के सार रस को पीता है।"[47]

निश्चय ही राम नाम का महत्व सर्वविदित है रचयिता ने राम के एकसहस्त्र नामों को प्रस्तुत किया है। जो औचित्यपूर्ण है। सभी नामों में राम की विशिष्टिता परिलक्षित हो रही है। राम के सीताप्रिये, भक्तप्रिये, दाशरथि, हरिविष्णु केश्वः आदि अनेक नामों को प्रस्तुत किया है –

रामः श्यामो हरिविष्णुः केशवः केशिनाशनः।
नारायणो माधवश्च श्रीधरो मधुसूदनः।।
सीताप्रियो रक्मिणीशः कल्याणगुणसागरः।
भक्तप्रियो दशरथिः कैटभारिः कृतोत्सवः।।

सीता के प्रिय (सीताप्रिये), भक्तों के प्रिय (भक्तिप्रिये), दशरथ के पुत्र (दाशरथि) आदि एक सहस्त्र नामों को उनके गुणों की विशेषताओं के अनुसार वर्णित किया है। इन सहस्त्र नामों का महत्व बताते हुए भगवान राम ने स्वयं कहा कि इन दिव्य नामों का गान करने से व्यक्ति सहस्त्रगुना पुण्य फल प्राप्त करता है।

दिव्य नाम्ना सहस्त्राणि कीर्तयन् यत्फलं भवेत्।
ततः कोटिगुण पुण्यं फलं दिव्य मदात्मकम्।।[48]

निश्चय ही कवि के द्वारा राम के सहस्त्रनामों की औचित्यपूर्ण व्यंजना की गयी है।

देवी सीता राम की पराशक्ति है उनके बिना राम अपूर्ण हैं वे उनकी सभी लीलाओं में सहयोग करती हैं। भुशुण्डि रामायण में उनके अनेक स्वरूपों के प्रतिपादक एक हजार नामों का उल्लेख किया गया है जो औचित्ययुक्त है। जिनमें सहजा, नन्दिनी, सीता, जानकी, राधिका, रति, रुक्मणी कमला, कान्ता, कान्ति, कमललोचना, किशोरी, रामललना, कामुकी, करुणानिधि आदि प्रमुख नाम हैं।

भुशुण्डि रामायण में सीता के लिए 'सहजा' नाम का विशेष उल्लेख किया गया है। सीता का सहजा नाम सहजयानी बौद्धों के प्रभाव को दर्शाता है। भुशुण्डि रामायण के अतिरिक्त सहजा नाम का उल्लेख भारतीय अथवा विश्व के किसी भी रामायण में नहीं मिलता है। कृष्णरचित में जो स्थान राधा का है वही स्थान भुशुण्डि रामायण में सहजा का है।

सहजा जानकी सीता मोदिनी राधिका रामा।
आनन्दिनी परालीला ललना लास्य कारिणी।।[49]

---

[47] प्रसिद्ध साहित्यकार – डा0 महीप द्वारा प्रकाशित लेख (दैनिक जागरण)
[48] भुशुण्डि रामायण उत्तरखण्ड 21/39
[49] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड 43/22

भुशुण्डि रामायण में देवी सीता और सहजा में अभिन्नता बतलायी गयी है। श्री देवी को कमला और लक्ष्मी का पर्याय माना गया है।

राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघन के नाम उनकी अलग–अलग विशेषताओं के अनुरूप है। जिनके एक कण से तीनों लोक सुखी होते हैं उनका नाम राम अर्थात् आनन्दप्रद, मनोहर, सुहावना एवं जो सुखपूर्वक सम्पूर्ण लोकों को शान्ति देने वाले हैं संसार का भरण पोषण करने वाले हैं उनका नाम भरत ,जिनके स्मरण मात्र से शत्रु का नाश होता है। उनका वेदों में प्रसिद्ध शत्रुघन नाम रखा। जो शुभ लक्षणों के धाम श्रीराम जी के प्यारे और सारे जगत के आधार हैं गुरु वशिष्ठ ने उनका लक्ष्मण ऐसा रखा।[50]

कवि ने लक्ष्मण के एक सहस्त्र नामों को प्रस्तुत किया है। ये सहस्त्रनाम लक्ष्मण की स्वाभाविक विशेषताओं के अनुरूप है। लक्ष्मण के सुदर्शनः सीताहितप्रदाता, महीभारो, महीधरः, सौमित्रेयः, रामभद्रः, रामाज्ञापलकों, सुखवर्द्धनः आदि नामों को प्रस्तुत किया है।[51] जो औचित्यपूर्ण है।

जनक के नाम में भी औचित्य दर्शनीय है जन शब्द में ण्वल प्रत्यय लगकर जनक शब्द निष्पन्न होता है। जिसका शाब्दिक अर्थ है निष्पन्न करने वाला। सीता का भरण पोषण करने के कारण मिथिला नरेश को जनक नाम से संबोधित किया गया।

दशरथ का नाम भी औचित्य से युक्त है। दशरथ अर्थात् दश+रथ जो दश इन्द्रियों का रथी हो। अर्थात् जिसने अपनी दसों इन्द्रियों को वश में कर लिया हो। जहाँ पर संयम होगा, जितेन्द्रिय होगा वहीं पर परमब्रह्म परमात्मा का अवतरण हो सकता है। इसी कारण परब्रह्म, राम मानव के रूप में ऐसे दशरथ के यहाँ जन्म लेते हैं।

रावण जो कि प्रतिनायक हैं के नाम से भी औचित्य दर्शनीय है।

"युद्धे रुध्यते शत्रून यः स रावणः" जो प्रतिपक्षी दलों को अपने बल पराक्रम से रुलाता है उसे 'रावण' कहा गया।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भुशुण्डि रामायण में पात्रों के कर्म के अनुरूप नामों में औचित्य दर्शनीय है। युगों–युगों से जो कथा भारतीय जनमानस में प्रसिद्ध रूप के दर्शनीय रहती है और बार–बार दोहराई जाती है साथ ही जिसका प्रयोग जन–जीवन में लोक व्यवहार से लेकर आध्यात्मिक व्यवहार क्षेत्र तक किया जाता रहता है। उस कथा के पात्रों के नाम अपने आप में ही औचित्य ही रखते हैं।

---

[50] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड 16/1–11
[51] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड 43/22

ङ– आशीर्वाद औचित्य

मानव सुख एवं समृद्धि की प्राप्ति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है। इन सुखों की प्राप्ति के लिए वह सदैव अपनी बुद्धि एवं प्रतिभा का प्रयोग करता है। एक ओर मानव ने विज्ञान के सहारे विभिन्न प्रकार के भौतिक सुख प्राप्त कर लिए हैं, तो दूसरी ओर आध्यात्मिक सुख पाने हेतु उसने अपने बड़ों एवं गुरुओं के आशीर्वाद को भी बड़ी ही आत्मीयता से ग्रहण किया है। मानव अपने श्रद्धाभाव एवं सेवा से अपने गुरुजनों को सदैव प्रसन्न करता रहा है और गुरुजनों की प्रसन्नता का परिणाम मानव की सुख–समृद्धि ही होता है। बड़ों से आशीर्वाद प्राप्ति की महिमा हमारे शास्त्रों में विद्यमान है। हमारी भारतीय संस्कृति तो इसका अभिन्न अंग हैं। बड़ों के आशीर्वाद की महिमा का इस श्लोक में बहुत ही सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है।

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।।[52]

अर्थात् वृद्धों की सेवा और अभिवादन से अभिवादनकर्ता के यश, बल, विद्या तथा आयु में वृद्धि होती है।

आशीर्वाद का फल असन्दिग्ध है। यह किसी भी अवस्था में व्यर्थ में नहीं जाता है आशीर्वाद का सामान्य अर्थ हम बड़ों के द्वारा प्रदत्त छोटों की मंगलकामना से लगाते हैं। जब छोटे अपने से बड़ों के प्रति श्रद्धाभाव रखते हैं तो बड़े भी उन पर प्रसन्न होकर उनकी मंगलकामना करते हैं, इससे छोटों को अपने कार्यों में सफलता प्राप्त होती है। अतः यह सत्य है कि व्यावहारिक जीवन की सफलता के लिए आशीर्वाद की अत्यन्त आवश्यकता होती है। इसी प्रकार काव्य में भी आशीर्वाद का अपना विशेष महत्व हैं। आशीर्वाद के उचित प्रयोग से काव्य में चारुता आ जाती है।

आशीर्वादौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण –

आशीर्वादौचित्य को आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्वरचित ग्रन्थ (औचित्यविचारचर्चा) में इस प्रकार स्पष्ट किया है – "सभी प्रकार के अर्थ की पूर्णता से विद्वानों को प्रसन्न करने वाला काव्य उसी प्रकार प्रतिष्ठा प्राप्त करता है जिस प्रकार आशीर्वाद से कोई राजा कीर्ति को प्राप्त करता है।"[53]

---

[52] मनुस्मृति

[53] पूर्णार्थदातुः काव्यस्य सन्तोषितमनीषिणः।
उचिताशीर्नृपस्येव भवत्यभ्युदयावहा।। औचित्यविचारचर्चा कारिका–39

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरण –

आचार्य क्षेमेन्द्र ने आशीर्वादौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु स्वरचित 'वात्स्यायनसूत्र सार' का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है।

कामः कामं कमलवदनानेत्रपर्यन्तवासी,
दासीभूतत्रिभुवनजनः जायतां वः।
दन्धस्यापि त्रिपुररिपुणा सर्वलोकस्पृहार्हा,
यस्याधिक्यं रुचिरतितरामञ्जनस्येवयाता।।[54]

"कमल वंदनाओं के नेत्रों में निवास करने वाला एवं तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने वाला कामदेव आप सभी के लिए प्रीति प्रदान करे।"

प्रस्तुत उदाहरण में 'काम जो आप सभी की प्रीति हो' भस्म होने पर भी उसकी क्रान्ति अंजन के समान कमनीय है। इन कथनों में सर्वथा औचित्य है।

प्रत्युदाहरण – आशीर्वादगत अनौचित्य के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य क्षेमेन्द्र ने अमरुक का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है –

आलोलामलकावलीं विलुलितां बिभ्रच्चलत्कुण्डलं,
किञ्चिन्मृष्ट विशेषकं तनुतरैः स्वेदाम्भसां सीकरैः।
तन्वङ्गयाः सुतरां रतान्तसमये वक्त्रं रतिव्यत्यये,
तत्त्वां पातु चिराय किं हरिहरस्कन्दादिभिर्दैवतैः।।[55]

"विपरीत रमणकाल में इधर–उधर बिखरे हुए चञ्चल केश समूह को धारण करने वाला, चञ्चल कुण्डलों से सुशोभित, शरीर के श्रमजन्य पसीने की बूँदों से कुछ–कुछ धूमिल तिलक से अलंकृत, रतिक्रीड़ा की समाप्ति के अवसर पर कृशांगी का जो मुख है वह बहुत दिनों तक आप सबकी रक्षा करें। हरि, हर तथा स्कन्द आदि देवताओं से क्या लेना–देना?

इस श्लोक में विपरीत रमण के समय हिलते हुए बालों से अलंकृत, पसीने की बूदों से कुछ कुछ पूछे हुए तिलक बाल तन्वङ्गी का जो मनोहर मुख है, वह आपकी रक्षा करें। हरि, हर तथा कार्तिकेय आदि देवताओं से क्या मतलब? इस कथन में 'त्वांपातु' तुम्हारी रक्षा करे' वह जो कहा गया है यह अनुचित है। इसके स्थान पर त्वाम् आनन्दयतु 'तुम्हें आनन्दित करें' यह कहना उचित होता।

भुशिण्ड रामायण में आशीर्वादगत औचित्य–

आशीर्वाद किसी व्यक्ति के मुख से निसृत वह कथन है जो किसी दूसरे व्यक्ति के कल्याण के लिए कहा जाता है उसी प्रकार काव्य जगत में भी इसकी

---

[54] वही, पृ0 244
[55] औचित्य विचार चर्चा (245)

महत्ता निर्विवाद है। काव्यों में उचित स्थान पर प्रयुक्त आशीर्वाद अत्यन्त शोभावर्धक बन जाता है। आशीर्वाद व्यक्ति की आवश्यकता के अनुरूप होना चाहिए। ऐसा न होने पर काव्य में अनौचित्य आ जाता है।

भुशुण्डि रामायण में कई स्थलों पर इसका स्वाभाविक सौन्दर्य को परिलक्षित किया जा सकता है। वन को जाते समय ब्राह्मणों द्वारा राम को दिया गया आशीर्वाद, चारों भाइयों को विवाह के समय ब्राह्मणों द्वारा दिया गया आशीर्वाद, वन जाते हुए अनुसूया द्वारा सीता को दिया गया मांगलिक आशीर्वाद आदि स्थलों में औचित्य दर्शनीय हो रहा है। यहाँ हम कुछ उद्धरणों के माध्यम से भुशुण्डि रामायण में आशीर्वाद औचित्य पर एक सूक्ष्म दृष्टि डालते हैं।

वन गमन के समय ब्राह्मणों द्वारा प्रदत्त आशीर्वाद–

वने त्वामनुयास्यामस्त्वद्गुणैर्विश्वमंगलेः।
आकृष्टचित्ताः स्थास्यामो नैवात्र नगरे वयम्।।
साम्राज्यदीक्षालब्धानि सितछत्राण्यमूनि नः।
तव त्यक्तातपत्रस्य छायार्थ बिभृमो वयम्।।
यथा राजकुमार त्वामंगे कमलकोमलम्।
मध्यंदिनार्कविद्योतो न ग्लापयति दुःसहः।।
धर्मोऽयमेव चास्माकं त्वयि धर्मभिरक्षके।
नो चेद् वृद्धैर्द्विजैः पौरैयच्यिमानः प्रजाहितः।।[56]

इस प्रकार वन के दुर्गम स्थलों पर जाते हुए ब्राह्मणों द्वारा प्रदत्त आशीर्वाद उचित एवं उपयोगी है।

विवाह के समय ब्राह्मणों द्वारा प्रदत्त आशीर्वाद–

राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघन चारों भाइयों के विवाह के समय ब्राह्मणों द्वारा दिया गया आशीर्वाद कितना उचित है।

पुनः प्रस्थानसमये सुमहान् मंगलोत्सवः।
अभूद्राघवर्यस्य वरवध्वति मंगलम्।।
विवाहमंगले पीतवस्त्र वेशादिभूषिताः।
रामलक्ष्मण शत्रुघ्नभरता रेजिरेतराम्।।
शंखदुन्दुभिभेरीभिः पणवानकगोमुखैः।
अन्यैमंगिलिकैर्वाद्यैः स शब्दः सुमहानभूत।।
बिभानावलिभिर्व्योम देवैः कौतुकसंगतैः।
सिद्धविद्याधराद्यैश्च व्याप्तमासीत् समन्ततः।
मंगल सुनहत्तत्रनरनारीगणेष्वभूत्।
सीतारामौ शुभाशीर्भिब्रह्मिणाः समापोषयन्।।[57]

चारों कुमारों का विवाह

विवाह के समय ब्राह्मणों द्वारा दिया गया आशीर्वाद कितना सुन्दर एवं उपयोगी है निश्चय ही आदर्श भारतीय नारी के लिए उसकी दाम्पत्य जीवन की कुशलता ही सर्वोपरि होती है। सीता और राम के साथ सभी भाइयों को प्रदत्त आशीर्वाद से बढ़कर क्या आशीर्वाद हो सकता है। **'इतिसत्यमऽस्ति गुरूप्रसादो हि महातपः फलम्'** ।

वन में अनुसूया द्वारा प्रदत्त आशीर्वाद–

वनवास के समय सीता जब अनुसूया के आश्रम में पहुँचती है अनुसूया उसका उचित सत्कार करती है। वे सीता को विभिन्न प्रकार के आभूषणों और योगों को प्रदान करती है उन्हें मांगलिक आशीर्वाद देती हुयी कहती है कि ये दिव्य आभूषण तुम्हें सर्वत्र सुख प्रदान करेंगे।

अङ्गराममिमं धृत्वा स्थाङ्गगेषु जनकात्मजे।
न ग्लास्यति समं पत्या यान्ती सुमहतः पथः।।
न ते सूर्यकरा देहं ग्लापयिष्यन्ति वर्त्मनि।
छायायामिव गच्छन्त्याः सुखं भूरि भविष्यति।।
न ते रक्षोभवा बाधा तिष्ठन्त्या यत्रकुत्रचित्।
भविष्यति महाराजवध्वा अप्यद्यदुर्गतेः।।
इमानि मत्पतेरस्य योगसिद्धस्य जानकि।
आश्रम प्रभवैः पुष्पैः स्रजस्ते विनिवेदिताः।।
इमाः सन्ततमम्लाना योगसिद्धिमयीस्रजः।
विनापि देवरं कान्तं नोद्वेगं कलयिष्यसि।।
मृगयार्थं हि गतयोरनजोः शून्य आश्रमे।
वसन्तीत्वं जनकजे बन्धुपूर्णेव मास्यसि।।
माणि स्वर्णमयान्येतान्यछान्या भरणानिते।
प्रयच्छामि सरोजाक्षि पत्युः प्रणयपुष्टये।।[58]

अनुसूया उनको आशीर्वाद के रूप में दिव्य वस्त्र और माला प्रदान करते हुए कहती हैं–

इदं ते वसनं दिव्यं प्रयच्छामि मनोरमम्।
यत्परीधाय तिष्ठन्ती न रक्षेधर्षयिस्यति।।
इदं पद्ममयी माला नित्यमम्लानपद्नजा।
इमां सीतेह्रदा धृत्वा न त्वां वह्निः प्रधक्ष्यति।।
भूविभूमिस्वरूपा त्वं जले जलमयी तथा।
बह्नौं वह्निमयी भूत्वा वायौ वायुस्वरूपिणी।।

---

[56] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 10/68, 69, 70, 71
[57] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 79/6, 7, 8, 9, 10
[58] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय (122/4–11)

व्योम्नि व्योममयी भूत्वा प्रवेशं समवाप्स्यति।
पंचतत्वमयी व्याप्तिर्मद्योगात्ते भविष्यति।।
दृष्टिवातातपादीनि निवसन्ती वनेष्वपि।
न त्वामुद्वेजयिष्यन्ति योगसिध्यान्वितामिव।।
भूयत्ते सर्वदा सौख्यं पत्या सह यथा सुखम्।
वसन्त्यनुद्विग्नमना भव कल्याणिनी सदा।।[59]

इस प्रकार अनुसूया द्वारा सीता को प्रदत्त दिव्य वस्त्र और दिव्य माला आदि उपयोगी वस्तुयें, उनके द्वारा प्रदत्त आशीर्वाद का बोध करा रहे हैं। जो समयानुकूल और औचित्यपूर्ण है।

अनुसूया सीता को भोजन बनाने के लिए दिव्य पात्र प्रदान करती है और आशीर्वाद देती है कि सभी कार्यों में सभी जगह परमेश्वर तुम्हारी सदैव रक्षा करे।

यं यमिच्छसि पाकंत्वं तमत्र निभालय।
परिवेक्ष्यमाणं भोक्ष्यन्ति सहस्त्रं कोटयो द्विजाः।।
अतिथिव्रतवत्यास्ते इयं वै व्रतसाधनम्।
विनाग्नि जल संयोगमन्नमत्रोपलप्स्यसे।।
गच्छन्ती प्रविशन्तीं च तिष्ठतीं विहितासनाम्।
सुप्तां प्रसुप्तां भवती रक्षन्तां देवतागणः।।
इन्द्रस्त्वांपुरतो रक्षेत्पृष्ठतोवह्निरेव च।
यम एकान्तगां रक्षेत् स्नान्तींवरुण एव च।।
प्रयान्तीं मारुतोरक्षेदीशत्वां पातु सर्वदा।
सर्वकार्येषु सर्वत्र त्वां रक्षेत् परमेश्वरः।।[60]

अनुसूया सीता को दिव्य पात्र प्रदान करते हुए कहती है कि यह दिव्य पात्र तुम्हारी इच्छा के अनुकूल बिना अन्न जल से हजारों ब्राह्मणों के लिए भोजन प्राप्त करा सकता है। अनुसूया उनको आशीर्वाद देती हुयी कहती है कि हे सीते चलते समय, बैठे हुए, सोते समय, जागते हुए देवतागण सदैव तुम्हारी रक्षा करें। इन्द्रदेव आगे से, अग्निदेव पीछे से, यम देव एकान्त स्थान में, वायु देव सब जगह तुम्हारी रक्षा करें। परमेश्वर तुम्हारी सभी कार्यों में सब जगह रक्षा करें।

इस प्रकार वन को जाते समय सीता को अनुसूया द्वारा दिया गया आशीर्वाद उचित है। क्योंकि वन में सीता को विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। अतएव उनके द्वारा दिये गये विभिन्न दिव्य वस्त्र, आभूषण और आशीर्वाद की सीता को आवश्यकता है। अतः भुशुण्डि रामायण के विभिन्न स्थलों में आशीर्वाद का उचित प्रयोग द्रष्टव्य होता है। जो औचित्यपूर्ण है।

---

[59] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय (122/11–17)
[60] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड, अध्याय (122/19–23)

अध्याय षष्ठ

अन्य औचित्यगत विधान

अन्य औचित्यगत विधान

(क) कथावस्तुगत औचित्य

कथा धातु से निर्मित कथा शब्द का साधारण अर्थ है 'वह जो कहा जाये' परन्तु वह सभी कुछ जो कहा जाये ,कथा नहीं कहलाता है। कथा का विशिष्ट अर्थ है किसी ऐसी घटना का वर्णन करना जिसका परिणाम निश्चित हो। संस्कृत अलंकारशास्त्रियों ने महाकाव्य की कथावस्तु के लिए यह निर्देश दिया है कि महाकाव्य की कथावस्तु ऐतिहासिक अथवा महापुरूष के जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए।

भुशुण्डि रामायण में कथावस्तुगत औचित्य–

भुशुण्डि रामायण की कथावस्तु में दोनों ही विशेषताएँ दृष्टिगत है। एक तो इसका ऐतिहासिक इतिवृत्त से सम्बद्ध है दूसरे उसमें महापुरूष ही नहीं अपितु मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्रीराम का दिव्य चरित समुपनिबद्ध है। काव्य का कथानक धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरूषार्थ से समुपनिबद्ध है। यह ग्रन्थ अनेक प्रकार के ऐश्वर्य, समृद्धि और चमत्कारों से परिपूर्ण है। इसमें अनेक रसों से युक्त सुख–दुःख की स्वाभाविक समुद्भूति विद्यमान है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। अतएव तत्कालीन सामाजिक मूल्यों का चित्रण भुशुण्डि रामायण में परिलक्षित होता है। भुशुण्डि रामायण की कथावस्तु चार खण्डों में विभक्त है। उसी के आधार पर हम यहाँ कथावस्तुगत औचित्य का प्रतिपादन प्रस्तुत कर रहें है।

इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न अतिशय प्रतापी समस्त गुण निधान दिव्यप्रकृति से युक्त भगवान राम इसके नायक हैं। लक्ष्मण, भरत, दशरथ आदि प्रमुख पात्र है। कौशल्या, सीता, कैकेयी, सुमित्रा आदि स्त्री पात्र हैं। भुशुण्डि रामायण की कथावस्तु औचित्य की दृष्टि से महत्त्व रखती है। ब्रह्मा के द्वारा अनुष्ठित यज्ञ में आये हुए देवताओं के द्वारा जब यह प्रश्न किया गया कि आप यह यज्ञ किस देवता के प्रसादनार्थ कर रहे हैं। तब वे प्रत्युत्तर में श्रीराम का नाम उनके अनेक गुणों को प्रस्तुत करते हे। ब्रह्मा जी कहते हैं कि पूर्वकाल में उन्होंने दिव्य जन्म कर्म का वृत्तान्त 'आदिरामायण' नामक रचना में बतलाया था और उसे ही हम समाधिस्थ होकर आपके समक्ष प्रस्तुत करते है। यहाँ देवताओं की जिज्ञासा पर ब्रह्मा प्रारम्भ में भुशुण्डि जी का परिचय देते है।

भुशुण्डि रामायण की कथावस्तु के प्रारम्भ में उसका उपक्रम और भुशुण्डि जी का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया वह उचित है। इसी प्रसंग में हनुमान से की गयी गरूड़ के द्वारा राम विषयक जिज्ञासा भी प्रस्तुत हुयी हैं। देवताओं की जिज्ञासा निवृत्ति के लिए भुशुण्डि के वृतान्त के पश्चात् ब्रह्मा राम के जीवन से सम्बंधित 'आदि रामायण' की कथा प्रारम्भ करते हैं।

इस कथावस्तु की प्रस्तुति की विधि सर्वथा उचित है। ब्रह्मा यह स्पष्ट करते है कि जब रावण के नेतृत्व में राक्षसों के द्वारा अत्यधिक अत्याचार से सभी लोग भयभीत हो जाते उस समय आकाशवाणी होती है कि सारस्वत कल्प के त्रेतायुग में अपने अंशो के सहित में दशरथ पुत्र राम के रूप में अयोध्या में अवतार लेकर पृथ्वी का भार उतारेंगे। उस समय देवगण भी पृथ्वी पर जन्म लेगे। ब्रह्मवाणी सत्य होती है। भुशुण्डि ने ब्रह्मा से सम्पूर्ण चरित्र को सुनाने की विधिवत प्रार्थना की। ब्रह्मा ने उन्हें बताया कि महर्षि बाल्मीकि ने यह चरित्र वर्णित किया है। उसे ही मैं समाधि संयोग से हृदय गम्य कर तुम्हे सुना रहा हूँ। यहाँ पर रचयिता ने महर्षि बाल्मीकि द्वारा विरचित रामायण के आधार पर इसकी कथावस्तु योजना प्रस्तुत की है। इसके पश्चात भगवान राम के अवतार का वर्णन हुआ है। भगवान राम के अवतार के समय में विविध प्रकार के समारोह का संयोजन कथावस्तु की दृष्टि से सर्वथा औचित्य पूर्ण है। इधर राम के नामाकरणादि संस्कारो का अनुष्ठान होता है उधर देवर्षि नारद लंका पहुचकर रामावतार के विषय में रावण से बतलाते हैं इससे कुपित होकर रावण समस्त विश्व में अत्याचार करता है उसके अत्याचारों से समस्त विश्व काँपने लगता है देवता गिरि कन्दराओं में छिप जाते हैं। इस समाचार को सुनकर महाराज दशरथ अपने पुत्रों की रक्षा हेतु उन्हें गुप्त रूप से सरयू पार कामिका वन में सुखित गोप के यहाँ भेज देते है। वहाँ वे गोप बालकों के साथ गायों को चराते हुए अनेक प्रकार की मनोरम क्रीडायें करते है। रावण को जब ज्ञात होता है तो वह उनके वध के लिए छद्म वेष में राक्षसों को वहाँ भेजता है। परन्तु राम उनका वध कर देते हैं।

इसी अंश में नारद का लंका जाना और रामावतार के विषय में रावण को बतलाना सभिप्राय है। नारद लंका इसलिए जाते है कि वे रावण को उकसा सके और अधिक अत्याचार के लिए प्रेरित करे। जिससे कि उसका पाप और बढ़ जाये और उसका समदोन्मूलन हो सके। इस कथा के अनुशीलन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस पर श्रीमदभागवत् का प्रभाव पड़ा है इसके प्रणेता ने श्री कृष्ण की तरह भगवान राम को अयोध्या से कामिका वन के सुखित गोप के यहाँ भेज दिया। राम, श्रीकृष्ण की तरह गोप बालकों के साथ क्रीड़ायें करते है। जिस प्रकार कंस श्रीकृष्ण के वध के लिए अनेक राक्षसो को भेजता है उसी प्रकार रावण भी राम और उनके भाइयों के वध के लिए राक्षसों को भेजता है। पूर्वखण्ड में राम का युवराज पद ग्रहण करना तथा दशरथ की तीर्थयात्रा वृत्तांत की कथा वर्णित है। दक्षिणखण्ड में राम वनगमन से लेकर सीताहरण तथा रावण वध के पश्चात पुनः अयोध्या आगमन की कथा वर्णित है। दक्षिणखण्ड के अन्तिम अध्यायों में वर्णित

अश्वमेघ अनुष्ठान, सीता का भूमि में प्रवेश तथा राम की दिव्यधाम यात्रा के साथ ही परम्परागत राम कथा समाप्त हो जाती है।

ग्रन्थ के पश्चिमखण्ड में जो प्रसंग मूलकथा में संक्षेप में अभिव्यक्त किये गये थे उसकी परिसमाप्ति के अनन्तर उनका विशद विवरण अथवा उनसे सम्बद्ध नये सूत्रों की उद्भावना आख्यान अवान्तर कथाओं आदि के रूप में प्रस्तुत की गई है। उत्तर खण्ड में ब्रह्मा के स्मरण करने पर महाकाल के आगमन से कथा प्रारम्भ होती है तथा उसको ब्रह्मा द्वारा अयोध्या जाकर स्वयं भगवान राम से नित्यधामगमन की प्रार्थना करने का आदेश, इसके पश्चात काल का अयोध्या आगमन, राम की काल से मंत्रणा, राम का काल को लीलासंवरण की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने के लिए अपनी माया शक्ति प्रसारण का निर्देश, राम द्वारा नित्य नैमित्तिक कर्मो का उपदेश, रामनवमी—जानकी नवमी व्रतानुष्ठान तथा महिमा। राम द्वारा अयोध्या तथा सरयू महात्म्य वर्णन, राम का अयोध्या वासियों को अपने साथ दिव्य विमानों से परमधाम ले जाने का आश्वासन राम का सरयूतटवर्ती आरामकुंज गमन तथा सीता एवं परिकरों सहित निवास, राम द्वारा दिव्यधाम गमन की घोषणा, राम का सीता, भ्राताओं, हनुमानादि सेवकों, प्रजा का कीट पतंगादि जन्तुओं सहित सरयू स्थान के अनंतर दिव्य विमानों द्वारा प्रमोद वन के लिए प्रस्थान। इसके अनन्तर ग्रन्थ की समाप्ति पर ब्रह्मा द्वारा ग्रन्थ की वक्ता—श्रोता—परम्परा तथा महात्म्य वर्णन किया गया है।

कथा के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक चारों ही खण्डों में अनेक मार्मिक स्थलों तथा मौलिक प्रसंगों का वर्णन किया गया है। कथावस्तु की योजना में प्रबन्धकार का यह कर्त्तव्य होता है कि वह कथावस्तु की योजना में मार्मिक प्रसंगों का चयन करें तभी उसका काव्य औचित्य पूर्ण होता है। शुष्क वर्णनों का प्रबन्धकाव्य में कोई स्थान नहीं होता है। राम कथा में अनेक स्थल मर्मस्पर्शी है। राम का अयोध्या त्याग और वनगमन, दशरथ का विलाप, चित्रकूट में राम और भरत मिलन, शहरी का आतिथ्य, भरत की प्रतीक्षा इन स्थलों का रचनाकार ने अत्यन्त विशद एवं मार्मिक चित्रण किया है जो सहृदय को ही अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। हम यहाँ कतिपय मार्मिक प्रसंगों का वर्णन कर रहे हैं। ग्रन्थ के दक्षिणखण्ड में रामवनगमन से लेकर दशरथ विलाप, राम ,सीता, लक्ष्मण सहित वनगमन भरत की आत्मग्लानि, सीता का विलाप आदि घटनायें हृदय को झकझोर कर देती है।

दशरथ का विलाप –

दशरथ के विलाप की अत्यन्त व्यथित ढंग से मार्मिक व्यंजना हुयी है। उनका विलाप सहृदय में शीघ्र ही करूणा का संचार कर देता है।

इत्थं विलप्य भूपालो गतासुखि तत्क्षणात्।
मूर्च्छितः पतितोभूमौ परित्यज्य नृपासनम्।।
कौसल्या च तथैवार्ता विलप्य करूणं बहु,

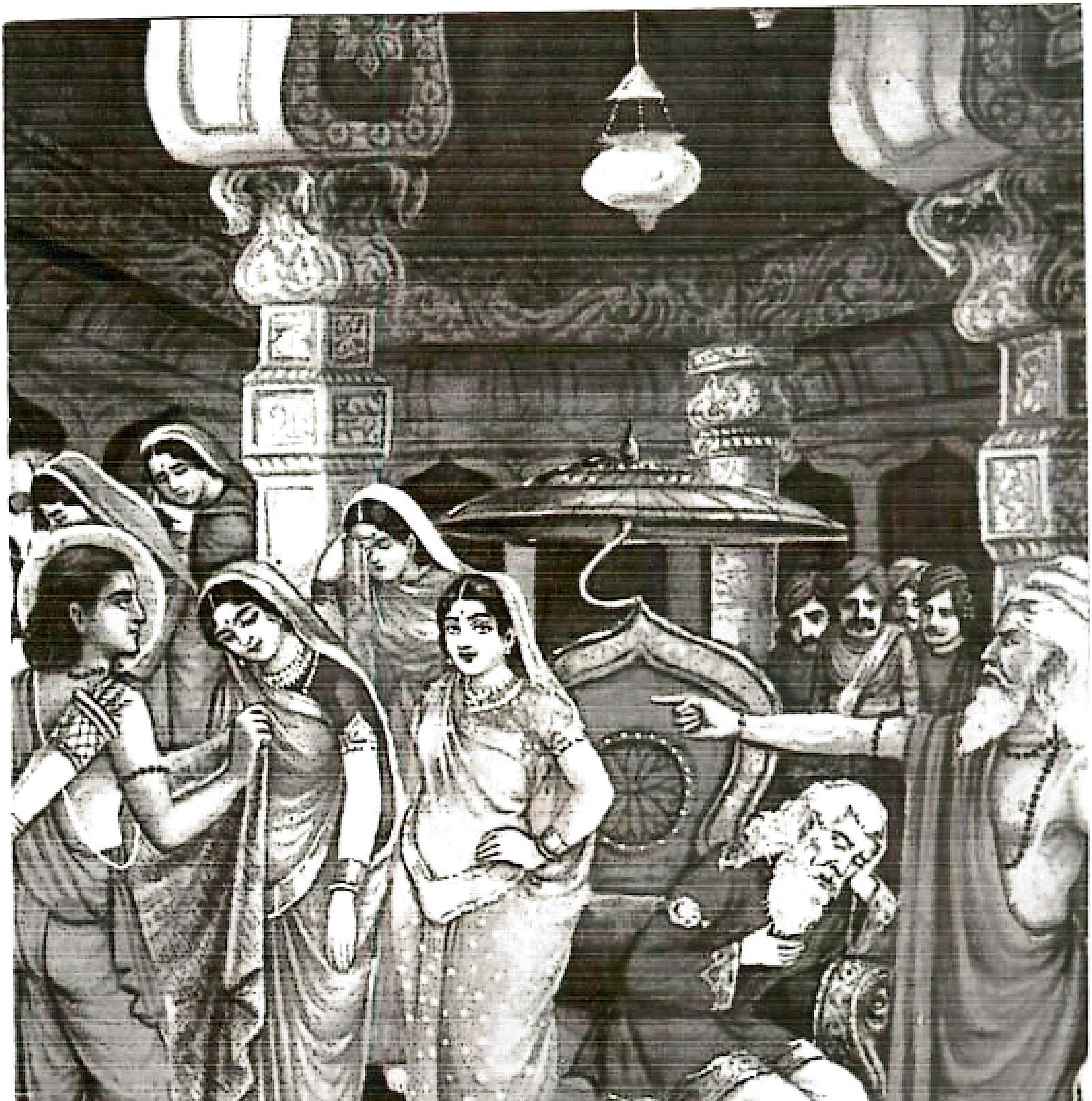

दशरथ विलाप

तप्यमानेन मनसा सुमुन्त्रमिदमब्रवीत् ।।
हा सुत मामपि क्षिप्रं तत्रैव नय कानने।
यत्र सौमित्रिसीताभ्यां सहितो रामचन्द्रमाः।।
तादृदकपुत्रवियुक्ताया धिङ्मे जीवन मीदृशम्।
अतो रथं समारोप्य नय मां रामसन्निधौ।।[1]

दशरथ विलाप करते हुए दुखी मन से सुमत्र से कहते है जहाँ मेरा पुत्र (राम) सीता, लक्ष्मण के साथ है मुझे भी शीघ्र वही वन में ले चलो। राम से अलग होकर रहना इस प्रकार के जीवन को धिक्कार है। अतः रथ को लाकर मुझे राम के पास ले चलो।

चित्रकूट में राम भरत मिलन –

चित्रकूट में राम और भरत का मिलन स्नेह का शील का और नीति का मिलन है। भरत की दशा देखकर सिद्ध और साधक लोग भी अनुराग से भर जाते हैं। भरत का राम के प्रति प्रेम सह्रदय को अनायास ही अपनी तरफ आर्कषित करता है। चित्रकूट में भरत और राम प्रसंग की झाँकी अत्यन्त ही मार्मिक एवं भाव पूर्ण ढंग से व्यंजित हुयी है।

राम वनगमन से दुःखी भाई भरत से राम इस प्रकार कहते हैं कि पुरूष श्रेष्ठ तुम पिता द्वारा प्राप्त राज्य का मत त्याग करो। इस पर भरत कहते हैं।

एवं सत्यधरोः रामः करिष्यति पितुर्वचः,
न निवर्स्यति धर्मात्मा तवोपयशतैरपि।।
को हि व्यावर्तयेदेनं सत्यसन्ध महाव्रतम्।

राम भरत को समझाते हुए कहते है कि जब तक मैं चौदह वर्ष तक वन में रहूँ तब तक तुम अयोध्या नगरी को देखो।

अहं वने निवत्स्यामि यावद्वर्षाश्चतुर्दश ।
ततो द्रक्ष्यामि नगरी मयोध्यामिनि में व्रतम।।

परन्तु भरत राम की आज्ञा को कर कहते है कि–

यदि कार्य पितुर्वाक्यं त्वया धर्मपरायण ।
अवश्य वन एवार्य निवत्स्यति तदा ब्रुवे ।।
अहमेव पितुर्वाक्याव् वनेवात्स्यामि धार्मिक।
स्वं राज्यमनुशाधि त्वं कुरूलोकमंगलम् ।।[2]

इस प्रकार अनेक प्रकार समझाने के बाद भी भरत नहीं मानते हैं। यह राम के प्रति उनका प्रेम है। अन्त में महर्षि वशिष्ठ के समझाने पर भरत राम की पादुका लेकर अयोध्या वापस आ जाते है और पादुका को सिंहासन पर प्रतिष्ठित

---

[1] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 21/10, 11, 12, 13
[2] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 43/14–21

करते हैं। इस प्रकार ग्रन्थ के दक्षिणखण्ड में कवि ने राम और भरत के मिलन का मर्मस्पर्शी औचित्यपूर्ण वर्णन किया है। जो कथानक की श्रेष्ठता को दर्शा रहा है। इन पंक्तियों में श्री 'राम' तथा 'भरत' इन दोनों चरित्रों को विशिष्ट गरिमा के साथ उठाया गया है, श्री राम 'नीति' के प्रतीक हैं और भरत 'भक्ति' के।

सीता हरण प्रसंग

भुशुण्डि रामायण में सीताहरण प्रसंग में भी औचित्य का पूर्णतयः निर्वाह हुआ है। कवि ने सीता हरण प्रसंग वर्णन में सीता का विलाप अत्यन्त ही कारूणिक रूप में प्रस्तुत किया है। जो प्रत्येक के सहृदय को शीघ्र द्रवीभूत करने में सहायक है।

हा नाथ हा रघुपते हा वीरवर हा पते।
क्वासि क्वासीति जल्पन्ती निमग्ना शोकसागरे।।
पुरस्तान्नीयमाना च तेन पापीयसा भृशम्।
पृष्ठतः परिपश्यन्ती मृगीव चकितेक्षणा ।।
हा पाप हा दुष्टमते हा रक्षोघम हा खल।
मुच्च मुञ्येति जल्पन्ती मुक्तास्थूलाश्रुमोक्षिणी।।
मज्जन्तीवान्धतमसि व्याकुलीभूतमानसा।
मुहुर्मुहुश्च मूर्छन्ती विलपन्ती मुहुर्मुहुः।।[3]

सीता का विलाप सहृदय के हृदय को विदीर्ण कर देता है। जो अनायास ही पाठक को अपनी ओर आकर्षित कर देता है। इस प्रकार कथानक में अनेक मर्मस्थलों का संगोपान चित्रण किया गया हे। इसके अतिरिक्त भी अनेक मार्मिक प्रसंग है जो सहृदय को अनायास ही प्रभावित कर देता है। कथानक की उद्देश्य पूर्ण समाप्ति भी औचित्य का बोध कराती है। कथा की उद्देश्य पूर्ति हेतु कवि का राम के द्वारा रावणादि राक्षसों का वध करना भी कथावस्तु के संयोजन की दृष्टि से सर्वथा औचित्य पूर्ण है। क्योंकि कथाकार की विशिष्टता उसके उद्देश्य की पूर्णता में है। कवि ने असत् पर सत् की विजय दिखाकर श्रेष्ठ कुशलता को सिद्ध किया है तथा सहृदयों को उपदेश दिया है कि **'रामादिवद्वर्तितव्यम् न रावणादिवत्।'** अर्थात् राम के समान आचरण करना चाहिए, रावण के समान नहीं, क्योंकि बुरे कार्यो का अन्त निश्चित है।

भुशुण्डि रामायण के कुछ मौलिक कथा प्रसंग– भुशुण्डि रामायण में कवि ने अनेक मौलिक कथाओं का वर्णन किया है। कतिपय कथा प्रसंग इस प्रकार हैं।

1. राम गीता महोपाख्यान– भुशुण्डि रामायण में राम गीता की योजना पूर्वखण्ड में है। इसके अन्तर्गत ब्रह्म राम द्वारा गोपियों को दिये गये भक्ति ज्ञानोपदेश का वर्णन है। ब्रह्मा की अवतार लीला के रसास्वादन के निर्मित्त सोलह हजार

[3] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 155/30, 31, 32, 33

दण्डकारण्यवासी मुनियों ने पूर्व योजनानुसार ब्रज प्रदेश में गोपी रूप में जन्म लिया। उन्होंने राम को वर रूप में प्राप्त करने के लिये घोर तप किया। उनमे नन्दन और राजिनी की पुत्री सहजा नन्दिनी सर्वप्रधान थी। गोपियों की निष्ठा से प्रसन्न होकर राम उन्हें सीता की आराधना कर उनके अंश के रूप में प्राप्त कर लेने का वचन देते है। सीता की आराधना से उन्हें राम की प्रमोदवन लीला में प्रवेश का अधिकार मिल जाता है। उनके दिव्य रासलीला का दर्शन करने के उद्देश्य से शिव कैलाश से अयोध्या आते है। किन्तु लीला योजिका गोपिका अनजाने में उनकी अवज्ञा कर देती है। जिससे रूष्ट होकर शिव उन्हें शाप देते है कि तुम लोग शीघ्र ही लीला विहारी राम के वियोग दुःख से पीड़ित हो जाओगे। राम आश्रिताओं को प्राप्त होने वाले कष्ट के लिये उनसे क्षमा याचना करते है। राम कहते है कि हे देव! आप का शाप मेरे अवतार कार्य की सिद्धि में सहायक होगा। अतः वह मेरी इच्छा के सर्वथा अनुकूल है। इसके अनन्तर वे गोपियों को संभावित वियोग जन्य दुःख से उद्धार का उपाय बताते हुए बोले, 'तुम लोग प्रत्यक्ष सम्पर्क के अभाव में भी मुझ से सहज ही तादात्म्य स्थापित कर सकती हो। प्रकृति पुरूष सब मैं ही हूँ। पूजा और ध्यान के द्वारा तुम मेरी नित्य लीला में अहर्निश लीन रह सकती हो। जो नित्यधाम परमानन्दमय है उसमें प्रवेश का अधिकार साधक मात्र को है। चाहे वह निर्गुणमार्गी संत हो या सगुणोपासक भक्त। यों तो पंच–भक्ति–भावों में से किसी भी एक का आलम्बन लेने से अक्षर धाम की प्राप्ति हो जाती है। किन्तु रसाध्यान सर्वाधिक सुगम साधन है। मेरी लीला सहायिका षोडश प्रमुख सखियों का आश्रय ग्रहण करने से लीला भेद तथा लीला रस का तत्त्वाज्ञान सहज सुलभ हो जाता है। रामगीता के इन तत्त्वपूर्ण उपदेशों से गोपियों के मानस नेत्र खुल गये और भावी वियोग से उत्पन्न उनकी चिन्ता दूर हो गयी।[4]

2. सीता जन्म कथा – भुशुण्डि रामायण में सीता जन्म की कथा साम्प्रदायिक मतानुकूल वर्णित है। मिथिला नरेश जनक की पुत्री सुनयना ने परम पुरूष की नित्य संगिनी सीता को पुत्री रूप में प्राप्त करने के लिए महालक्ष्मी की उपासना की। उनकी उपासना के फलस्वरूप महालक्ष्मी स्वयं चतुर्धा होकर चार पुत्रियों के रूप में वैशाख मास के शुक्लपक्ष में नवमी को अवतरित हुई। सुवर्ण हल के द्वारा यज्ञ वेदी के जोते जाने पर उसमें से निकले स्वर्ण कलश से सीता नवधाराओं (त्रिगुणा, कमलेशी, गंडकी, अद्रयवारिणी, द्युम्ना, द्योषवती, वनघोषा स्वयं लक्ष्मी और कौशिकी) में उत्पन्न हुई। उन्हीं के साथ उर्मिला, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति का भी आविर्भाव हुआ। सीता और उर्मिला मध्य में स्थित थी। माण्डवी सीता के बायें तथा श्रुतिकीर्ति दायें भाग में विराजमान थी। उस समय पृथ्वी ने साक्षात् उपस्थित होकर जनक से सीता का परिचय देते हुए कहा – ये स्वयं महालक्ष्मी है, जो चतुर्धा होकर आप के घर पर अवतरित हुई है। इनका नाम सीता है। मैं इन्हें आप को प्रदान करती हूँ। आप इनकी रक्षा करें। ये रसिकेन्द्र पुरूषोत्तम राम की प्रिया

---

[4] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 43/49

है। इसके पश्चात सीता के साथ उत्पन्न धारारूप नव सखियों ने राजा जनक को अपना–अपना परिचय दिया। सभी ने अपने को सीता की नित्य सखी बताया।[5]

3. दशरथ की तीर्थयात्रा – भुशुण्डि रामायण में दशरथ की तीर्थ यात्रा का अत्यन्त ही विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। यह वृत्तान्त रामायण के पूर्व खण्ड के 46 अध्यायों (101–146) में वर्णित है। भुशुण्डि रामायण में दशरथ की तीर्थयात्रा वृत्तान्त वर्णन सवर्था नवीन कथा वृत्तान्त वर्णन है। चारों पुत्रों के वयस्क हो जाने पर महाराज दशरथ राम को बुलाकर उनको राजकाज का भार सौंप कर सप्तदीपों की तीर्थ यात्रा करने की इच्छा प्रकट करते है। राम पर शासन का भार सौंप कर सेवकों, साधु–संन्यासियों तथा अन्य प्रियजनों की एक विशाल मण्डली के साथ सप्तदीपस्य तीर्थो का दर्शन करने के उद्देश्य से प्रस्थान करते है। उन्होंने सभी को काशी, मार्कण्डेय महादेव, प्रयाग, बद्रीनाथ, केदारनाथ, गलता, आदि तीर्थो का दर्शन और उनके महत्त्व को समझाया। उन्होंने ब्रज प्रदेश में राम द्वारा कृष्णावतार में की गयी समस्त मधुर लीलाओं एवं चरित्रों का वर्णन किया और लीला स्थलों का दर्शन कराया। बहुत दिनों तक वहाँ के तीर्थो का अवलोकन करते हुए वे पश्चिम और दक्षिण तीर्थो का पर्यटन करते है। और वहाँ के पुण्य स्थलों से होते हुए वे पूर्वोत्तर भारत में परशुराम का दण्डक क्षेत्र में दर्शन करने जाते है। इन समस्त तीर्थो में महाराज दशरथ को ब्रह्मा के रूप में राम का साक्षात्कार होता है। अन्त में वे रेणुका तीर्थ में स्नान करते हुए वटेश्वर होते हुए अयोध्या वापस आते है।[6]

4. मुनियों का लीला–रहस्य बोध – भुशुण्डि रामायण के दक्षिण खण्ड के चौथे अध्याय में मुनियों के लीला रहस्य बोध की मौलिक कथा प्रसंग प्राप्त होता है। मुनियों के साथ राम के सरयू नदी में स्नान करते हुए डुबकी लगाने पर उन्हें हरा–भरा प्रमोद वन दिखाई पड़ा। जिसमें एक कल्पवृक्ष है, उस वन के सरोवरों में राजहंस विहार कर रहे है। वहाँ रास रस उन्मत्त असंख्य गोपिकायें है और उनके मध्य में राम विद्यमान है। इस दृश्य को देखकर सभी मुनि आश्चर्य चकित हो जाते है। फिर वे सरयू में पुनः डुबकी लगाते है सिर बाहर निकालते ही पुनः वही दृश्य दिखाई पड़ता है। वे इससे आश्चर्यचकित हो जाते हैं। अन्त में उनको यह रहस्य समझ में आता है। सब एक स्वर में राम की भावपूर्ण स्तुति करते हैं। राम की रसमयी लीला का साक्षात् दर्शन करके वे सभी माया–मोह से मुक्त हो जाते हैं।

5. सरयू उत्पत्ति वर्णन – राजा जनक ने शुकदेव से सरयू की उत्पत्ति विषयक जिज्ञासा व्यक्त करते हुए उनके स्वर्ग से भूमण्डल पर आने का वृत्तान्त को बताने को कहते है। उनके समाधान के लिए शुकदेव उन्हें प्रस्तुत आख्यान सुनाते हैं– 'प्राचीन काल में राम के परात्पर–स्वरूप के विषय में मुनियों में परस्पर मतभेद हो जाता है। जिसका निराकरण करने के लिए बालवेशधारी तत्त्वज्ञ सनत्कुमार उनके पास आते है। मुनि उनसे पूछते हैं कि एक परात्पर ब्रह्म कौन है। जो मुनियों और

---

[5] भुशुण्डि रामायण पश्चिमखण्ड अध्याय 6/10

[6] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 101/144

देवताओं दोनों के लिए समान रूप से आराध्य एवं वरेण्य है। सनत्कुमार राम और उनकी पराशक्ति सहजानन्दिनी के रूप–गुण–लीला–धाम का सविस्तार वर्णन करते है। जिनको सुनकर ब्रह्मा, रूद्र, मुनि आदि सभी उपस्थित लोगों के नेत्रों से प्रेमवारि बहने लगती है। वही प्रेम जल एकत्र होकर एक सरोवर का रूप धारण कर लेता है। इसके अनन्तर उत्पन्न सरयू उस परम पुरूष से अपना नाम व उनके द्वारा प्रेरित कार्य को पूछते हैं। परम पुरूष कहते हैं कि राम के अगाध प्रेम सरोवर से तुम उत्पन्न हुये हो इसलिए तुम्हारा नाम सरयू है। तुम्हारे सहस्त्रों नाम हैं। तुम्हारे प्रेम जल में जो स्नान करेगा उसे राम पद प्राप्त होगा। इसलिए तुम अयोध्या नगरी जाकर वहाँ के निवासियों को तृप्त करो। भुशुण्डि रामायण में सरयू की उत्पत्ति की एक और कथा वर्णित है। सरयू नदी को महर्षि वशिष्ठ के द्वारा मनु की प्रार्थना पर घोर तपस्या कर भूमण्डल पर लाया गया। उसके पुण्यजल में स्नान करके सभी भूलोकवासी कृतार्थ हो गये।[7]

6. सहजोपाख्यान – भुशुण्डि रामायण में सहजा को सीता से अभिन्न राम की आह्लादकारिणी शक्ति माना है। राम उनके साथ नित्य विहार लीला करते है। प्रस्तुत ग्रन्थ में सहजा चरित्र का विस्तार से वर्णन किया गया है। पूर्वखण्ड के 81 से 84 तक तथा पश्चिम खण्ड के 53 से 66 तक के अध्यायों से सहजा वृत्तान्त निरूपित है। सहजा का जन्म नन्दन नामक गोपेन्द्र तथा राजिनी के यहाँ हुआ था। जन्म के समय उनका रूप, वय, शील आदि सब सहज सरल था, इसलिये मुनियों के परामर्शानुसार उनका नाम सहजा रखा गया। उनका अभूतपूर्ण लावण्य था। कुछ बड़ी होने के पर उनकी सभी क्रिया शीलता अवरूद्ध हो गयी। वह न तो कुछ बोलती, न रोती और न ही खाती थी। एकदम जड़ी भूत अवस्था को प्राप्त हो गयी थी। शिव बटुका का रूप धारण कर सहजा देवी का दर्शन करने गोपराज नन्दन के पास पहुँचे। गोपराज ने उनका विधिवत् सत्कार किया और फिर अपनी कन्या की असामान्यवस्था निवेदित की। कन्या को देखकर शंकर जी मन्द–मन्द मन में अत्यन्त प्रसन्नचित होकर बोले, इस बालिका को मेरे पास थोड़ी देर के लिये छोड़ दे। उनके निर्देशानुसार वे बाहर चले गये। शंकर ने राम वल्लभा सहजेश्वरी की स्तुति की। तब सहजा ने उनको अपना वास्तविक रूप दिखाया। शंकर ने उनसे पूछा कि आप जड़ीभूत होकर क्यों रह रही हैं। तब वे कहती हैं कि बहुत दिन हुए न तो राम का दर्शन हुआ और न ही उनके साथ विहार का संयोग प्राप्त हुआ। उनके वियोग में मेरा मन जड़ित हो रहा है। आपके अनुरोध पर मैं माता–पिता को इस चिन्ता से मुक्त कर दूँगी। सहजा का किशोरावस्था का सौन्दर्य अत्यन्त आर्कषक एवं तेजोमय था। गोपेन्द्र ने उनके वर की प्राप्ति के लिए शाण्डिल्य मुनि को बुलाया। शाण्डिल्य मुनि, वर की तलाश करते हुए सुखित गोप के घर जाते है और राम के विवाह का प्रस्ताव करते है। राम और सहजा लोकाचार की दृष्टि से वैवाहिक बन्धन में बँध जाते हैं।[8] सहजा राम की पराशक्ति हैं। वे रमा, लक्ष्मी, सीता आदि से अभिन्न हैं। प्रमोदवन लीला में वे राम के साथ

---

[7] भुशुण्डि रामायण पश्चिमखण्ड अध्याय 35 / 39

[8] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 81 / 84

सर्वदा विहार करती है। उनका स्वेच्छया आविर्भाव –तिरोभाव होता है। संसार की सुख शांति उन्हीं की इच्छा पर निर्भर करती है। भुशुण्डिरामायणकार ने इस प्रकार शृंगारी राम भक्ति धारा का माधुर्य लीला का जो स्त्रोत प्रवाहित किया वह परवर्ती शृंगारी राम भक्ति धारा का संबल बन गया। सहजा का रामचरित में वही स्थान है जो कृष्ण लीला में राधा का है। भेद इतना है कि रामावतार में मर्यादा की प्रधानता होने से दिव्यधाम लीला में ही वे राम की नित्य संगिनी के रूप में चित्रित की गयी। व्यवहारिक अथवा लोकलीला में सीता को ही प्रमुखता दी गयी है।

7. पादुका–राज्य व्यवस्था – भुशुण्डि रामायण में भरत द्वारा स्थापित 'पादुकाराज्य' का विशद एवं अत्यन्त रोचक वर्णन किया गया है। पादुका के शासनकाल में घटित तीन–चार घटनाओं का उल्लेख यह प्रमाणित करता है कि भरत ने राम पादुका के प्रभाव से निर्विघ्न तथा कल्याणकारी शासन स्थापित किया है। भरत जब चित्रकूट से राम को वापस लाने में असमर्थ हो जाते है तब वे विवश होकर राम की पादुकाओं को लेकर अयोध्या वापस लौट आते हैं। राम की पादुकाओं को सिंहासन पर रखकर वे स्वयं नंदीग्राम में तपोमय जीवन व्यतीत करते हैं। और राज्य संचालन का समस्त कार्य पादुकाओं का आदेश लेकर ही करते हैं। एक समय राज्य में अतिवृष्टि से समस्त प्रजा दुःखी होकर भरत के पास आती है। तब भरत कहते हैं कि इस समय पादुका का राज्य है उन्हीं से आप दुखों का निवेदन करें। प्रजाजन राम की पादुकाओं की गलदश्रु स्तुति करते है। उनकी प्रार्थना से मूसलाधार वृष्टि तत्काल ही रूक जाती है और सम्पूर्ण प्रजा आनन्दित हो उठती है। इसी प्रकार एक बार अनावृष्टि के कारण भी अकाल पड़ जाता है। सम्पूर्ण प्रजा पुनः पादुकाओं की स्तुति करते है। उसी समय आकाशवाणी होती है कि आप लोग शीघ्र ही संताप–मुक्त हो जायेंगे। शीघ्र ही वर्षा होगी। कालान्तर में मूसलाधार वर्षा होती है और प्रजा संकटमुक्त हो राम–पादुकाओं की अपार महिमा का गुणगान करते हैं। इन प्राकृतिक विपत्तियों से अयोध्यावासियों का उद्धार करने के अतिरिक्त एक बार अयोध्या को आक्रमणों के भीषण अत्याचार से भी पादुकाओं ने रक्षा की। एक बार एक विप्र की गाय चोरी हो जाने पर वह पादुकाओं के समीप आकर करूण विलाप करता है। शत्रुघन उन चोरों का पता लगाते हैं। वह देखते है कि उन चोरों को किसी अज्ञात पुरूष द्वारा बन्दी बना लिया गया है। सभी चोरों को बँधा हुआ देख, शत्रुघन उनसे पूछते हैं कि तुम्हें किसने बाँधा है? वे कहते हैं कि चार भुजाओं वाले, कान में मकराकृत कुण्डल, किरीट और वन माला धारण किये हुए शंख–चक्र–गदा से सुशोभित एक श्यामलांग पुरूष ने हमें बाँधा है। राम पादुकाओं के प्रभाव एवं महिमा को सुनकर रावण तथा वाणासुर ने उन्हें चुरा लेने का निश्चय किया। इस उद्देश्य से दोनों एक दिन रात्रि में चुपके से भरताश्रम आते ही उन्होंने बहुत प्रयत्न किया परन्तु पादुकाओं को नहीं चुरा सके।[9] इस प्रकार पादुका राज्य की सुव्यवस्था तथा समृद्धि का वर्णन करके कवि ने राम

---

[9] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 47 / 58

पादुकाओं के माहात्म्य और कौशल राज्य की शासन व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। इनके अतिरिक्त कुछ मौलिक कथाओं की संक्षेप में प्रस्तुति इस प्रकार है –

1. अभिशप्त ब्राह्मण सुनीथ का उद्धार (भुशुण्डि रामायण पूर्व खण्ड, अध्याय 20)
2. सरयू स्नान करते हुए लुप्त दशरथ का राम द्वारा वरूण लोक से आनयन (भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 62)
3. सीता का पक्षी के द्वारा राम के पास प्रणय संदेश एवं चित्र भेजना (भुशुण्डि रामायण ,पूर्वखण्ड अध्याय 64)
4. समुद्र मंथन और विष्णु का मोहिनी रुप (भुशुण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड अध्याय 94)
5. सहस्त्रार्जुन द्वारा रावण का बाधा जाना (भुशुण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड अध्याय 106)
6. कालदामनोपाख्यान (भुशुण्डि रामायण, उत्तरखण्ड अध्याय 49)
7. राम द्वारा लक्ष्मण को परालीला का उपदेश (भुशुण्डि रामायण, उत्तरखण्ड अध्याय 51)
8. राम का लीला संवरण (भुशुण्डि रामायण, उत्तराखण्ड अध्याय 52)

इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि भुशुण्डि रामायण में विविध घटनाओं एवं मौलिक प्रसंगो का पूर्ण सामंजस्य होने से सम्बन्ध निर्वाह बना रहता है। जो कथावस्तु के विधिवत्त स्वरूप को दर्शाता है। यदि किसी भी महाकाव्य में सम्बंध निर्वाह नहीं होता है, तो इससे प्रबन्धतत्त्व में बाधा पहॅचती है। कवि ने विविध मार्मिक एवं मौलिक प्रसंगों की प्रस्तुति अत्यन्त प्रभावपूर्ण एवं रोचक शैली में चित्रित की है। मानव ह्रदय के अपरिमित भावनाओं की प्रस्तुति रामायण में हुयी है। किसी भी जाति, वर्ग एवं देश का व्यक्ति जो यत्किंचित भावुक होगा। वह इन सब ह्रदय स्पर्शी चित्रणों से तदात्म्य स्थापित करके उससे निकटता अवश्य ग्रहण करेगा। इसकी कथावस्तु में परम्परागत अनेक प्रसंगो में यथावसर महत्त्वपूर्ण अन्तर दृष्टव्य होता है। जो कवि के स्वभाव एवं सामाजिकों के भीतर उसकी गहनतम अभिव्यक्ति का बोध कराते है। ये प्रसंग नवांकुर पाठकों को विस्मय एवं विमुग्ध कर देते हैं।

एक कुशल कथाकार की श्रेष्ठता इसमें होती है कि उसकी कथा उद्देश्यपूर्ण हो। वस्तुतः जो रचनाकार आरम्भ से अन्त तक कथा को महान उद्देश्यों से पूर्ण बनाता है। वही कथा में औचित्य के उचित प्रयोग को दर्शाता है। भुशुण्डि रामायण में कवि ने आरम्भ से अन्त तक कथा को महान उद्देश्यों से पूर्ण

वर्णित किया है। रचयिता ने कथा को उदात्त रूप प्रदान किया है। यही कारण है कि इस कथा में सर्वत्र औचित्य विद्यमान है।

ख– चरित्र चित्रणगत औचित्य–

कथावस्तु के संयोजन में चरित्र–चित्रण विशिष्ट स्थान रखता है। सहृदय कवि अपने इतिवृत्त में विशिष्ट पात्रों के द्वारा अपनी उदात्त संरचना को प्रस्तुत करता है। यद्यपि पुरातन साहित्य में प्रायः इतिवृत्त को प्रमुख स्थान प्राप्त था। परन्तु चरित्र–चित्रण को विशेष स्थान प्राप्त नहीं था। चरित्र मानव जीवन का प्रधान अंग है। किसी भी व्यक्ति का मूल्यांकन उसके चरित्र के द्वारा ही किया जा सकता है। कवि अपने काव्य में पात्रों के चरित्र–चित्रण में विशेष ध्यान रखता है। 'काव्य' कवि के मन की अभिव्यक्ति है और 'पात्र' कवि का प्रतिरूप।

पुराण काल में कथावस्तु के संयोजन में विशेष ध्यान दिया जाता रहा है। वस्तुतः उसका प्रमुख उद्‌देश्य वस्तु चित्रण था। इसीलिए वह उसी ओर अधिक आकर्षित रहा। यद्यपि आपाततः जब भी कोई विशिष्ट पात्र वहाँ प्रस्तुत हुआ तो वहाँ उस पात्र का विशिष्ट चित्रण भी हुआ है। इस प्रकार पुराणों में आपाततः चरित्र–चित्रित हो गया है। पुराणों का चरित्र–चित्रण सहज स्वाभाविक एवं व्यवहारिक है। उसमें किसी प्रकार की भी कृत्रिमता नहीं है। जिन महापुरूषों का वर्णन उसमें किया गया है। उनके अलौकिक चित्र पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट करने में सर्वथा सक्षम है। उसमें विष्णु, राम, कृष्ण आदि अलौकिक स्वरूपों का वर्णन हुआ वे अलौकिक स्वरूप वस्तुतः अपने भक्तों को लुभाने वाले है।

पुराण साहित्य के पश्चात जो भी रचनायें हुयी है। उनमें कथावस्तु के साथ ही साथ चरित्र–चित्रण की विशेषताओं नें जन–मानस को अत्यधिक प्रभावित किया। फलस्वरूप काव्य में चरित्र–चित्रण को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया। सहृदय कवि अपने पात्रों के चरित्र चित्रण में प्रवृत्त होने लगे वे अनेक व्यापारों से अपने पात्रो के चरित्र–चित्रण को सुसज्जित करने लगे। सहृदय सामाजिक रसास्वादन के लिए काव्य मार्ग में प्रवृत्त होता है तथा नायक–नायिका का विकसित चरित्र ही रस निष्पत्ति में सहायक होता है । अतः रस निष्पत्ति की दृष्टि से भी काव्य में समुचित चरित्र–चित्रण आवश्यक है क्योंकि उसके बिना सहृदय सम्यक रसानुभूति नहीं कर सकता है । इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि एक सफल कवि के लिये काव्य में कलात्मक चरित्र–चित्रण का संयोजन सर्वथा अपेक्षित है काव्य में कलात्मक चरित्र चित्रण की दो प्रमुख विधायें हैं–

1. प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक शैली
2. परोक्ष या नाटकीय शैली

इन दोनों विधाओं के द्वारा कवि अपनी विलक्षण प्रतिभा से पात्रों के चरित्र को चित्रित करता है। जबकि दूसरी शैली के द्वारा पात्रों के वार्तालाप और उनके क्रिया कलापों के द्वारा कवि पात्रों के बाह्य और आन्तरिक व्यक्तित्त्व को उभारता है। उसके बाह्य चित्रणों में पात्रों की आकृति वेषभूषा, वार्तालाप, क्रियाकलाप आदि आते है। तथा आन्तरिक चित्रणों में संवेदन शीलता, उदारता, आन्तरिक मनोवृत्ति आदि के उभारने पर निर्भर करती है। जो पात्र उपर्युक्त गुणों से विभूषित होते हैं वे सहृदय के लिए गाह्य और श्लाध्य बन जाते हैं। उदाहरण के लिए रामायण कथा के प्रमुख पात्र राम अपनी विशिष्ट उपलब्धियों और योग्यताओं के द्वारा लोक में प्रशंसनीय है। इसके ठीक ही विपरीत रावण उपर्युक्त गुणों के अभाव में अपनी दुर्बलताओं के कारण लोक में निन्दनीय बन जाता है। सत्य ही कहा गया है

"वृत्तं यत्नेन संरक्षेद वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्तः क्षीणो वृत्तस्तुहते हतः।।"[10]

मानव जीवन की उत्तमता शारीरिक अथवा आर्थिक उन्नति से नहीं अपितु चारित्रिक उन्नति से होती है।

भुशुण्डि रामायण में चरित्र चित्रणगत औचित्य–

भुशुण्डि रामायण के प्रणेता ने चरित्र–चित्रण के प्रसंग में दोनों ही विधाओं प्रत्यक्ष तथा परोक्ष की अवतारणा की है। कवि जहाँ एक ओर पात्रों के बाह्य आकार–प्रकार के चित्रण मे सफल हुआ है, वहीं दूसरी ओर उनकी आन्तरिक मनोदशा का भी सम्यक वर्णन किया है। यदि एक ओर कवि ने नायक श्री राम का बाह्य चित्रण अनेक श्लोको में किया है तो दूसरी ओर कवि ने उनके संवेदनशील हृदय एवं अन्तःकरण के गाम्भीर्य का सम्यक चित्रण किया है।

भुशुण्डि रामायण के प्रणेता को चरित्र चित्रण कला में पूर्ण सफलता मिली है। प्रत्येक सर्ग में पात्रों, पात्रों के विभावों, अर्न्तवृत्तियों एवं अनुकूल प्राकृतिक तथा नागरिक उपादानों का सांगोपांग चित्रण हुआ है। भुशुण्डि रामायण चरित्र–चित्रण की दृष्टि से एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। ग्रन्थ के पात्र अपने चरित्र के कारण ही जन–जन के हृदय में प्रतिष्ठित है। मर्यादा पुरूषोत्तम राम जन–जन के हृदय में अपने चरित्र के कारण ही प्रतिष्ठित है। भ्रातप्रेम के प्रतीक भरत तथा लक्ष्मण एवं दास्य भाव के मूर्तिमान हनुमान, पतिप्रेम की साकार प्रतिमा सीता तथा अभिमान के प्रतीक रावण को कौन नही जानता ?

भुशुण्डि रामायण में कवि ने राम को परब्रह्म के रूप में चित्रित किया है। अतएव यहाँ पर उनके चरित्र में औचित्य को देखना मानों उन्हीं के गुणों को प्रदर्शित करना है। राम के चरित्र में सर्वत्र औचित्य दर्शनीय है। उनका सभी के प्रति समादर है। उनके चरित्र में नायक के सभी गुण विद्यमान है।

[10] महाभारत उद्योग पर्व 36/30

राम का अपने पिता के प्रति सादर भाव है। तभी तो वह राज सिंहासन का परित्याग कर वन के दुर्गम स्थलों पर जाना स्वीकार करते हैं। उन्हें लेशमात्र भी दुख नहीं हुआ कि उन्हें वनवास क्यों दिया जा रहा है। उनका माता–पिता, गुरू, पुत्र, पत्नी, मित्र, स्त्री, शत्रु, प्रजा सभी के प्रति उदार स्वभाव है। उन्होंने अपने कर्त्तव्य बोध द्वारा समाज के समक्ष जो सद्व्यहार प्रस्तुत किया वह आज भी अनुकरणीय है। अपने प्यारे राम के लिए जब माता कैकेयी दशरथ से दो वर के रूप में वनवास की याचना करती है। तो कैकेयी के इस कार्य की सभी अयोध्या वासी निन्दा करते हुए इस प्रकार कहते हैं–

कैकेयराजदुहितर्वरमर्थयन्त्या ईद्दग्विपाक विषमं विषहं विषामम् ।
तस्याः कथं नु ह्रदयं सहसा न दीर्ण किं वाश्मसारसमुदायमयं कठोरम्।।

परन्तु राम उनको दोषी नहीं मानते है। राम कहते है जैसा ईश्वर कराता है प्राणी वैसा ही करता है। सभी ईश्वर के आधीन है। माता कैकेयी द्वारा दिये गये वन गमन में भी ईश्वर का निश्चय ही कोई विशेष कार्य छिपा होगा। कैकेयी माता के प्रति राम का आदर भाव राम के आदर्श चरित्र को दर्शा रहा है। यदि कवि राम के चरित्र में इसके विपरीत आचरण की प्रस्तुति करता तो निश्चय ही राम के चरित्र का पतन होता है; क्योंकि विशिष्ट नायक का चरित्र उच्चतम आदर्शो वाला होना चाहिए जिसे व्यक्ति आत्मसात कर सके।[11]

राम के चरित्र की एक विशिष्टता यह है कि भारतीय संस्कृति के आदर्श नायक का जीवन परिहित परोपकार और प्रजा की सेवा के लिए समर्पित है वे अपनी प्रजा को प्रसन्न करने के लिए एवं आत्म बलिदान के लिए हर समय तैयार है। यह जानते हुए भी उनकी प्राणों से प्रिय सीता निर्दोष है तथापि वे प्रजा की भावनाओं का आदर करते है। उनके चरित्र में परिहित परोपकार की यह भावना आदरणीय है। भुशुण्डि रामायण के 94वे अध्याय में भगवान श्रीराम के अनेक प्रकार के गुणों का वर्णन हुआ है। इसमें राम के धर्म, सत्य, दया, क्षमा, सद्वृत्त, शील, धैर्य, गाम्भीर्य, शौर्य, तितिक्षा, शक्ति, उपरति, संयम, यम, नियम, त्याग, मर्यादा पालन, मैत्री, करूणा, उदारता, प्रजानुरक्ति, शरणागत वत्सलता, व्यवहार कुशलता, गुरू शुश्रुषा, नीतिज्ञता आदि अनेक आलौकिक गुणों का वर्णन हुआ है।

ते वर्णाः साधुवर्णाः किमपि रघुपते तत्पदं सत्पदारव्यम्,
तद्वाक्यं साधुवाक्यं तदुपनतपदार्थाश्च ते सत्पदार्थाः ।
बुद्धिः सा शाब्द बुद्धिस्तदुपरि निगमा आगमाश्च प्रमाणं,
यत्र श्रीरामनाम्ना तव खलु निहितं स्वात्मनः स्थानमुच्चैः।।[12]

---

[11] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 83/3, 4, 6
[12] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 94/39

इस सम्पूर्ण अध्याय में राम के आलौकिक गुणों का निरूपण हुआ है। राम का उदात्त चरित सभी जनों के द्वारा वंदनीय तो है साथ ही ऋषि–मुनि उनकी ब्रह्म और सच्चिदानन्द के रूप में उपासना करते है।

राम के चरित्र में पितृ भक्त एवं त्यागी स्वभाव दर्शनीय होता है। कैकेयी के द्वारा भरत को राज्य और राम को वनवास का यह वर माँग लेने पर भी राम के हृदय में कष्ट नहीं होता है। पिता की दशा को देखकर राम उनसे कहते हैं कि हे तात् आप शोक न करे। मुझे वन जाने की अनुमति प्रदान करे।

अपि तात कियत्कार्य मयि राज्याभिषेचनम्।
भवान् यस्यानुरोधेन सत्यमप्यति वर्तते ।।
न मे राज्ये स्पृहा राजन् नाहं तुष्यामि भोगतः।
कानने वा गृहे वापि समानं मम वर्त्तनम् ।।
दीयतां भरते राज्यं पाल्यतां सम्यभाषितम्।
मम् राज्येन कैकेयी मा विभर्त्तु रूषं हृदि।।
आह्यतां भरतो मातुलेभ्यः स शास्त्रुभूमिं नयर्घनिष्ठः ।
भवान् यथेच्छं श्रयतादात्मयोगं गृहं वनं वापि समानमेव।।[13]

राम की माता–पिता, गुरू, बंधु, स्त्री, पुत्र, मित्र, शत्रु, सेवक, प्रजा आदि के साथ उनका सहज सात्त्विक एवं उदार चरित्र सभी को समान्दोलित कर देता है। भुशुण्डि रामायण में स्वयं ब्रह्मा ने कहा है कि राम का दिव्य चरित्र मेरी करोड़ों जिह्वाओं के द्वारा भी वर्णित नहीं किया जा सकता है। उनका चरित्र अवर्णनीय है। उनका लोक स्वर्ग लोक से बढ़कर है। राम के उदार चरित्र से न केवल साकेतवासी अपितु सम्पूर्ण संसार के लोग प्रसन्न होकर उनके नाम की चर्चा और प्रशंसा करते है।

तव राम चरित्रेण नन्दितं सकलं जगत्।
भक्तः परमहंसाश्च श्रवणेन कृतार्थिताः।।
गायन्ति सुरनार्यश्च सुन्दरं विमलं यशः।
गङ्गाम्बुपावनं साक्षात् पीयूषौघप्रवर्षणम्।।
राम रामेति भवतो यन्नामश्रुति गोचरम् ।
तदेत शरणं लोके इदानीं निश्चितं प्रभो।।[14]

भुशुण्डि रामायण में राम के अलौकिक चरित्र का सम्यक चित्रण हुआ है। रचयिता ने राम के चरित्र को जिस औचित्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। वह सर्वथा उचित है।

धन्यास्ताः सरितो यासां तोयं पिबति राघवः।
अध्वश्रमपरिश्रान्तो या सु मज्जति स स्वयम्।।

---

[13] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 8/84, 49, 50, 51
[14] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 60/19, 20, 21

येषा फलानि सोऽश्नाति धन्यास्ते पादपा वने।
धन्यास्ते पर्वता येषु पद्भ्यां चरति राघवः।।[15]

रचयिता ने राम को परब्रह्म परमात्मा के रूप में चित्रित किया है। जो मानव रूप में अवतरित होते हैं। कविवर मैथिली शरणगुप्त ने राम के चरित्र की विशिष्टता बताते हुए कहा है "राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है। कोई कवि बन जाए सहज संभाव्य है।"

भरत

भुशुण्डि रामायण में भरत के चरित्रगत औचित्य को देखे तो हमें पता चलता है कि भरत की राम के प्रति अनन्य श्रद्धा है। वे माता–पिता और भाई के द्वारा प्रदत्त राज्य सुख का भोग नहीं करते हैं। मंत्रिगण भरत से राज्यपद ग्रहण करने का अनुरोध करते हैं। भरत भ्राता राम के प्रति अनन्य श्रद्धा रखते हैं। राम को तृण शैय्या के अवशेषों पर बैठा देखकर उनके नेत्रों में आँसू भर आते हैं। भरत कहते है कि मैं भाई राम को सेना सहित अयोध्या वापस कर दूँगा और स्वयं वन चला जाऊँगा। अभिषेक के लिए सभी वस्तु लाया हूँ। आप राज्य ग्रहण कर प्रजापालन के लिए अयोध्या लौटे और पिता के वचनों का पालन मैं करूँगा। भरत और गुरूजनों के निवेदन करने पर भी जब राम अयोध्या लौटने के लिये तैयार नहीं होते हैं तब भरत दृढ़तापूर्वक कहते है कि जब तक प्रभु श्रीराम कृपा नहीं करेंगे तब तक मैं निराहार और निर्जल रहकर यहीं सेवा में पड़ा रहूँगा। वे राम के चरणों में गिर पड़ते है। राम भरत को अपनी पादुका देते है। जिसे शिरोधार्य कर अयोध्या वापस आकर पादुकाओं को सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर उनकी सेवा में लीन रहते और नन्दीग्राम में वनवासी की तरह जीवन यापन करते है।

भूशायिनं ब्रह्मचर्यव्रत तत्परमानसम्।
जटाधरं भस्मलेपं चीवराजिनवाससम्।।
कुशास्तरणमास्तीर्य तिष्ठन्तंवल्कलावृतम्।
श्रीरामपादुका सेवातयाममनामयम् ।।
नन्दिग्रामकृतावासं व्रजवासिजने सहैः।।[16]

चित्रकुट में राम सहित सम्पूर्ण समाज मिथिला नरेश जनक, गुरु वशिष्ट ऋषि जन सभी भरत के विवेक की प्रशंसा करते है। वे राज्य में रह कर भी वनवासी की तरह जीवन व्यतीत करते है। इस प्रकार कवि ने चरित्र की जो प्रस्तुति की है वह सर्वथा उचित है। यदि भरत इसके विपरीत आचरण करते तो उनके चरित्र में अनौचित्य आ जाता। वस्तुतः कवि ने अपनी अभिधा शक्ति के द्वारा भरत के चरित्र की औचित्य पूर्ण प्रस्तुति की है।

---

[15] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 12/12. 15
[16] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 49/10, 11, 12

सीता

भुशुण्डि रामायण में सीता के चरित्र को देखे तो हमें ज्ञात होता है कि सीता परब्रह्म की आदिशक्ति से रूप में चित्रित हुयी है। वे भगवान राम की प्राण प्रिया अर्द्धांगिनी है। उन्हें लक्ष्मी का अवतार माना गया है। भुशुण्डि रामायण में राम और सीता में एक रूपता बतलायी गयी है।

"यथा रामस्तथा सीता तथा श्री सहजामता।।"[17]

सीता एक आदर्श भारतीय नारी की भाँति प्रत्येक परिस्थिति में अपने पति का अनुगमन करती है। राम के साथ वन जाने का निश्चय करती है। राम उनके समक्ष वनवास की कठिनाइयों का वर्णन करते हैं परन्तु वह विचलित नहीं होती है। सीता अपने पतिव्रत धर्म के लिए प्रचण्ड अग्नि में प्रवेश करती है और अपनी पवित्रता प्रमाणित करती है। उनकी अमृतवर्षिनी दृष्टि से युद्ध में मारे गये वानर जीवित हो जाते है। कवि ने उनके अलौकिक चरित्र की प्रस्तुति की है।

सीता का महाराज दशरथ, रानी कौशल्या आदि सभी माताओं के प्रति यथोचित सादर भाव है। अपने पति को कैकेयी के द्वारा वनवास दिये जाने पर भी वे क्रुद्ध नहीं होती है और शान्त भाव से प्रत्येक क्षेत्र में राम का अनुकरण करती है और सदैव बड़ो का आदर करती है। सीता का चरित्र अत्यन्त ही आकर्षक एवं प्रभावशाली है। उनके चरित्र की पवित्रता, उदारता, त्यागवृत्ति अभिनन्दनीय है। उनकी त्याग, धैर्य, तपस्या एवं संतोष उन्हें उच्चकोटि की प्रतिष्ठा दिला रहा है। उनका आत्म बलिदान इतिहास के स्वर्णाक्षरों में अंकित है। निरपराध होते हुए भी उन्हें बहुत ही कठोर दण्ड दिया जाता है। उन्हें भयंकर वन में निर्वासित कर दिया जाता है। उनका चरित्र सदैव अनुकरणीय रहेगा। उनके चरित्र की प्रस्तुति में भारतीय नारी की छवि द्रष्टव्य होती है। जो औचित्य पूर्ण चित्रण है। इस प्रकार हम देखते है कि भुशुण्डि रामायण में देवी सीता के चरित्र का औचित्यपूर्ण चित्रण प्राप्त होता है।

दशरथ

भुशुण्डि रामायण में राजा दशरथ के चरित्रगत औचित्य को देखे तो हमें ज्ञात होता है महाराज दशरथ एक आदर्श पिता है वह अयोध्या के राजा है। कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा उनकी तीन पत्नियाँ हैं। उन्होने पूर्वजन्म के अपूर्व सुकृत के द्वारा परब्रह्म राम को पुत्र के रूप में प्राप्त करने का सौभाग्य पाया। महाराज दशरथ अद्वितीय पराक्रमी, सत्यव्रती नृपति रत्न है। उनमें विनम्रता एवं सुशीलता का मणिकांचन योग है। पुत्र राम के प्रति उन्हे अपार प्रेम हैं उनका सत्यव्रत विश्वविश्रुत है। वे वृद्धावस्था में राज्य संचालन का भार सुयोग्य उत्तराधिकारी को सौंपकर शांतिमय जीवन यापन करना चाहते थे। राम के

---

[17] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड अध्याय 7/27

अलौकिक गुणों और ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण परम्परया राज्य के अधिकारी होने से उनके राज्याभिषेक की इच्छा करते है यद्यपि वे राजा है तथापि उन्होने इस महत्वपूर्ण विषय में मंत्रियो से परामर्श कर लेना उचित समझा और उनके सामने राम के राज्याभिषेक का प्रस्ताव रखा। मंत्रिपरिषद के अनुमोदन से राम के राज्याभिषेक की तैयारी प्रारंभ कर दी। राजा दशरथ के इस व्यवहार से उनकी मंत्रिपरिषद के प्रति सत्य आस्था प्रकट होती है। राम के राज्याभिषेक की तैयारी समय महारानी कैकेयी दशरथ से दो वर माँगती है। एक वर में अपने पुत्र भरत के लिए अयोध्या का राज्य माँगा और दूसरे वर में राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास। महाराज दशरथ को राम प्राणों से भी प्रिय है। कैकेयी के इन दो वर के माँगने पर महाराज दशरथ संताप, लज्जा और उद्वेग से व्यथित राजा दशरथ दुःखी होकर राम से कहते है।

शून्यं जगदिदं राम शून्याश्च सकला दिशः।
शून्या भू सदनं शून्यं प्राणदेन त्वया बिना ।।
स त्वं विहाय मां राम प्रस्थातास्यधुना वनम्।
नितान्तं जीवलोके मे तमोलिप्तो भविष्यति ।।[18]

परन्तु राम उनके सत्यव्रत की रक्षा के लिए वन जाने का निश्चय करते है। महाराज दशरथ अपने पुत्र राम के वियोग में प्राणों का परित्याग कर देते है। इस प्रकार महाराज दशरथ को एक आदर्श पिता के रूप में दिखाया गया है। वह केवल अपने पुत्रों पर ही वात्सल्यमयी प्यार नहीं रखते है। अपितु प्रजा को भी पुत्र की तरह प्यार करते है। उनके चरित्र में औचित्य का पूर्णतः निर्वाह हुआ है।

कौशल्या

भुशुण्डि रामायण में कवि ने कौशल्या के चरित्र को महाराज दशरथ की जेष्ठ पत्नी और राम की माता के रूप में चित्रण किया है। अपने पूर्वजन्म के अपूर्व सुकृत कर्मो के द्वारा राम जैसे पुत्र को प्राप्त करती है। कौशल्या अत्यधिक सुशील, उदार, दयालु, सात्विक, विनीत एवं पतिपरायण है। वह अपने प्रिय पुत्र राम के कार्यो से अत्यधिक प्रसन्न होती है। कवि ने राम के प्रति उनके अपार प्रेम को दर्शाया है। जब वे उनके वनवास की बात सुनती है तो वे वात्सल्य प्रेम के कारण अत्यन्त दुखी हो जाती है। परन्तु धीर स्वभाव के कारण कौशल्या न तो राम को वन जाने की आज्ञा देती है और न तो सत्यव्रती महाराज दशरथ के वचन को तोड़ने के लिए कहती है। वे अन्तर्मन से ही व्यथित होती है और अन्ततोगत्वा राम के वन जाने की विवशता को स्वीकार कर लेती है। दुखी महाराज दशरथ को वे धैर्य बँधाती है। महाराज दशरथ अत्यधिक खिन्न होकर उन्हें अंधतापस के श्रापवृत्तान्त को सुनाते है। कौशल्या, कैकेयी से द्वेष नहीं करती है। राम वनवास का कारण कैकेयी को नहीं अपितु दुर्भाग्य को ही कारण मानती है। निश्चय ही कवि ने कौशल्या के चरित्र को उचित रूप में प्रस्तुत किया है।

[18] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 8/62, 63

लक्ष्मण

कवि की लक्ष्मण के चरित्र की प्रस्तुति में औचित्य दर्शनीय है। लक्ष्मण राम के सहज अनुगामी एवं अनन्य भक्त है। कवि ने इन्हें शेषनाग का अवतार माना है। जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है।

एषः साक्षाध्दरेरंशो देवदेवस्य शाङ्गिणः।
यः शेष इति विख्यातः सहस्त्रवदनो विभुः।।[19]

लक्ष्मण को राम की दाहिनी भुजा के रूप में चित्रित किया गया है। जब माता कैकेयी के अनुरोध से राम वन को प्रस्थान करते है तब वे अपने भाई के साथ जाने को तुरन्त तैयार हो जाते है। राम उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि –

त्वं च तिष्ठ गृहे भ्रातर्मोदयन् सुहृदः सखीन्।
भोगांश्च भुञ्जन विविधान रममाणो यथोचितम्।।[20]

तब लक्ष्मण कहते है–

नैव गदितु मर्होऽसि त्वमार्य मयि सेवके।
यत्र त्वमसि तत्राहं वने वा भवनेऽपि वा।।[21]

राम की सेवा ही उनका परमकर्त्तव्य एवं व्रत है। वे राम के साथ विश्वामित्र के आश्रम जाते है और यज्ञ रक्षा में राम के सहायक होते है। इस प्रकार लक्ष्मण राम का प्रारम्भ से ही अनुगमन करते है। शिव धनुष के तोड़ने पर जब परशुराम राम पर क्रोध करते है तब लक्ष्मण उनका प्रतिवाद करते है। लक्ष्मण में सहज रूप से क्षत्रिय धर्म प्रतिबिम्बित हो रहा है। वे परशुराम के कटु शब्दों को सहन नहीं करते है। वे निर्भीक होकर क्षत्रियोचित ढंग से परशुराम के प्रत्युत्तर देते है। लक्ष्मण भ्रातभक्त है। वे राम की सेवा के लिए उनके साथ वन जाने को तत्काल ही तैयार हो जाते है। राम उन्हे बहुत समझाते है परन्तु वे किसी भी स्थिति में अयोध्या में उनके बिना नहीं रहना चाहते है। ऐसा उद्धरण विश्व में शायद ही कही मिलता हो जहॉं छोटा भाई अपने बड़े भाई की सेवा के लिए वन जाने को तत्पर हो जाते है। लक्ष्मण को अपने पिता के प्रति आक्रोश भी होता है कि उन्होने निरपराध राम को वन भेज कर पितृ धर्म के विरुद्ध आचरण किया। इस क्रोध का प्रमुख कारण भ्राता राम के प्रति अनन्य प्रेम ही है। लंका युद्ध में उनका अप्रितम शौर्य देखने को मिलता है। उनका चरित्र लोक के लिए अनुकरणीय है। इस प्रकार हम देखते है कि लक्ष्मण का चरित्र प्रस्तुत करने में कवि ने अत्यधिक सफलता को प्राप्त किया है।

---

[19] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड अध्याय 15/2
[20] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 9/107
[21] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड अध्याय 9/108

रावण

रावण के चरित्र चित्रण पर एक दृष्टि डाले तो हमें पता चलता है कवि ने रावण को प्रतिनायक के रूप में चित्रित किया है। उसके चरित्र को अत्यन्त पराक्रमी और अत्याचारी के रूप में चित्रित किया है। उसके अत्याचारों के द्वारा तीनों लोको में त्राहि–त्राहि व्याप्त हो जाती है। प्रचण्ड तपस्या करते हुए भगवान शिव के चरणों पर शीश चढ़ाकर असीम शक्ति प्राप्त कर उसने अपने अत्याचारों से समस्त विश्व को भयभीत कर दिया। देवगण उसके भय से कन्दराओं में छिपकर रहने लगते है। शिव की कठिन तपस्या करके भगवान शिव के सभी शास्त्रों में पारंगत होकर संसार में वेदाचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। कवि ने विद्याबल की तरह बाहुबल में भी उसकी श्रेष्ठता को दर्शाया। उसका बहुबल इससे सिद्ध होता हैं कि उसने कुबेर को भगाकर उसके राज्य लंका पर अपना अधिकार कर लिया और लंका का राजा रावण बन गया। इसके उपलक्ष्य में रावण ने व्योग गंगा के जल से भगवान शिव का अभिषेक कराया और उनकी पूजा में अनेक बार अपने सिर काट कर चढ़ा दिये। शिव ने वरदान देकर ब्रह्मादि देवों को उसका अज्ञानुवर्ती बना दिया। वर से दर्पित होकर रावण ने त्रलोक्य विजय का अभियान छोड़ दिया। पृथ्वी के सम्पूर्ण देशों को जीत कर उसने वहाँ अपने सहधर्मी राक्षसों को बसा दिया और सारे विश्व पर उसका अधिकार व्याप्त हो गया। शक्तिमद से उन्मत राक्षसों के उत्पात से विश्व थर–थर काँपने लगा। रावण के द्वारा भेजे गये नृशंस राक्षस ऋषियों को खा जाते जिससे तपस्वियों की हड्डियों से सम्पूर्ण भूमि व्याप्त हो गयी। दक्षिणापथ ब्राह्मणों से शून्य हो गया। रावण का समस्त विश्व पर अत्याचार बढ़ता गया। राम लक्ष्मण के द्वारा खर दूषण आदि राक्षसों के वध से क्रोधित रावण मारीच के सहयोग से कपटजाल के द्वारा सीता का अपहरण कर लेता है। मन्दोदरी विभीषण आदि के द्वारा समझाने पर भी सीता को मुक्त नहीं करता है। फलस्वरूप राम के साथ उसका घनघोर संग्राम हुआ। उसकी कामुकता, उद्दण्डता तथा कुप्रवृत्ति के कारण विशाल राक्षस सेना सहित कुम्भकर्ण और मेघनाद भी मारे जाते है और अन्त में अपने अहंकार के फलस्वरूप उसका राम के द्वारा वध किया जाता हे। वस्तुतः कवि ने रावण के चरित्र की प्रस्तुति की है वह प्रतिनायक की सभी विशेषताओं से युक्त है उसमें वह सभी विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती है जो एक प्रतिनायक में पायी जाती है।

भुशुण्डि रामायण में राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, राजा दशरथ, शत्रुघन, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, हनुमान सुग्रीव, अंगद, जाम्बन्त, विभीषण, बालि, रावण, कुम्भकरण, मन्दोदरी आदि का अपने चरित्र की दृष्टि से उचित वर्णन किया है। इन प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त इस रामायण में आने वाले अन्य पात्र भी हैं जो इस प्रकार है–

ब्रह्मा, भुशुण्डि, गरूड़, नारद, सुखितगोप, मांगल्या, इन्द्र, नन्दन राजनी, सहजानदिंनी, गोपिकायें, शिव, शुकदेव, महर्षि वशिष्ठ, जनक, सुनयना, विश्वामित्र, परशुराम, मंथरा, सुमन्त्र, निषादराज, भरद्वाज, जयन्त, अरून्धती, जाबालि, सहस्त्रार्जुन, पुलस्त्य, सुतीक्ष्य शूर्पणखा, खरदूषण, त्रिशिरा, मारीच, जटायु, शबरी, अगस्त, नल–नील, तारा, सम्पाती, अक्षय कुमार, शुकशारण, त्रिजिटा, घूमाक्ष, निकुम्भ, मकराक्ष, बाल्मीकि, लवकुश, पुष्कर, सबाहु, काल, दुर्वासा आदि अन्य पात्र भी है।

इन सभी पात्रों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि कवि ने विभिन्न पात्रों के चरित्र को प्रस्तुत करने में औचित्य का पूर्णतः पालन किया है।

वस्तुतः हम कह सकते हैं कि चरित्र–चित्रण महाकाव्य का एक प्रमुख तत्त्व है। महाकाव्य में व्यक्ति के जीवन की सर्वांगीण अभिव्यक्ति मुख्यतया विविध पात्रों के चरित्र चित्रण द्वारा ही संभव हो सकती है। इसलिए महाकाव्य में अच्छे–बुरे, ऊँच–नीच, स्वार्थी, परोपकारी, विद्वान, मूर्ख, धनी, निर्धन और विभिन्न प्रकृति के पात्रों की सृष्टि करते हैं। महाकाव्य का कर्त्तव्य होता है कि वह इन चरित्रो के माध्यम से मूर्ख पर विद्वान की, स्वार्थी पर परोपकार की, पाप पर पुण्य की, असद् पद सद की विजय दिखलाकर आदर्श की प्रस्तुति करे। भुशुण्डि रामायण में कवि ने पात्रों के विभावों अन्तवृत्तियों का सांगोपान चित्रण किया है। जो औचित्य के उचित प्रयोग को दर्शा रहा है।

ग– रीतिगत औचित्य

पदों के मेल या संगठन का नाम रीति है। रीति शब्द की निष्पत्ति 'रीङ्गतौ' धातु से "क्तिन"[22] प्रत्यय के प्रयोग से होती है रीति को वृत्ति भी कहते हैं। भिन्न–भिन्न लोगों की भिन्न–भिन्न रूचियाँ होती है। उन्ही रुचियों के अनुसार प्रवृत्तियों भी पृथक–पृथक हुआ करती है। ये प्रवृत्तियाँ अथवा रीतियाँ कुछ लोगों में भेदक तत्त्व का कार्य करती है। यही भेद लोगों को अनेक वर्गों बंगाली, गुजराती, मराठी आदि में प्रस्तुत करती है। कवियों में भी रूचिभेद स्पष्ट रूप से विद्यमान होता है। रूचि के अनुसार ही कवि ललित या कठोर रचना करता है। अपनी अभिव्यक्ति के लिए वह किसी विशिष्ट विधा का आश्रय लेता है। इसी विधा को रीति या शैली कहते है। पुरातन वाङ्मय में रीति के स्थान पर वृत्ति का ही प्रयोग प्रायः पाया जाता है। आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में वृत्तियों पर विचार किया है । काव्यशास्त्र में वृत्ति शब्द का प्रयोग रीति के अर्थ में हुआ है। वृत्तियों का सम्बन्ध रस के साथ प्रतिपादित हुआ है। वाग्देवतावतार आचार्य मम्मट के पश्चात वृत्ति और रीति का भेद समाप्त हो गया। रीतियों के प्रयोग में आचार्य कुन्तक कवि की प्रकृति को हेतु मानते है।[23]

आचार्य वामन रीति के सबसे अधिक प्रशंसक है वे रीति को काव्य के आत्मतत्त्व के रूप में निरूपित करते है।"रीतिरात्मा काव्यस्य"[24] वे विशिष्ट पद रचना को रीति मानते हैं– **"विशिष्ट पदरचनारीति"**[25] उन्होने वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली इन तीन भेदों मे रीति को निरूपित किया हैं। महर्षि वेदव्यास ने अग्नि पुराण में 'लाटी' नामक एक अन्य भेद को जोड़कर रीतियों की संख्या चार बतलाई है।[26]

महाराजा भोज ने अवन्तिका और मगधी नामक दो अन्य भेदों को प्रस्तुत कर रीति के वैदर्भी, गौड़ी,पांचाली, आवन्तिका, लाटी, मगधी ये छैः भेद निरूपित किये हैं।[27]

आचार्य भामह ने वैदर्भी और गौड़ी दो ही भेद बताये है। कविराज विश्वनाथ ने रीति के चार भेद निरूपित किये हैं–

"पद संघटना रीति रंगसंस्था विशेषवत् ।
उपकत्री रसादीनां सा पुनः स्यात् चतुर्विधा" ।।[28]

आचार्यो ने रीति को काव्य में शरीर के समान माना है। जिस प्रकार मानव शरीर का गठन होता है, उसी प्रकार काव्य के शरीर रूप शब्दों और अर्थो का भी

---

[22] अष्टाध्यायी, 3/94
[23] वक्रोक्ति जीवितम् (आचार्य कुन्तक) 2/102
[24] काव्यादर्श 1/40
[25] काव्यालंकार सूत्र वृत्ति 1/216
[26] अग्निपुराण, 339/1
[27] सरस्वती कण्ठाभरण 2/52
[28] साहित्य दर्पण 9/1

संगठन होता है। जिस प्रकार पुरूष या स्त्री की शरीर रचना देखने में माधुर्य, सौकुमार्य आदि गुणों का ज्ञान होता है, इसी प्रकार काव्य में माधुर्यादि गुणों का व्यंजन के द्वारा रसभाव आदि का उत्कर्ष होता है।

वैदर्भी रीतिः—

जहाँ माधुर्य व्यंजक वर्णो के द्वारा स्वल्प समास या समास रहित ललित रचना की जाती है। वहाँ वैदर्भी रीति होती है।

"माधुर्य व्यंजकैवर्णैःरचना ललितात्मिका।
आवृत्तिरल्पवृत्त्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।।[29]

वैदर्भी रीति की रचना माधुर्य व्यंजक वर्णो से होती है, वर्णो में "ट, ठ, ड, ढ इन वर्णो को छोड़कर जो वर्ण अपने वर्ग के अन्तिम अक्षर ञ,म,ङ,न से युक्त हो, वे ह्रस्वस्वर से युक्त र और ण माधुर्य के व्यंजक होते है। इसी प्रकार समास रहित अथवा छोटे–छोटे समासों वाली मनोहर रचना माधुर्य की व्यंजक होती है।

भुशुण्डि रामायण में वैदर्भी रीतिगत औचित्य—

भुशुण्डि रामायण में वैदर्भी रीति का सम्यक् प्रयोग हुआ है। यहाँ हम वैदर्भी रीति के लालित्य से युक्त कतिपय मनोरम उद्धरणों के माध्यम से भुशुण्डि रामायण में वैदर्भी रीतिगत औचित्य का अवलोकन कर रहे हैं।

गरूड़ के द्वारा भगवान राम के प्रति विनम्रता पूर्वक निवेदन में वैदर्भी रीति का सुन्दर प्रयोग दर्शनीय हो रहा है।

तव स्वरूपं भगवन्न प्रमेयं
वेदानामप्यादिसर्गोद्भवानाम्।
न च प्रमेन्मा दृश एष जन्तुः
किमद्भुतं नाथ दयासमुद्!।।
तथापि ते भक्तवर्यो हनूमान्
ज्ञात्वा समुद्धार्यतमं शंठ माम्।
प्रदर्शयामास भवन्तमद्भुतं
सर्वावविताराशं समूहमूलम।।[30]

प्रस्तुत उद्धरण में 'न्त','भ्र' (ह्रस्व से युक्त र) आदि माधुर्य वर्ण के व्यंजको का उचित प्रयोग किया है जो वैदर्भी रीति की विशेषताओं से युक्त है। अतः वैदर्भी रीति का सुन्दर उदाहरण है।

अधोवर्णित उद्धरण में वैदर्भी रीति का सम्यक प्रयोग दर्शनीय है।

---

[29] साहित्य दर्पण 9/3
[30] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड, अध्याय 6/10

कन्दर्पः स्वयमेव एव सुषमाशालीवसन्तः स्वय,
सामग्री स्वयमेव नित्या मधुरक्रीड़ावलीनामसौ।
तत्तद्रूपतया स्वयं परिणतः श्रीमान प्रमोदावली,
मेत्यानन्दयति स्वयं यदत्र कलितः प्रेमैकरूपः सदा।।[31]
कस्याश्चित्कुचयोः स्फुरत्करनवं कस्याश्चिदोष्ठच्छदं,
पीयूषैकपदं घयन्तमसकृत् कस्याश्चिदालिगंनम् ।
कुर्बन्तं हरिचन्दनाक्तवपुष कस्याश्चिदास्यं दृशा,
पश्यन्तं रघुनन्दनं स्वहृदये सख्यश्चिरं ध्यायत।।[32]

प्रस्तुत उद्धरण में 'न्त','न्द' आदि माधुर्य वर्ण के व्यंजको का प्रयोग किया है तथा वैदर्भी रीति की अन्य विशेषताओं का यथास्थान उचित प्रयोग किया गया है। अधोवर्णित उद्धरण में वैदर्भी रीतिगत औचित्य दर्शनीय है।

निर्लेप एवासि विमोत्वमात्मना सृजस्यवस्यत्सि पुनश्चराचरम ।
अहो विचित्रा तव शक्तिरूच्चकैरचिन्त्यरूपा च सुयोगिनामपि ।।
नाकोऽस्यि भूमन गगने प्रतिष्ठितः सुखं सुरा यत्र वसन्तिसर्वशः।
अतः पशस्तैर्महतो महत्तमैर्न लभ्यसेत्वं सुकृतैर्विना प्रभो ।।[33]

उपर्युक्त उद्धरण में वैदर्भी रीति की विशेषताओं का सुन्दर प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

गौड़ी रीति–

जिस रचना में ओज के प्रकाशक वर्णो का प्रयोग होता है एवं दीर्घ समासों से युक्त पदावली रहती है वहाँ गौड़ी रीति होती है।

ओज प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बरः पुनः
समास बहुला गौड़ी।[34]

कठोर वर्णो, वाणी, बहुत से समासों से व्याप्त बड़े–बड़े महाप्राण प्रयत्न वाले अक्षरों से युक्त अनुप्रास आदि से युक्त थोड़े वाक्यों वाली रचना गौड़ी रीति होती है।

भुशुण्डि रामायण में गौड़ी रीतिगत औचित्य–

भुशुण्डि रामायण में यथास्थान गौड़ी रीति का उचित प्रयोग किया गया है। हम यहाँ भुशुण्डि रामायण में गौड़ी रीतिगत औचित्य के कतिपय उदाहरणों की प्रस्तुति कर रहे है।

---

[31] भुशण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड अध्याय 76/13
[32] भुशण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड अध्याय 76/19
[33] भुशण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड अध्याय 70/15, 25
[34] साहित्य दर्पण, 9/3

अधोवर्णित गद्यांश में गौड़ी रीतिगत औचित्य का सम्यक प्रयोग दर्शनीय है।

"अथ मिथिला नाम्नी सा नगरी वृहद्‌गोपुरविराजितकनककपाटा संकलित सुवर्ण श्रृंगटका देवगिरि प्रतिमप्राकारपर्यन्त प्रविन्यस्तागाधपरिखा जला महामंगलप्रसंग विस्तीर्ण नगर द्वारा मणिहेममयतोरणा विशाल पुराट्टलस्फाटिकभित्ति प्रतिफलिवरविरश्मिसंदोहचकच्चकायमाना नाना मणि प्रभावलाभिः पुरन्दर धनुर्लतायमाननगर गोपानसीका वितताप‌ण प्रसार्यमाणसुवर्णमणिरत्नप्रचुरा विशाल स्वरमूर्छायितान्तरिक्षपथैर्गन्धर्व राजैरूपगार्यदिमरासादिगोष्ठी मनोरमा पवनान्दोलित दीर्घ ध्वजपटसनाथप्रसादं शिखरोपात्तघूर्णायमान प्रमत्तकपोतकुलमन्द ध्वनि मनोहरा अनवरत हुताज्यगन्धिश्रोत्रियागारोपरिभ्रमद्‌धूमलेखानुक्षणधावद्‌बुभुक्षुद्विजकुला निरन्तरप्रवृत्तदीर्घदीक्षाकाध्वर समामन्त्रित पुरन्दरादि देवगणा चतुर्वर्णचतुरा श्रमाचार प्रवर्त्तनमूलकरण भूता।।"[35]

प्रस्तुत गद्यांश ओजगुण सम्पन्न, संयुक्ताक्षरों से पूर्ण तथा अन्य गौड़ी वृत्ति की विशेषताओं तथा वर्गो से युक्त है। अतः यहाँ गौड़ी रीति का उचित प्रयोग हुआ है।

राम के यशोगान वर्णन में गौड़ी रीति का सुन्दर वर्णन दृष्टिगोचर हो रहा है—

जय जय जय देव साकेतचन्द्रश्रिया तन्त्रचन्द्रद्युते रामचन्द्र क्षमापाल शक्रादिदिक्पालतेजः स्फुरच्चण्डकोदण्डदण्डस्फुटोद्‌गीर्वावाणावलीशीर्णविद्वेषिसंघ प्रभूत प्रचण्डप्रतापप्रकाश प्रकष्ट प्रसर्पत्प्रभाव प्रसार प्रभापूरितक्ष्मातलक्षेमदाक्षुण्ण कौक्षयकाक्षामलक्ष्मीक सक्षेमसोन्मादमातङ्‌गविश्राणनोद्‌दाम दीव्यद्‌गुणग्राम भूदेवविश्राम भूयस्तरायाम धर्मद्रुमाराम हेराम कामाभिरामद्युते।[36]

प्रस्तुत गद्यांश चन्द्रश्रिया, चन्द्रद्युते आदि पदों वाले समास से युक्त ज, च, प्र, स, भू, आदि व्यंजनों की आवृत्ति से अनुप्रास अलंकार से युक्त अन्य गौड़ी विशेषताओं तथा वर्गो से युक्त है। अतः यह गौड़ी रीतिगत औचित्य का सुन्दर उदाहरण है।

"जय जय गुणमयकाय सर्वाधिकोच्छाय दीव्यत्सदाध्यायविप्रावली दायजाताहिता पायशातावलीशाय विस्फुर्जितामन्द सौरम्यमाकन्द लक्ष्मीलताकन्द पूर्णान्तरामन्द दत्तारिहाक्रन्द विद्वत्सभोल्लास भूयोरसा वास खड्‌गोद्‌भवत्रास वश्यद्विषद्‌दास वाणासनोत्प्रासविक्रान्तिसोद्‌भास हेराम तत्र त्वया कीर्ति रसंस्थापि यत्रोल्लसन्तः सुधापूरपूर्णाः स्फुरन्त्युच्चैस्तुङ्‌ग गंगातरंगास्तथा राजहंसावली राजते यत्र कीर्तिस्तथा स्वःपते।।"[37]

---

[35] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड अध्याय 76/11
[36] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड अध्याय 94/16
[37] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड अध्याय 94/17

ङ्ग ,ज आदि व्यंजनों की आवृत्ति से अनुप्रास अलंकार दृष्टिगोचर हो रहा है। इसमें ओज के प्रकाशक वर्णो का प्रयोग किया गया है तथा अन्य गौड़ी विशेषताओं से युक्त होने से गौड़ी रीतिगत औचित्य से युक्त है।

पांचाली रीति–

वैदर्भी और गौड़ी के मिश्रित रूप को पांचाली रीति कहते है। इसमें पाँच, छैः पदो से अधिक पदों का समास होता है।

वर्णैः शेषैःपुनर्दवयो
समस्तपंचषटपदो बन्धः पांचालिकामताः।।[38]

वैदर्भी एवं गौड़ी रीति में क्रमशः माधुर्य व्यंजक तथा ओज व्यंजक वर्णो का प्रयोग होता है किन्तु पांचाली में उन वर्णो का प्रयोग होता है, जो न तो माधुर्य व्यंजक है और न ओज व्यंजक। इसमें छोटे–छोटे समासों को स्वीकार किया जाता है।

भुशुण्डि रामायण में पांचाली रीतिगत औचित्य–

भुशुण्डि रामायण में यथास्थान पांचालीरीति का बहुधा प्रयोग हुआ है। पांचाली रीतिगत औचित्य से युक्त कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है।

अधोवर्णित उदाहरण में पांचाली रीति का सम्यक् प्रयोग दर्शनीय है।

स जातमात्रो निविडाम्बुदाकृतिः
पीताम्बरः सुस्मितवक्पंक्जः।
भुजद्वयो वाणपरादिचिन्हितः
स्ववामभागे श्रियमुत्तमादधत्।।
अनर्घ्यरत्नाभरणैविराजितः,
समुल्लसत्कुण्डलशोभिताननः।
श्रीवत्सलक्ष्म्यार्पित कण्ठकौस्तुम–
स्त्विषा स्वयं रोचितसूतिकाग्रहः।।
अनंगलावण्य परार्धसम्पदा,
संस्पृष्टसर्वांग मनोहरोज्जवलः।
श्रृंगारभगीरससूचकैर्दृशोः,
कटाक्षपातैः कमलां प्रमोदयन्।।[39]

इस रचना में न तो माधुर्य व्यंजन वर्ण है और न ओजो व्यंजक वर्ण, उससे भिन्न यह रचना है किन्तु मधुरता, सकुमारता यहाँ विद्यमान है, इसमें पाँच, छैः पदों के समास भी हैं।

---

[38] साहित्यदर्पण 9/4
[39] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड अध्याय 10/3, 4, 5, 6, 7, 8

अधोवर्णित गद्यांश जिसमें कि वेदों द्वारा राम की स्तुति की गयी है। इसमें पांचाली रीतिगत औचित्य का सम्यक् प्रयोग हुआ है।

"जय जय भुवनत्रयसंतापहरण नवाम्बुदाकृते! सकलकल्याणगुणनिधान निरूपमसौन्दर्य विजितकन्दर्पकोटिदर्प मन्दस्मितमाधुरीसुधारसधारापराभूत शरच्चन्द्रचन्द्रिका वलेप कमलाकुचकुङ्कुमपिञजरी कृत वक्षस्थलविराजितमहाकौस्तुभमणिमरी चिमालानिराकृत त्रिभुवनतिमिर निरूपम नित्य निरीह निरभास निरञजन निर्विकार नित्याकार निर्गुण नित्यानन्दमयविग्रह निःकिंचनजनप्रिय ब्रह्माण्डकोटिकमला संसेव्यमानचरध कमलरजः परागपवित्रितवसुधातल नवीनवनमालाधर राम श्रीराम राघव मुकुन्द रामचन्द्र जनार्दन जगदीश पुरूषोत्तम द्विभुज धनुर्वाणादिधर श्रीवत्सधर महापुरूष महाकारूणिक महाजिष्णो महेश्वर महाजनाचारपरिपालक सूर्यकूलोत्तम रघुकुलोत्तम समर्यादावतारिन जगद्विधरणदहरवेश्मान्तस्य व्यापक परमात्मन्ननिद्देश्या प्रमेयातर्क्य कोमलापांगविर्मुक्त कटाक्ष संक्षोभितास्मन्मानसमहामदन संवर्द्धन, नमस्ते नमस्ते।"[40]

अधोवर्णित उद्धरण में पांचाली रीतिगत औचित्य दर्शनीय है।

सरयूः प्रेमसरयूः प्रेमानन्द सरोजला।
प्रेमपूर्णा प्रेमामयी प्रेमतोया महोदका।।
रामगंगा रामनदी रामप्रेमा महानदी।
सुधावर्ण चन्द्रवर्णा घनसार रसोदका।।
रसात्मिका रसमयी रसपूर्णा रसोदका।
रसा रसप्रिया रस्या रसारम्या रसावहा।।
सुधामा वसुधा लक्ष्मीर्वसुधामा वसूद्भवा।
सरिद्वरा सरिच्छ्रेष्टा सरिद्रूपा सरोमयी।।[41]

कवि ने सरयू नदी के विभिन्न विशेषणों के प्रयोग में पांचाली रीति का सुन्दर प्रयोग किया है। सरयू के लिए प्रेमपूर्णा, रामगंगा, चन्द्रवर्णा, रसप्रिया आदि समासो (छोटे–छोटे पदों वाले) का उचित प्रयोग किया है। यह रचना पांचाली रीति की सभी विशेषताओं से युक्त है।

लाटी रीति

वैदर्भी और पांचाली रीतियों के लक्षणों से कुछ–कुछ युक्त रीति को लाटी रीति कहते है।

"लाटी रीति वैदर्भीपांचाल्योरन्तरेस्थिता।।"[42]

तात्पर्य यह है कि लाटी रीति में वैदर्भी और पांचाली दोनों ही रीतियों के कुछ–कुछ लक्षण रहते है।

---

[40] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड अध्याय 11/1
[41] भुशुण्डि रामायण, पश्चिमखण्ड अध्याय 36/10, 20
[42] साहित्य दर्पण, 9/5

वैदर्भी और पांचाली इन दोनों रीतियों के मध्य की रीति 'लाटी' है। इसमें कुछ वैदर्भी की और कुछ पांचाली रीति की विशेषताओं का समावेश रहता है। अर्थात् जो कोमल पदों और सुकुमार समासों से सुन्दर हो और बहुत से संयुक्त अक्षरों से युक्त न हो एवं समुचित विशेषणों के द्वारा जिसमें वस्तु वर्णित हो उसे लाटी रीति कहते है। भुशुण्डि रामायण में यथा स्थान लाटी रीति का उचित प्रयोग दर्शनीय होता है।

भुशुण्डि रामायण में लाटी रीतिगत औचित्य–

अधोवर्णित्त उद्धरणों में लाटी रीतगत औचित्य का सम्यक् प्रस्तुति हुयी है। गरूड़ द्वारा राम का साक्षात्कार वर्णत में लाटी रीतिगत औचित्य दर्शनीय है।

गत्वा ददर्श रघुपुंगवमभ्रनीलं,
सीतायुतं कटिनिषांग धनुशराद्यम्।।
केयूरकङ्कणकिरीट सुकुण्डलाढय,
पीताम्बरं मधुरहासमुखारबिन्दम् ।।
एवं विलोक्य गरूड़ः सुमग्नो रूपसागरे,
ततो हनुमता प्रोक्तो राम एषोऽभिवन्द्यताम्।।
गुञ्जारत्रजः केकिपिच्छावतंसः
करे रसाला मुरली यदा स्यात्।।
गोपांगनाश्चेद्विलसन्ति पार्श्वे
सीतापते त्वां प्रणमामि नित्यम्।।[43]

प्रस्तुत उद्धरण में 'ङ्ग' 'म' आदि माधुर्य व्यंजक वर्ण है जो वैदर्भी रीति में प्रयुक्त होते हैं। इसमें कोमल पदों और सुकुमार समासों सीतापते, पीताम्बर आदि का प्रयोग किया है। प्रस्तुत उद्धरण में लाटी रीतिगत औचित्य दर्शनीय होता है।

अधोवर्णित उद्धरण में लाटी रीति का उचित प्रयोग दर्शनीय है।

तां कोमलाङ्घ्रिकमलामिह खिद्यमाना, मंसे निधाय दयितामिह नीतवान् सः।
नातः परं परिलसन्ति पदानि यस्याः, स्वाधीनतागुणवशीकृतवल्लमायाः।।
धन्याः परं युवतयो रघुनन्दनस्य, मर्त्तुः पदाम्बुरूहसंमवरेणवोऽमी।
या पद्मनयोनिरघहन्यव ईश्वरश्च, मूर्दध्ना दधति कमला च नितान्तमक्ता।।
यां कामुको रसितवानितरां विहाय, भूयो वियोग भरकालदवाग्नितप्ताः।
सत्मान भम्यधिकमानममंस्त सम्यक, स्त्रीणां निजासनजुषां प्रमदेतरासाम्।।
भूयोऽब्रवीच्च खलु सा प्रिय पारयामि, नो गन्तुमध्वनि निकुञ्जविशीर्णपर्णे ।
आरोप्य संप्रति निजांसमितो नयेश्चे, व्यक्तः प्रियश्च सहसा विदधौतथैव।।[44]

इस प्रकार हम देखते है कि भुशुण्डि रामायण में कवि ने यथा स्थान वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली और लाटी रीति के उचित प्रयोग से ग्रन्थ को चारूता प्रदान की है।

---

[43] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड अध्याय 5/17, 19
[44] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड (अध्याय 23/50, 51, 52, 53)

घ– भाषागत औचित्य

भाषा ज्योति वह अलौकिक साधन है। जिसके द्वारा अलौकिक जगत अपने काव्य व्यापार में प्रवृत्त होता है। इसी साधन के द्वारा सहृदय कवि अपनी नवोन्मेष शालिनी प्रज्ञा के द्वारा भाव सम्पत्ति को प्रस्तुत कर देता है। भाषा की दृष्टि से भुशुण्डि रामायण लौकिक एवं वैदिक संस्कृति के मध्य की कड़ी है। यद्यपि यह लौकिक संस्कृत में की गयी काव्य रचना है। लेकिन इसमें सरस प्रवाहपूर्ण परिष्कृत परिमार्जित एवं आवश्यकतानुसार प्रौढ़ प्रसादपूर्ण भाषा सहृदय को शीघ्र ही हृदयगम्य है।

कोई भी काव्य रचना अपने सम्पूर्ण ओज एवं वैभव के प्रकाश में तब तक नहीं देखी जा सकती जब तक कि उसके बाह्य एवं आन्तरिक दोनों पक्षों की सम्यक् रूप से अन्वीक्षा न कर ली जाये। कला अपने भाव एवं विभाव दोनों ही पक्षों में प्रौढ़ एवं सम्पुष्ट होकर एक सरल कृति की संज्ञा प्राप्त करती है, कलात्मक जगत का यह एक अखण्ड एवं व्यापक सत्य है भाषा तो काव्य का अनिवार्य एवं अविभाज्य अंग है। इस सम्बध में डा0 भागीरथ मिश्र का कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है– भाषा कविता का शरीर है बिना भाषा के भाव निराकार है और उनका व्यापक प्रभाव नही है कविता का प्राण भाव है अवश्य, पर उसकी देह भाषा ही है।[45]

व्याकरण के जिन अंगों का आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने औचित्यविचार सिद्धान्त में उल्लेख किया है, उनका साहित्यिक दृष्टि से महत्त्व तो हैं ही साथ ही साहित्य में शब्दों के प्रभावी प्रयोग के लिए भी आवश्यक है। यदि शब्द अपना प्रभाव उत्पन्न करने में अक्षम है, तो साहित्यकार का उद्देश्यपूर्ण नही होगा। क्षेमेन्द्र ने औचित्य के अन्तर्गत उपयोगिता प्रभाविकता को स्थान दिया। औचित्य उनके मत में ऐसी कसौटी है। जिस पर कसते ही शब्दों के प्रयोगों की क्षमता अथवा अक्षमता प्रकट हो जाती है।

भुशुण्डि रामायण में भाषागत औचित्य

भुशुण्डि रामायण संस्कृत साहित्य का प्रौढ़ परिष्कृत एवं ललित काव्य ग्रन्थ है। अतः इसकी भाषाशैली उच्च कोटि की है। कवि ने यथावश्यक भाषा के प्रौढ़ परिष्कृत ललित मधुर एवं सरस रूप प्रस्तुत किये हैं यहाँ पर हम भुशुण्डि रामायण में प्रयुक्त भाषा के विविध रूपों में औचित्य गत विधान को प्रस्तुत कर रहे है।

मंगलाचरण में सर्वप्रथम कवि अपने आराध्य देव का चित्रण करता है। कवि अपने हार्दिक भक्ति भाव को गम्भीर भाषा के द्वारा व्यक्त करता है भुशुण्डि रामायण में कवि ने मंगलाचरण में भगवान राम का स्तवन किया है मंगलाचरण में प्रयुक्त कवि की भाषा राम के सहज स्वरूप एंव गुणों को व्यक्त कर रही है कवि

[45] हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास (लेखक डा0 भागीरथ, मिश्र) पृ0 393

ने काव्य में चित्रित राम के स्वरूप को भाषा के द्वारा प्रकाशित करने का प्रयत्न किया है। कवि ने मंगलाचरण में औचित्य का पूर्ण निर्वाह किया है।

रामं लोकाभिरामं रघुवरतनयं कोशलामुक्तिपुर्यां ।
खेलन्तं कामकेलि सुविमलसरयूतीरकुञ्जे नटन्तम्।।
जानक्या चारूहासच्छविविशदशरच्चन्द्रिकाकान्तिमत्या।
संयुक्तं राज्य (ज?) वेषं ललितरसमयं ब्रह्मपूर्णं नमामि।।
भक्तानां प्राणनाथं वरदपरिवृढं वंशवर्य वरेण्यं।
शुद्धं श्यामावदातं हरितमणिरूचि सच्चिदानन्ददेहम्।।
आभीरीनेत्रपद्यन प्रकरदिनकरं पूर्णचन्द्राभिरामं।
रामं श्यामं प्रकामं निजहृदि कलये कोटिकामावतारम्।।
मुक्ताहाराभिरामं मणिमुकुट समाबद्धसद्रत्नगुच्छं।
मन्दस्वच्छामृताब्धि प्रतिमविहसितं चारूबिम्बोष्ठकान्तिम्।
श्रृंगारे कान्तवेषं परमतमरसानन्दसाक्षात्कृतांग।
गम्भीरावर्तनाभि त्रिवलिमदुदरं नौमि रामं रामेशम्।।[46]

रसों एवं भावों के अनुरूप भाषा के संयोजन में औचित्य– कवि ने रसों एवं भावों के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है।

क. श्रृंगार परक शब्दों के संयोजन में औचित्य– श्रृंगार परक शब्दों के संयोजन में कवि ने तदनुरूप रमणीय भाषा का प्रयोग किया है।

प्रियः परीरम्य मनोरमां प्रियां स्तनद्वयामर्दनजातसंभ्रमाम्।
चचुम्ब बिम्बीफलकोमलेऽधरे रदव्रणारोपणजातसंभ्रमाम्।।[47]
अये! कठोर हृदये दृप्ते जनकनन्दिनि,
व्यथमानंहृदं दृष्टवा नाद्यापि करूणा तव,
सकृन्मे दर्शनं दत्वा महाविरहवर्धनम्।।[48]

ख. वीरतापरक शब्दों के संयोजन में औचित्य– कवि ने वीरता परक शब्दों के संयोजन में तदनुरूप उत्साह सम्पन्न भाषा का प्रयोग किया है। राम का कुम्भकरण के साथ युद्ध में कुम्भकरण के कथन में वीरता परक शब्दों का प्रयोग दृष्टव्य होता है। वह राम को युद्ध के लिए ललकारता हुआ कहता है कि हे राम आपके समान कौन वीर योद्धा है जिसने अपनी शक्ति से समुद्र को बाध दिया हो। यदि मैं तुम्हें जीत लेता हूँ तो मैं प्रशंसनीय हो जाऊँगा और यदि तुम मुझे जीत लोगे तथापि मैं प्रशंसनीय हो जाऊँगा। इसके पश्चात दोनों में भयंकर युद्ध होता है। और राम के बाण के प्रहार से मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।[49]

---

[46] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड (अध्याय 1/1, 2, 3)
[47] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड (अध्याय 28/32)
[48] भुशुण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड(अध्याय 232/ 13, 24)
[49] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड (अध्याय 26/17, 18)

भुशुण्डि रामायण में अनेक स्थलों पर कवि ने वीरता परक शब्दों का यथा स्थान उचित प्रयोग किया है।

ग. हास्य परक शब्दों के संयोजन में औचित्य– रचयिता ने हास्य परक शब्दों के संयोजन में उसके अनुरूप सुख देने वाले शब्दों का प्रयोग कर औचित्य का निर्वाह किया है।

अथा हनन् दुन्दुभिवादिनो भुवि,
प्रमोदिताः ससदि देवदुन्दुमीन्।
जगुश्च विद्याधरकिन्नरीगणाः,
प्रबन्ध जन्मोत्सवगायनोद्धुराः।।
सुराश्च तुर्यत्रिकनादमोदिताः,
सुरद्रुमाणां कुसुमैरवाकिरन्।
कृतांगभूषा ननृतुश्च संभ्रमात्,
सुराङ्ग नामिर्गगनागंणस्थिताः।।
दिशां प्रसादः सहसा तदाभवद्,
ययुः सुखस्पर्शकराः समीरणाः।
सुरोचिषा रोचित उद्‌गतो रवि,
र्नमस्ततं दर्पणनिर्मलं बभौ।।[50]

घ. करुण परक शब्दों के संयोजन में औचित्य – कवि अपने शब्दों के संयोजन में तद्‌नुरूप दुःख से भरे हुए शब्दों का प्रयोग करता है तो वह करूण परक शब्दों के अनुरूप होगा।

कौशल्या पतिशोकेन विललाप तपस्विनी ।
हा नारधिक हा मित्र सुखदायक हा निधे।।
हा शत्रुनारीवैधव्य दीक्षादान विचक्षण।
हा देवनरनागेन्द्र सर्वस्व यशासां निधे।।[51]

कौशल्या अपने पति दशरथ के वियोग में दुःखी हो जाती है। और इस प्रकार दुख भरे शब्दों का प्रयोग करती है। भुशुण्डि रामायण में अनेक स्थलों पर ऐसे प्रसंग आये है। चाहे वह दशरथ मरण हो, राम वनगमन, सीताहरण सर्वत्र कवि ने प्रसंगानुकूल दुःख भरे शब्दों का उचित प्रयोग किया हैं जो औचित्य से परिपूर्ण है।

2. प्रश्नपरक शब्दों के संयोजन में औचित्य– रचनाकार ने प्रश्न परक शब्दों के संयोजन में सरल एवं बोधगम्य भाषा का प्रयोग किया गया है। प्रश्न परक शब्दों में प्रश्नों की भाषा को ऐसे रूप में वर्णित हो जिससे प्रश्नकर्ता के भाव को उत्तर देने

---

[50] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड (अध्याय 12/1, 2, 3)
[51] भुशुण्डि रामायण, दक्षिणखण्ड (अध्याय 25/17)

वाला सहज में हृदयगंम कर ले। भुशुण्डि रामायण में प्रश्नकर्ता की इसी प्रकार की भाषा प्रयुक्त हुई है।

प्रस्तुत उद्धरण में प्रश्नपरक शब्दों का उचित प्रयोग प्राप्त होता है।

क आश्रयोऽस्य जगतः किं निमित्तं तथा प्रभो।।
किं सारमत्र वेद्यं च बहुवल्गिनि चागमे।
भवतः संमतं किं च लोकेशस्य विधेर्वद।।
क आदौ विनियोक्ता च कः स्वभावोऽस्य संततम्।
किं स्वरूपं कः आकारो ब्रह्मापि वद कीदृशम्।।
कीदृशं तस्य संस्थानं किं स्थानं परम पदम्।
सगुणं निर्गुणं चापि ध्येयं ज्ञेयं च कीदृशम्।।[52]

1. **स्तुतिपरक शब्दों के संयोजन में औचित्य** — स्तुति परक शब्दों की प्रस्तुति इस प्रकार हो कि ऐसा विशिष्ट हो कि भक्त अपने अराध्य के समक्ष अपने हृदय को व्यक्त रूप में प्रस्तुत कर देना चाहता है। उस समय उसकी भाषा हृदय की भाषा होती है। भुशुण्डि रामायण में अनेक स्थलों पर ऐसे प्रसंग प्राप्त होते हैं। जहाँ भक्त ने अपने हृदय की सरल भाषा प्रस्तुत की है। जो निश्चय ही भाषा के उचित प्रयोग को दर्शाती है।

प्रस्तुत अधोवर्णित उद्धरण में भक्ति के हृदय की भावपूर्ण भाषा का प्रयोग किया गया है।

नमामिते नाथ पदारविन्दं, विष्णवादिसेव्यं च सुखैकहेतुम्।
न यत्र सद्यः प्रमितिः श्रुतीनां, तत्रामिते वानरः कोऽस्मि एषः।।
तव प्रसादो मयि नाथ जात, स्तथैव धामेश्वररिप्रेमदायाः।
प्रमुद्वने नित्यनिकुञ्जकेली, लसन्महामञ्जुलविग्रहायाः।।
यदंशमात्रेण भवन्ति नित्यशो, लक्ष्म्यादयः शक्तिवराश्च सर्वाः।
लीलेश्वरी नन्दननदिंनी सा, मां पातु पादाम्बुजनित्यभक्तम्।।[53]

हनुमान द्वारा राम की स्तुति वर्णन में भाषा की अत्यन्त ही भावपूर्ण रूप में प्रस्तुत हुयी है। जो भाषागत औचित्य के उचित प्रयोग को दर्शा रहा हे।

ब्रह्मा द्वारा स्तुति वर्णन में औचित्य का सम्यक निर्वाह हुआ है।

नमो नमो गुणनिधयेऽगुणाय च,
नमो नमोऽखिलदृशेऽदृशाय च।
नमो नमो निजविभवाप्तमूर्त्तये,
नमो नमो निजजनचित्तपण्यवे।।

---

[52] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड (अध्याय 2/3, 4, 5, 6, 7)
[53] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड (अध्याय 7/1, 2, 3, 4)

नमो नमो निगमपथातिगामिने,
नमो नमो विततभवापवर्गद ।
नमो नमो नः कार्यार्थमवतीर्णाय विष्णवे,
लक्ष्मीशायाखिलद्वेष्टसंहराय नमो नमः।।
नमो नमः पुष्करवर्यपाणये,
नमो नमः पुष्करमध्यवाससे।।[54]

5. विषय के अनुरूप भाषा के संयोजन में औचित्य – भुशुण्डि रामायण में कवि ने विषय के अनुरूप भाषा का उचित प्रयोग किया है। सामान्य विषय में सामान्य भाषा और विशिष्ट विषय में विशिष्ट भाषा का प्रयोग कर औचित्य का उचित निर्वाह किया है।

तस्मादेको रामचन्द्रोऽत्र सेव्यः, सर्वैलोकेः सर्वभावेन नित्यम्।
सर्वस्येशः सर्वदेवैकभाव्यः, सर्वाकारः सर्वसर्वश्च सर्वः ।।
रामो रामो राम रामोऽभिरामो, रामो रामो रामरामश्च रामः।
रामो रम्यो रामचन्द्रो रमेशः, इत्थं चोक्त्वा मुच्यते चैव बन्धात्।।[55]

भुशुण्डि रामायण में कवि ने व्यवहारिक भाषा का प्रयोग किया है। जो औचित्य पूर्ण है। कवि की सहज भाषा शीघ्र ही भावों को स्पष्ट करती है। भाषा को प्रभावी बनाने के लिए कहीं–कहीं अलंकारों का प्रयोग किया गया है। जिससे उसका सौन्दर्य और अधिक बढ़ गया है। अलंकार भाषा सौन्दर्य के उपकारक है। अनुप्रास का मनोरम प्रयोग उसके सौन्दर्य की श्री वृद्धि कर रहा है। भाषा की उच्चकोटि की कथा एवं स्वाभाविक गति निश्चय ही सहृदयों को आनन्द प्रदान करती है। कवि ने सरस, सरल, मधुर आवश्यकतानुसार प्रौढ़ एवं परिष्कृत पदावली के द्वारा भाषा सुन्दरी का विन्यास किया है। कवि की भाषा में यथा स्थान प्रसादगुण पूर्ण प्रांजलता के दर्शन होते है। अर्थ सम्बंधी सरलता एवं सुस्पष्टता महाकाव्य की भाषा की उत्कृष्ट स्वरुप को अभिव्यक्त करते हैं।

वस्तुतः इस प्रकार हमे ज्ञात होता है कि कवि को भाषा के बाह्य एवं आन्तरिक पक्षो में भाषा सुन्दरी के यथोचित प्रयोग में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है कवि ने वर्ण्य विषय के अनुरुप पदों एवं वाक्यों के द्वारा सहज भाषा का प्रयोग कर सर्वत्र औचित्य का निर्वाह किया है। भाषा शिशु की सरसलता के समान सर्वत्र अनुकरण करती है। भाषा का प्रसादत्त्व एवं कोमलता भावनाओं का मणिकांचन संयोग अधिकाशंतया परिलक्षित किया जा सकता है। इसी स्वाभाविकता के कारण सर्वत्र औचित्य विद्यमान है। किन्तु यहाँ पर हम विषय को अधिक विस्तृत न करते हुए इस विषय को यहीं तक सीमित करते हैं। क्योंकि विषय का कलेवर भी इसी की अपेक्षा करता है।

[54] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड (अध्याय 10/48, 49, 5., 51)
[55] भुशुण्डि रामायण, पूर्वखण्ड (अध्याय 20/45, 46)

ङ– छन्दगत औचित्य

संस्कृत वाङ्मय में छन्दों का महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट स्थान है। संस्कृत के छन्द बड़े ही रोचक एवं सरस है। ये श्रवण मात्र से ही श्रोता को आनन्द निमग्न करने में सर्वथा सक्षम है। संस्कृत छन्दों की यह मौलिक विशेषता है।

'वेद' विश्व साहित्य का प्राचीनतम साहित्य माना जाता है। चारों वेदों में ऋग्वेद की रचना छन्दोंबद्ध रचना हे। इससे छन्दों की प्राचीनता स्पष्ट होती है। वेद के छः अंगों में 'छन्द' का स्थान निर्धारित किया गया है।[56] तथा इसको वेद का 'पाद' भी कहा गया है।[57] पाद विभाग के कारण ही छन्दोबद्ध रचना को पद्य कहते है। संस्कृत में इसका शुद्ध तत्सम रूप छन्दस् है। 'छन्दस्' शब्द की व्युत्पत्ति छदि धातु से वर्णित है जिसका अर्थ है 'देखना'

"मंत्रा मननात् छन्दाति छदनात्।"[58]

अर्थात पद्यत्व के आवरण को छन्द कहा जाता है। महर्षि पाणिनि ने छन्द का अर्थ आह्लादन बताया है इस शब्द की व्युत्पत्ति 'चादि' धातु से हुयी है 'चदि आह्लादने दीप्तौ वा'[59] इस प्रकार चदेश देश्च छ। उणादि सूत्र से च अक्षर 'छ' में परिवर्तित हो जाता है। इसके साथ ही छन्द का आह्लादक गुण रस से सम्बन्ध रखता है। अर्थात् काव्यानन्द की प्रेषणीयता में छन्द एक प्रमुख साधन रूप में प्रस्तुत हुआ है। छन्दों की विविधता आकार–प्रकार श्रव्यता का पूर्णतः विवेचन छन्द शास्त्रियों ने किया है। छन्द काव्य का इतना अधिक रमणीय तत्व है कि प्राचीन काल के अधिकांश समस्त वाङ्मय (आयुर्वेद, इतिहास, धर्मशास्त्र, राजनीति शास्त्र आदि) छन्दोंबद्ध रूप में प्राप्त होते हैं।

परमेश्वर ने लोक कल्याण के निमित्त अपने पवित्र उपदेश को गायत्री आदि छन्दों में प्रकट किया है। वेद से सम्प्रेरित होकर लोक में भी छन्दों का प्रयोग हुआ है। गणित, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल, आयुर्वेद कोष, कथा आदि की रचना छन्दों में हुयी । संस्कृत काव्यों में छन्दों की प्रधानता है। सर्वप्रथम छन्दशास्त्र कार पिंगलसूत्र थे। पिंगल के पश्चात छन्द शास्त्र के अनेक आचार्य हुए जिनमें राम मुनि कश्यप, मुनि सैतव आदि प्रमुख है।

लौकिक छन्द शास्त्र के दो भेद हैं–

1. मात्रिक छन्द
2. वर्णिक छन्द

---

[56] राजशेखर काव्यमीमांसा (द्वितीय अध्याय 16)
[57] छन्द पादौ तु वेदस्य (पाणिनिशिक्षा,
[58] पाणिनि धातु पाद (भवादिगण)
[59] चन्दयति दृश्यति एवं दीप्यते वा तच्छन्दः (पाणिनी)

1. **मात्रिक छन्द** – जिन छन्दों में वर्णों के ऊपर ध्यान न देकर केवल मात्राओं की गणना की जाती है। उन्हें मात्रिक छन्द कहते हैं। उदाहरणार्थ– आर्या छन्द। इन छन्दों में लय की मर्यादा के लिए स्वर की गति कहीं तीव्र होती है कहीं मन्द। इसी में स्वर का गुरूत्व और लघुत्व प्रकट होता हे। लघु की एक (।) और गुरू की दो (S) मात्रायें मानी जाती है।

2. **वर्णिक छन्द** – जिन छन्दों में चारों वर्णो की रचना एक क्रम के आधार पर होती है। उदाहरणार्थ– इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, अनुष्टुप, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका आदि छन्द। वर्णिक के तीन भेद हैं।

1. समवृत्त छन्द **2. अर्धसमवृत्त छन्द** **3. विषमवृत्त छन्द**

2. **समवृत्त छन्द** – जिस वृत्त में चारों चरणों में एक जैसा लक्षण रहता है। उसे समवृत्त कहते है।

3. **अर्धसमवृत्त छन्द** – जिस छन्द में तृतीय चरण प्रथम चरण के बराबर हो अर्थात् तृतीय और प्रथम चरण में एक जैसा लक्षण हो, दूसरा चरण चौथे चरण के तुल्य हो अर्थात् दूसरे चरण और चौथे चरण में एक जैसा लक्षण हो वह अर्धसमवृत्त कहलाता है।

4. **विषमवृत्त छन्द** – जिस वृत्त में चारों चरणों का लक्षण भिन्न–भिन्न होता है अर्थात् एक चरण का लक्षण दूसरे चरण के साथ नहीं मिलता है उस वृत्त को विषम वृत्त कहा जाता है।

काव्य में श्रवण शीलता तथा श्रुति प्रियता की सृष्टि के लिए किसी न किसी प्रकार के छन्द की आवश्यकता का अनुभव प्राचीन काल में ही हुआ था। ऋग्वेदादि प्राचीन ग्रन्थों में लय गति एवं व्यवस्थित क्रमानुसार शब्दों का प्रयोग हुआ है। काव्यशास्त्रियों ने छन्दों की उपयोगिता मानी है। दण्डी ने महाकाव्य में पढ़ने एवं सुनने में रमणीय शब्दों की आवश्यकता का उल्लेख किया है तथा प्रतिपादित किया है कि प्रत्येक मार्ग में एक ही छन्द का प्रयोग करना चाहिए तथा सर्ग के अन्त में भिन्न छन्द का प्रयोग करना अपेक्षित है।

आचार्य हेमेन्द्र तथा विश्वनाथ ने भी छन्द के विषय में दण्डी की ही बात का समर्थन किया है।

आचार्य क्षेमेन्द्र का कथन है कि यथा निर्दोष सूत्र गुम्फित एवं मुक्ताहार का निवेश उचित स्थान पर ही शोभित होता है। उसी प्रकार दोष रहित, गुण युक्त एवं सुन्दर छन्दों का भी विषयानुरूप प्रयोग ही शोभित होता है। काव्य में रस और वर्ण्य विषय के अनुरूप यथावसर सभी छन्दों का विभाजन कर उनका प्रयोग करना चाहिए। छन्द भावों, विचारों का आच्छादन करने वाले होते है तथा व्यक्ति का

शरीर वस्त्रों द्वारा समाच्छादित होने पर अधिक आकर्षक एवं सुन्दर लगता है। उसी प्रकार छन्दों से समावेष्टिव काव्यपुरूष में रमणीयता आ जाती है।

आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार छन्दगत औचित्य

आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'सुवृत्ततिलक' में छन्दों का काव्य में औचित्य विषय पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है। इनका कथन है कि काव्य में रस तथा वर्णन के अनुरूप ही छन्दों का प्रयोग होना चाहिए। छन्द योजना के विषय में उन्होंने विस्तार से विचार किया है। उसकी प्रस्तुति संक्षेप में इस प्रकार है।

1. छन्दों का यथास्थान प्रयोग होना चाहिए।
2. उदार नायिका वर्णन उपजाति छन्द में सुन्दर होता है।
3. चन्द्रोदय आदि उद्दीपन के वर्णन में रसोद्कता प्रयोग स्पृहणीय है।
4. वीर और रौद्र रस के सांकर्य में वसंततिलका तथा युक्ति पूर्वक दो तथ्यों तथा पारस्परिक भेद प्रदर्शन करने में शिखरिणी छन्दों का प्रयोग समीचीन होता है।
5. आक्षेप, क्रोध, आदि भाव पृथ्वी छन्द में अधिक अभिव्यक्ति होते हैं। वर्षा, प्रवास तथा अन्य विधि विपत्तियों के अंकन में मन्द्राकान्ता की उपयोगिता है।
6. राजाओं की शूरता आदि की प्रशंसा में शार्दूलविक्रीडित एवं वेगवान पवन आदि के चित्रण में स्त्रग्धरा छन्द का प्रयोग औचित्यपूर्ण है।

इसके अनंतर आचार्य ने कहा है कि कवि को जो छन्द अभ्यस्त हो उसी में काव्य रचना करनी चाहिए।

भुशुण्डि रामायण में छन्दौचित्य

रस, अलंकार, गुण की भाँति काव्यों में छन्दों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। महाकवि क्षेमेन्द्र ने काव्य में छन्दों के महत्व पर विशेष जोर दिया है। उनके अनुसार वृत्त और रस का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। काव्य में रस एवं वर्ण्य विषय के अनुसार ही छन्दों का प्रयोग होता है। यदि कोई कवि वर्ण्य विषय रस का ध्यान दिये बिना ही कविता के गले में छन्दों की माला पहना दे तो वह काव्य छन्दगत अनौचित्य के अन्तर्गत ही होगा।

आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार जिस प्रकार से स्थिति के अनुरूप उचित आचरण से सज्जन धन्यवाद के पात्र बन कर सुशोभित होते है। उसी प्रकार प्रबन्ध

काव्य भी अवस्था के अनुसार छन्दों के प्रयोग से प्रशंसित होकर सुशोभित होते है।[60]

भुशुण्डि रामायण में छन्दौचित्य की छटा दर्शनीय होती है। कवि ने छन्दों का यथा स्थान उचित प्रयोग किया है। इसके अध्यायों में प्रायः एक छन्द को लेकर रचना हुयी है और अन्त में छन्द में बदल गया है। कहीं–कहीं, किसी–किसी अध्याय में भिन्न–भिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें कहीं–कहीं आवश्यकतानुसार गद्य का भी प्रयोग किया गया है।

कवि ने ग्रन्थ की रचना करते हुए सर्वप्रथम राम की वंदना की है। जिसमें स्त्रग्धरा छन्द का प्रयोग दृष्टव्य होता है।

रामं लोकाभिरामं रघुवरतनयं कोशलामुक्तिपुर्यां ।
खेलन्तं कामकेलि सुविमलसरयूतीरकुंजे नटन्तम्।।
जानक्या चारुहासच्छविविशदशरच्चचन्द्रिका कान्तिमत्या।
संयुक्तं राज्य (ज?) वेषं ललित रसमयं ब्रह्मपूर्णनमामि।।[61]

प्रस्तुत उद्धरण में स्त्रग्धरा छन्द दर्शनीय हो रहा है। जिस श्लोक के प्रत्येक चरण में मगण, रगण, भगण, नगण और तीन यगण होते है उसे स्त्रग्धरा छन्द कहा जाता है। प्रत्येक चरण में सात–सात वर्णो के पश्चात यति होती है।[62]

परममधुरशील प्रावृषेण्याभ्रनीलः, सकल सुखदलीलः कुत्तहृच्छोककीलः।
त्रिभुवनशुभवेशः कोटि कल्याण देशः,कुटिलमसृणकेशःपातु भास्वत्कुलेश।।[63]
दिनकरकुलकेतुः सर्वसौन्दर्य सेतुः त्रिभुवनसुखहेतु र्भूति कृज्जम्भजेतुः।
सुरनरनगरामानन्दसन्दोहधामा घृतमणिवरदामा पातु वो रामनामा ।।[64]

प्रत्येक चरण में यदि क्रमशः दो नगण एक मगण तथा दो यगण हो तो उस छन्द को मालिनी कहा जाता है। इस छन्द में आठ तथा सात पर यति होती है।[65]

हम विस्तार भय से समस्त छन्दों को न लेते हुए, निष्कर्षतः इतना ही कहेंगे कि भुशुण्डि रामायण में प्रत्येक छन्द के औचित्य पर ध्यान रखा गया है। साथ ही साथ कथाप्रवाह अनुभूति के आवेग, पात्र की गरिमा तथा सौन्दर्य के साथ छन्द विशेष के सामंजस्य को सदैव ध्यान में रखता है।

---

[60] सुवृत्त तिलक 3/12
[61] भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड (अध्याय 1/1)
[62] स्त्रग्धरा छन्द लक्षण – म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्त्रग्धरा कीर्तितेयम्।
[63] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड (अध्याय 1/4)
[64] भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड (अध्याय 1/1)
[65] मालिनी छन्द का लक्षण, ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

उपसंहार

अध्ययन का निष्कर्ष

समग्र सृष्टि किसी अव्यक्तकार की सुन्दरतम रचना है। औचित्य का महत्त्व सर्वत्र सृष्टि के कण–कण में दृष्टिगोचर होता है। औचित्य से कदापि च्युत न होने के कारण भगवान का अच्युत नाम सार्थक एवं उपयुक्त है। औचित्य एक ईश्वरीय तत्व है। औचित्य की प्रतिष्ठा आचार्य क्षेमेन्द्र ने विष्णु के माध्यम से की है। विष्णु ही परम औचित्य के प्रतिष्ठापक है

अच्युताय नमस्तस्यै परमौचित्यकारिणे।

औचित्य का क्षेत्र इतना विशाल है कि उसे सरलता पूर्वक परिसीमन नहीं किया जा सकता। संसार की कोई भी वस्तु नहीं है जो औचित्य की सीमा से परे हो। औचित्य के लम्बे हाथों में जगत नियन्ता भगवान के विभिन्न अवतार भी अछूते नहीं रह सके। यह संसार परिवर्तनशील है। यहाँ पर प्रतिक्षण कुछ न कुछ सर्जनात्मक कार्य चलता ही रहता है। प्रकृति एवं मानव के सभी क्रिया–कलापों में औचित्य गर्भित है। स्पन्दन से ही समस्त जीवों को लोक में सुख–समृद्धि एवं वैभव का आभास होता है।

मानव ने अपने जीवन का भलीभाँति सामाजीकरण किया और इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए उसने विभिन्न प्रकार के नियमों एवं कानूनों की भी स्थापना की। उसके सभी कार्यों के मूल में औचित्य एवं अनौचित्य विषयक विचार सदा से ही रहते आये हे। जीवन को सुख शान्तिपूर्वक चलाने एवं समाज का सर्वतोन्मुखी विकास करने के लिए कुछ सामाजिक परम्परायें भी निश्चित कीं जो हमारे सामाजिक एवं राजनैतिक तथा आर्थिक एवं अन्य क्षेत्रों को सदा से ही प्रभावित करती आयी हैं।

प्राचीन काल में चारों वर्णों के लोगों की मानसिक शक्ति का सम्पूर्ण परीक्षण करके ही हमने अपने समाज का विभक्तीकरण किया था। उदाहरणार्थ अधिक तेज बुद्धि वाले व्यक्तियों को समाज की मानसिक एवं आध्यात्मिक रूप से सुशिक्षित करना था। साथ ही अधिक शारीरिक बल वाले व्यक्ति को समाज की रक्षा का कार्य सौंपा जाता था और कुशाग्र बुद्धि वाले व्यक्तियों को अल्प बुद्धि वाले व्यक्तियों के स्थान पर नियुक्त कर दिया जाता तो शायद समाज की उन्नति भलीभाँति न हुयी होती। इसी प्रकार आश्रम की व्यवस्था हुई। जिस कारण हमें चतुर्मुखी विकास करने में अत्यन्त सहायता मिली है। उदाहरणार्थ किसी बालक को संयास की ओर ले जाना घोर अन्याय है क्योंकि अल्पवयस्क बालक का मन चंचल होता है वह संन्यास के अनुकूल आचरण नहीं कर सकता। इसी प्रकार जीवन के समस्त विधानों एवं व्यवहारों में सभी

राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्थाओं में औचित्य की सत्ता देखने को मिलती है। प्रकृति के समस्त क्रिया कलापों में भी औचित्य परिलक्षित होता है। नदियों का एक ही दिशा में प्रवाहित होना, ऋतुओं का क्रमिक आगमन तथा विभिन्न प्रकार के फलों का अपने समय पर उत्पन्न होना सभी में औचित्य की सत्ता द्रष्टव्य है। कोई भी फल अपनी ऋतु में उत्पन्न न होकर अन्य ऋतु में उत्पन्न होता तो वह स्पृहरणीय नहीं होगा।

समय की निश्चितत: में भी औचित्य विद्यमान है। मृत्यु एक अटल सत्य है। उसकी अनुपस्थिति भी हमें औचित्य का बोध कराती है। इस अटल सत्य से परिचित होने पर प्राणियों में इतना प्रमाद है तो न जाने उसके अभाव में उनकी जीवन यात्रा किस प्रकार की होगी?

ललित कला, वस्तुकला, शिल्पकला, संगीतकला सभी में औचित्य दर्शनीय है। वाणी का चाहे कोई भी रूप हो जब उसमें भाव तथा अभिव्यक्ति दोनों में समन्वयात्मक व्यवस्था उत्पन्न हो जाती है तब एक विशिष्ट सौन्दर्य झलकने लगता है। कवि की वाणी जब अतीव संतुलित सम्बद्ध एवं व्यवस्थित होने से आकर्षण तथा सुन्दर रूप धारण कर लेती है तब वह प्रत्येक के हृदय को आनन्दित कर देती है। जिस प्रकार अनुचित वेशभूषा, अनुचित कथोपकथन दर्शकों का रसोन्मीलन ही कर पाते हैं उसी प्रकार अनुचित पद प्रयोग श्रोताओं के मानस में आनन्दो बोधक नहीं होते हैं। काव्यकला के साथ–साथ वस्तुकला में भी औचित्य की महत्ता सर्वविदित है। किसी भी भवन के निर्माण की कला हमें तभी आकर्षित करती है जब उसमें समुचित साधनों का उचित रूप में सन्निवेश किया गया हो। उसी प्रकार चित्रकला एवं शिल्पकला में भी औचित्य दृष्टिगोचर होता है। चित्र के निर्माण में देश काल की अनुरूपता वेशभूषा आदि का संतुलन आवश्यक है। यदि हमें देवताओं के चित्र दानावोचित शैली में मिले तो निश्चय ही वे सह्रदय के मन को आह्लादित नहीं करेंगे। मानवीय आचरण से लेकर ईश्वरीय आचरण तक सभी औचित्य सीमा के अन्तर्गत आते हैं। औचित्य का आदर काव्य जगत में भी हो तो इसमें किंचितमात्र संदेह नहीं करना चाहिए। औचित्य तत्व को आचार्य क्षेमेन्द्र ने काव्य का सर्वातिशायी रूप माना है। उन्होंने औचित्य के 27 भेदों को काव्य में अनिवार्य माना है। काव्य के समस्त उपादानों को औचित्य के अन्तर्गत तथा समस्त दोषों को अनौचित्य के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है। अपने ग्रन्थ औचित्यविचारचर्चा में औचित्य का इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते।।

भुशुण्डि रामायण अत्यधिक आकर्षण सरस शैली में निबद्ध तथा अलंकार चमत्कार से पूर्णतः परिपुष्ट है। इसी प्रकार के रसिक सम्प्रदायी संस्कृत ग्रन्थों को अपना उपजीव्य मानकर हिन्दी में अनेक प्रौढ़ रचनाओं का सृजन हुआ है। इस प्रकार प्रस्तुत भुशुण्डि रामायण की माधुर्य रसामृत मूर्ति की उपासना का तथा सीता एवं राम

की संश्लिष्ट चिंतन का एक अद्भुत ग्रन्थ है। इसमें राम कथा का विस्तार विवेचन भी भिन्न प्रकार से किया गया है। अनोखा होने के कारण यह रमणीय रसासक्ति ग्रन्थ है। भुशुण्डि रामायण का आदर्श एवं उपजीव्य ग्रन्थ श्रीमद्भागवत है। अतः उसी को आधार मानकर राम की ललित लीलाएँ इस रामायण में चित्रित की गई हैं। वस्तुतः इसे रामायण का भगवतीकरण कहा जाना उचित होगा। मध्य युग की तांत्रिक पूजा का प्रभाव भी इस ग्रन्थ में स्पष्ट दिखाई देता है। यह ग्रन्थ तुलसीदास के पूर्ववर्ती माना गया है क्योंकि तुलसीदास जी के रामचरित मानस पर इसकी अमिट छाप है। भुशुण्डि रामायण के प्रणेता ने इतने अद्भुत एवं प्रभावशाली ग्रन्थ का प्रणयन करके भी स्वयं को पूर्णतः छिपाए रखा है। क्योंकि उनके नाम का संकेत सम्पूर्ण ग्रन्थ में कहीं पर भी नहीं मिलता।

भुशुण्डि रामायण पर श्रीमदभागवत का स्पष्ट प्रभाव दर्शनीय होता है। इसमें कवि ने श्रीमद्भगवत गीता के समान उपयोगी उपदेशों को प्रस्तुत कर औचित्यपूर्ण व्यंजना की है। जो व्यक्ति को सत्य से अवगत कराकर आदर्शपूर्वक जीवन जीने की प्रेरणा देता है। औचित्य सिद्धान्त की दृष्टि से जब हम भुशुण्डि रामायण का अनुशीलन करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि भुशुण्डि रामायण में सर्वत्र औचित्य दर्शनीय है। आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रस्तुत औचित्य के 27 भेदों का सम्यक विवेचन किया गया है। कवि का करुण रस का सहज प्रयोग श्रृंगार, हास्य, वीर रसों का विन्यास औचित्य मूलक है, भाषा, अलंकार, छन्द, गुण आदि का भी प्रयोग औचित्य मूलक है। कोमलकान्त पदावली, लाटी ,रीति ,अभिधा, लक्षणा ,व्यंजना शब्दों के प्रयोग में कवि की प्रतिभा दर्शनीय हो रही है।

काव्यशास्त्र में रसौचित्य का निर्वाह अनिवार्य है। रसौचित्य के अभाव में कवि की कृति को सफल नहीं माना जा सकता है। भुशुण्डि रामायण में काव्य पक्ष से सम्बन्धित पक्षों का औचित्य पूर्ण निर्वाह दृष्टिगोचर होता है। हमें यहाँ कहने में रंजक मात्र भी संकोच नहीं है कि रामायण में प्रायः सभी विषयों में औचित्य का निर्वाह हुआ है। रस काव्य का प्राण तत्त्व है यही कारण है कि भारतीय अलंकारशास्त्रियों ने रस तत्त्व का सर्वाधिक विस्तृत विवेचन किया गया है। जहाँ एक ओर सहृदय कवि इस निष्पत्ति के लिए काव्य साधना एक ओर सहृदय कवि इस निष्पत्ति के लिए काव्य साधना प्रवृत्त होता है वही दूसरी ओर श्रोता सम्यक रसानुभूति के लिए काव्य सुनने या नाटक देखने में प्रवृत्त होता है। इसलिए काव्यशास्त्र में रसौचित्य का निर्वाह अनिवार्य है। यदि कोई कवि रसौचित्य का निर्वाहन नहीं करता है तो उसकी कृति को सफल नहीं माना जाता है।

कथानक वैशिष्टय की दृष्टि से इस ग्रन्थ का विशेष महत्व है। इसमे विभिन्न घटनाओं एवं मौलिक प्रसंगों का पूर्ण सामंजस्य है जिससे सम्बन्ध निर्वाह बना रहता है। कवि ने विविध मार्मिक एवं मौलिक प्रसंगों को अत्यन्त ही प्रभावपूर्ण एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। कवि की कथा आरम्भ से लेकर अन्त तक महान उद्देश्यों से पूर्ण है। रचयिता ने कथा को उदात्त रूप प्रदान किया। जिस प्रकार श्रीमद्भगवतगीता में प्रथम कृष्णलीला पूतना वध से की गई है। उसी प्रकार भुशुण्डि रामायण में पहली रामलीला पूतना वध की ही है।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से यह ग्रन्थ औचित्य से अनुस्यूत है। श्रेष्ठ पुरुष (राम) का नायक होना भी औचित्य मूलक है। इसी प्रकार सीता का नायिका होना। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघन, हनुमान, सुग्रीव, अंगद आदि का नायक का सहयोगी होना। इसके विपरीत मारीच, ताड़का सुबाहु, सूर्पनखा, खरदूषण, बालि, रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि प्रतिपक्षी दूसरे पात्रों का प्रस्तुत होना भी औचित्य मूलक है। यथास्थान सात्विक पात्रों के चित्रण में औचित्य दर्शनीय है। भुशुण्डि रामायण का मूल ही औचित्य सौन्दर्य से अनूस्यूत है। भुशुण्डि रामायण के कथा के नायक राम का चरित्र तो औचित्य का मूर्तमान रूप है। ऐसे राम जिन्होंने संघर्षों के सम्मुख कभी पलायन नहीं किया। चिन्ता की तो केवल जन कल्याण की शस्त्र धारण किया तो केवल जीव मात्र की रक्षा एवं कल्याण हेतु उत्कृष्ट राष्ट्रभक्ति, अदम्य, साहस, अप्रतिम, अविचल, धैर्य, अपूर्व शक्ति, शील सौन्दर्य में समन्वित राम अपने अनुकरणीय आचरण से आज भी वन्दनीय है। उनका सभी के प्रति आदर्श व्यवहार, एक संतुलित एवं व्यवस्थित समाज के प्रति सच्चा मार्गदर्शन है। जिन्होंने अपने कर्तव्य बोध द्वारा समाज को सत्य व्यवहार का दिगदर्शन कराया। वह आज भी अनुकरणीय है। राम ने समाज को एक आदर्श दृष्टि प्रदान की सामाजिक लोगों में परस्पर किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए यह उनके चरित्र में स्पष्ट रूपेण दर्शनीय है। राम के अतिरिक्त सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघन, हनुमान के चरित्र आदर्श भी मार्गदर्शक है राम के लिए समर्पित लक्ष्मण का व्यक्तित्त्व एक आदर्श भ्राता के स्वरूप को प्रस्तुत कर रहा है। भरत की अपने भाई के प्रति त्याग भावना स्पष्ट रूप से परिलक्षित है।

ऐसा शायद ही देखा गया हो कि भातृ प्रेम एवं पिता की आज्ञा के कारण दो भाई राज सिंहासन से विमुख हुए हो। भरत को राजसिंहासन इसलिए अभीष्ट नहीं कि उनके कारण उनके बड़े भाई राम को राज्य सिंहासन छोड़कर वनों ने भटकना पड़ा और राम को राज्य सिंहासन इसलिए अभीष्ट नहीं कि उन्हें सत्यवादी अपने पिता के वचनों की आज्ञा का पालन करना है। राम की माता–पिता, गुरु, बंधु, स्त्री, मित्र, शत्रु, सेवक, प्रजा आदि के साथ उनका सहज, सात्विक एवं उदार चरित्र सभी को समान्दोलित कर देता है। भुशुण्डि रामायण में स्वयं ब्रह्मा ने कहा है कि राम का दिव्य चरित्र मेरी करोड़ों जिह्वाओं के द्वारा भी वर्णित नहीं किया जा सका। उनका चरित्र अवर्णनीय है। उनका लोक स्वर्ग लोक से बढ़कर है। भुशुण्डि रामायण में राम को परब्रह्म परमात्मा के रूप में चित्रित किया गया है जो मानव रूप में अवतरित होते हैं। कविवर मैथलीशरण गुप्त ने राम के चरित्र की विशिष्टिता बताते हुए कहा है कि **"राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है। कोई कवि न बन जाए सहज संभाव है।"**

सीता की राम के प्रति त्याग भावना आज भी समस्त स्त्रीगण के लिए अनुकरणीय है। अपने पति को कैकेयी के द्वारा वनवास दिये जाने पर वे क्रुद्ध नहीं होती और शान्त भाव से प्रत्येक क्षेत्र में राम का अनुकरण करती है। सीता के इस आदर्श पातिवृत से आधुनिक नारियों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। आज भी मन वाणी, शरीर से नारियाँ पति की सेवा करें तो वह सतीत्व की शक्ति प्राप्त करने तथा अग्नि को शीतल करने, सूर्य के रथ को रोक देने के चमत्कार उनके समक्ष हाथ जोड़कर दास की तरह एक पंक्ति में खड़े हो सकते हैं।राम पक्ष में कैकेयी को

छोड़कर सभी पात्रों का चरित्र आज भी अनुकरणीय एवं औचित्यपूर्ण है। जहाँ तक कैकेयी का प्रश्न है उनका सहज दोष नहीं केवल भ्रमवश ही उनको ऐसा कर दिया।

इन अद्वितीय आदर्श चरित्रों के अनुशीलन में हम यह स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि ये सभी विभूतियाँ अपने स्वार्थ के लिए कभी प्रयत्नशील नहीं रहीं। समृष्टि रूप से इनकी प्रवृत्ति परमार्थ के लिए रही। यही कारण है कि ये पात्र किसी एक देश काल तक परिछिन्न नहीं रहे अपितु सम्पूर्ण विश्व के सार्वकालिक मार्गदर्शक के रूप में आज भी अनुकरणीय एवं अभिनन्दनीय है। इन्होंने तात्कालीन समाज को जो विलक्षण व्रत प्रदान किया। वह हमारे समाज के लिए प्रत्येक क्षण उपयोगी रहा है और रहेगा।

भुशुण्डि रामायण में इसके विपरीत उस विकृति संस्कृति एवं समाज का भी चित्रण हुआ है जो कभी भी आदर्श नहीं कहा जा सकता और वह है रावण के द्वारा परिपालित लंका। यह कदाचित इसलिए दिखलाया गया है कि रामायण के अध्येता आदर्श समाज के साथ–साथ ही विकृत समाज उसके अनाचार और उससे होने वाली भविष्यकालीन दुर्गति से भी परिचित होकर समुचित शिक्षा ग्रहण कर सके। लंका के विकृत समाज ने जिस तामसी मार्ग का अनुसरण किया उसको उसका फल भोगना पड़ा जो विश्व के समक्ष सर्वनाश के रूप में आता है। इस प्रकार भुशुण्डि रामायण सभ्य और जो असभ्य दोनों प्रकार के समाज की संरचना की शिक्षा दे रहा है। जो साहित्यिक एवं व्यवहारिक दृष्टि से औचित्यपूर्ण है। **"रामादिवद्वर्तितव्यं न रावणादिवद्"**

अर्थात् रामादि के समान आचरण करना चाहिए, रावण के समान नहीं।

प्रस्तुत शोध कार्य के अनुशीलन से हमें भलीभाँति यह स्पष्ट होता है कि भुशुण्डि रामायण में प्रायः सर्वत्र औचित्य का ध्यान रखा गया है। जहाँ एक ओर सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक रूप से औचित्य की संस्थिति है। वही काव्य पक्ष से सम्बन्धित सभी पक्षों का औचित्य पूर्ण निर्वाह दृष्टिगोचर होता है।

श्री रामोजयति

सहायक ग्रन्थ विधा

1.	भुशुण्डि रामायण पूर्वखण्ड	डा० भगवती प्रसाद सिंह	विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी
2.	भुशुण्डि रामायण दक्षिणखण्ड	डा० भगवती प्रसाद सिंह	अवध साहित्य मन्दिर गोरखपुर
3.	भुशुण्डि रामायण पश्चिमखण्ड	डा० भगवती प्रसाद सिंह	अवध साहित्य मन्दिर गोरखपुर
4.	भुशुण्डि रामायण उत्तरखण्ड	डा० भगवती प्रसाद सिंह	अवध साहित्य मन्दिर गोरखपुर
5.	औचित्य विचारचर्चा	आचार्य क्षेमेन्द्र	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
6.	औचित्य विचारचर्चा प्रभा (हिन्दी व्याख्या)	ब्रजमोहन झा	चौखम्बा साहित्य भण्डार वाराणसी
7.	भुशुण्डि रामायण मूलग्रन्थ (कथावस्तु तथा समीक्षा)	डा० भगवती प्रसाद सिंह	विश्वविद्यालय प्रकाशन
8.	संस्कृत का समीक्षात्मक काव्यशास्त्र–	प्रो० अभिराज राजेन्द्रमिश्र	विश्वविद्यालय प्रकाशन
9.	भारतीय संस्कृत काव्यशास्त्र की आचार्य परम्परा	राधावल्लभ त्रिपाठी	विश्वविद्यालय प्रकाशन
10.	अलंकारशास्त्र परम्परा	डा० राजवंश सहाय हीरा	चौखम्बा साहित्य प्रकाशन
11.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डा० देवीचन्द्र शर्मा साहित्याचार्य	साहित्य भण्डार सुभाष बाजार मेरठ
12.	संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास	डा० जगदीश	चौखम्बा साहित्य प्रकाशन वाराणसी
13.	औचित्य सम्प्रदाय का हिन्दी काव्यशास्त्र पर प्रभाव	डा० चन्द्रहंस पाठक	चौखम्बा साहित्य प्रकाशन वाराणसी
14.	भारतीय साहित्यशास्त्र और काव्यालंकार समालोचना का इतिहास	डा० भोलाशंकर व्यास	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
15.	श्रृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन	डा० इन्द्रपाल सिंह	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
16.	साहित्य दर्पण (हिन्दी व्याख्या)	डा० लोकपाल दाहाल	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
17.	भारतीय काव्यशास्त्र का इतिहास	डा० राजवंश सहाय हीरा	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
18.	संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (हिन्दी अनुवाद)	डा० विनय कुमार	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

19.	संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	श्री वाचस्पति गौरोला	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
20.	संस्कृत वाङ्मयम्	डा0 हरिकृष्ण शास्त्री दातार	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
21.	संस्कृत साहित्य और काव्यालंकार	डा0 भोलाशंकर व्यास	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
22.	भारतीय काव्यशास्त्र भूमिका	डा0 नागेन्द्र	ओरियन्टल बुक डिपो दिल्ली
23.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डा0 कपिलदेव शास्त्री	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
24.	अलंकार मीमांसा (हिन्दी व्याख्या)	रामचन्द्र द्विवेदी	मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली
25.	रस सिद्धान्त और,साहित्य शास्त्र	डा0निर्मला जैन	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली
26.	श्रीमद्भगवद्गीता(हिन्दी व्याख्या)	राम सुखदास	गीता प्रेस गोरखपुर
27.	संस्कृत साहित्यशास्त्र	पं0 बलदेव उपाध्याय	काशी संस्कृत सीरीज
28.	संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास	पी0वी0 काणे	मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली
29.	संस्कृत कवि दर्शन	डा0 भोलाशंकर दास	चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी
30.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डा0 बलदेव उपाध्याय	शारदा मन्दिर
31.	काव्य प्रकाश (हिन्दी व्याख्या)	डा0 सत्यव्रत सिंह	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
32.	संस्कृत वाङ्मयम्	डा0 हरिकृष्ण शास्त्री दातार	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
33.	ध्वन्यालोकलोचन (हिन्दी व्याख्या)	जगन्नाथ पाठक	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
34.	रस गंगाधर (हिन्दी व्याख्या)	बद्रीनाथ झा	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
35.	संस्कृत वाङ्मय कोश द्वितीय खण्ड	डा0 श्रीधर भास्कर	भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता
36.	वक्रोक्ति जीवितम् (हिन्दी व्याख्या)	आचार्य विश्वेसर आत्माराम	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
37.	काव्यरस चिन्तन और अस्वाद	डा0 भागीरथ	साहित्य भण्डार सुभाष बाजार, मेरठ
38.	श्रीरामचरित मानस टीका (हिन्दी अनुवाद)	हनुमान प्रसाद पोद्दार	गीता प्रेस,गोरखपुर
39.	श्रीमद्भगवद्गीता	डा0 विष्णुकान्त शुक्ल	साहित्य भण्डार सुभाष बाजार मेरठ

40.	सिद्धान्त कौमुदी (कारक प्रकरण)	डा0 श्री निवास शास्त्री	साहित्य भण्डार सुभाष बाजार मेरठ विश्वविद्यालय
41.	लघु सिद्धान्त कौमुदी	डा0मुरली पाण्डेय	साहित्य भण्डार सुभाष बाजार मेरठ विश्वविद्यालय
42.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	वाचस्पति गौरेला	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
43.	मानस शब्दकोश	रामचन्द्र वर्मा	साहित्य भण्डार बाजार मेरठ
44.	छन्दशास्त्र का उद्भव एवं विकास	श्री किशोर मिश्रा	साहित्य भण्डार बाजार मेरठ
45.	राम काव्य धारा: अनुसंधान एवं अनुचिन्तन	डा0भगवती प्रसाद सिंह	साहित्य भण्डार बाजार अनुचिन्तन मेरठ
46.	संस्कृत साहित्य कोश	डा0राजवंश सहाय	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
47.	औचित्य सम्प्रदाय का हिन्दी काव्यशास्त्र पर प्रभाव	डा0 चन्द्रहंस	साहित्य भण्डार बाजार मेरठ
48.	श्रंगार रस का शास्त्रीय विवेचन	पं0 राजशेखर प्रसाद चतुर्वेदी	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
49.	रामचरित मानस का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन	डा0 रामकुमार	अनुसंधान प्रकाशन
50.	रामचरित मानस का साहित्यिक मूल्यांकन	सुधाकर पाण्डेय	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
51.	औचित्यस्वरूप विमर्श	प्रो0 राममूर्ति त्रिपाठी	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
52.	हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास	डा0 भागीरथ मिश्रा	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
53.	काव्यशास्त्र युग और प्रवृत्तियाँ	कैलाशनाथ अवस्थी	अभिलाषा प्रकाशन
54.	अभिज्ञान शाकुन्तलम्	डा0 निरूपण विद्यालंकार	साहित्य भण्डार सुभाष बाजार मेरठ
55.	सांख्यकारिका (हिन्दी अनुवाद)	डा0 रामकृष्ण	साहित्य भण्डार सुभाष बाजार मेरठ
56.	काव्यप्रकाश (हिन्दी व्याख्या)	डा0 सत्यव्रत सिंह	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
57.	रस सिद्धान्त और साहित्य	निर्मला जैन	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
58.	रस चिन्तन परम्परा	शीतल शंकर त्रिपाठी	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी

59.	छन्द शास्त्र का उद्भव एवं विकास	प्रो0श्री किशोर मिश्र	चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी
60.	नाट्यशास्त्र	आचार्य भरत	काशी संस्कृत सीरीज
61.	काव्य प्रकाश (हिन्दी व्याख्या सहित)	डा0 पारसनाथ	विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा
62.	अलंकारशास्त्र की परम्परा	डा0 राजवंश	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी
63.	वैदिक वाङमय में रामकथा	पण्डित लक्ष्मी नारायण	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी
64.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	राजवंश सहाय	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी
65.	संस्कृत साहित्य कोश	राजवंश सहाय	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी
66.	छन्दोमञ्जरी (हिन्दी व्याख्या)	गंगादास	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी
67.	संस्कृत साहित्येतिहास कुञ्जिका	आचार्य परमानन्द शास्त्री	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
68.	संस्कृत साहित्य का सरल इतिहास	डा0 रणजीत शर्मा एवं डा0 देवीचन्द्र शर्मा	ज्ञान प्रकाशन मेरठ
69.	संस्कृत साहित्येतिहासः	आचार्य रामचन्द्र मिश्र	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
70.	शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त	डा0 गोविन्द त्रिगुणात्मक	भारतीय साहित्य मन्दिर दिल्ली
71.	संस्कृत हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे	मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली
72.	भारतीय काव्यशास्त्र के अध्ययन	डा0 राजकिशोर सिंह	प्रकाशन केन्द्र लखनऊ
73.	काव्यशास्त्र (हिन्दी व्याख्या)	डा0 राजकिशोर सिंह	प्रकाशन केन्द्र लखनऊ
74.	साहित्यालोचन (हिन्दी व्याख्या सहित)	डा0 राजकिशोर सिंह	प्रकाशन केन्द्र लखनऊ
75.	ईश्वर कृष्ण विरचित – सांख्यकारिका (हिन्दी व्याख्या)	डा0 राजकिशोर सिंह	प्रकाशन केन्द्र लखनऊ
76.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	देवीशंकर मिश्र एवं आचार्य राजकिशोर मिश्र	प्रकाशन केन्द्र लखनऊ
77.	श्री रामचरित मानस मूल व्याख्या आलोचना सहित	डा0 बी0एन0 सिंह	प्रकाशन केन्द्र लखनऊ
78.	काव्यशास्त्र की आचार्य परम्परा	डा0 राधाकृष्णन बल्लभ त्रिपाठी	विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी

79.	रसों की संख्या	प्रो0 श्री राघवन अनुवाद डा0 राजेन्द्र मिश्र	विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी
80.	मानस हिन्दी शब्दकोश	रामचन्द्र वर्मा	चौखम्बा सुरभारती
81.	संस्कृत व्याकरणम	डा0 बाबूराम त्रिपाठी	विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा
82.	कल्याण (पत्रिका) चरित्र निर्माणाऽक	(कल्याण कार्यालय)	गीता प्रेस गोरखपुर
83.	आचार्य विश्वनाथ और साहित्य दर्पण	डा0 राजकिशोर सिंह	प्रकाशन केन्द्र लखनऊ
84.	समाचार पत्र	प्रकाशित लेख	दैनिक जागरण

संस्कृत काव्यशास्त्र परम्परा

प्रमुख आचार्य	ग्रन्थ	समय	सिद्धान्त
भरतमुनि	नाट्यशास्त्र	विक्रमपूर्व द्वितीय शताब्दी	रसवादी
दण्डी	काव्यादर्श (काव्यलक्षण)	सप्तम शताब्दी	अलंकार वादी
भामह	काव्यालंकार भामहालंकार	षष्ठ शताब्दी	अलंकारवादी
भट्टोदभट	काव्यालंकार सारसंग्रह	अष्टम शताब्दी	अलंकारवादी
वामन	काव्यालंकार सूत्रवृत्ति	अष्टम शताब्दी	गुणवादी
रूद्रट	काव्यालंकार	नवम	अलंकारवादी
आनन्दवर्धन	ध्वन्दालोक (काव्यालोक)	नवम	ध्वनिवादी
राजशेखर	काव्य मीमांसा	दशम	रसवादी
अभिनव गुप्त	ध्वन्यालोक लोचन (अभिनव भारती)	एकादश	रसवादी
कुन्तक	वक्रोक्ति जीवित काव्यालंकार कारिका	एकादश	वक्रोक्तिवादी
महिम भट्ट	व्यक्तिविवेक	एकादश	रसवादी
भोजराज	सरस्वती कण्ठाभरण, श्रंगार प्रकाश	एकादश	रसवादी
क्षेमेन्द्र	औचित्य विचार चर्चा	एकादश	औचित्यवादी
मम्मट	काव्य प्रकाश	एकादश	ध्वनिवादी, रसवादी
रुय्यक	अलंकार सर्वस्व	द्वादश	ध्वनिवादी
वाग्भट्ट	वाग्महालंकार	द्वादश	अलंकारवादी
जयदेव पीयूषवर्ष	चन्द्रालोक	त्रयोदश	रसवादी
विश्वनाथ	साहित्य दर्पण	चतुर्दश	रसवादी
अप्पयय दीक्षित	कुवलयानन्द चित्र मीमांसा	षोडश शताब्दी उत्तरार्ध	ध्वनिवादी
पण्डितराज जगन्नाथ	रसगंगाधर	सप्तदश	रसवादी
विद्याराम	रसदीर्घिका	सप्तदश शताब्दी	रसवादी
भूदेव शुक्ल	रस विलास	सप्तदश शताब्दी	रसवादी
रघुकुल मनोहर	कवि कौस्तुभ	सप्तदश शताब्दी	रसवादी
भट्ट देव शंकर पुरोहित	अलंकार मंजूषा	अष्टादश	रसवादी
आशाधर भट्ट	कोविदानन्द त्रिवेणिका अलंकार दीपिका	अष्टादश	रसवादी
विश्वेश्वर पण्डित	अलंकार कौस्तुभ, अलंकार मुक्तावली, अलंकार प्रदीप,रसचन्द्रिका	अष्टादश	रसवादी
महा महोपाध्याय रेवा प्रसाद द्विवेदी	काव्यालंकार कारिका	वर्तमान	अलंकारवादी